मेरी कलम
व
मेरे गुरुदेव
द्वितीय भाग
गुरु सुदर्शन जन्म शताब्दी विशेषांक
आगम ज्ञाता योगीराज
गुरुदेव श्री अरुणचंद्र जी महाराज

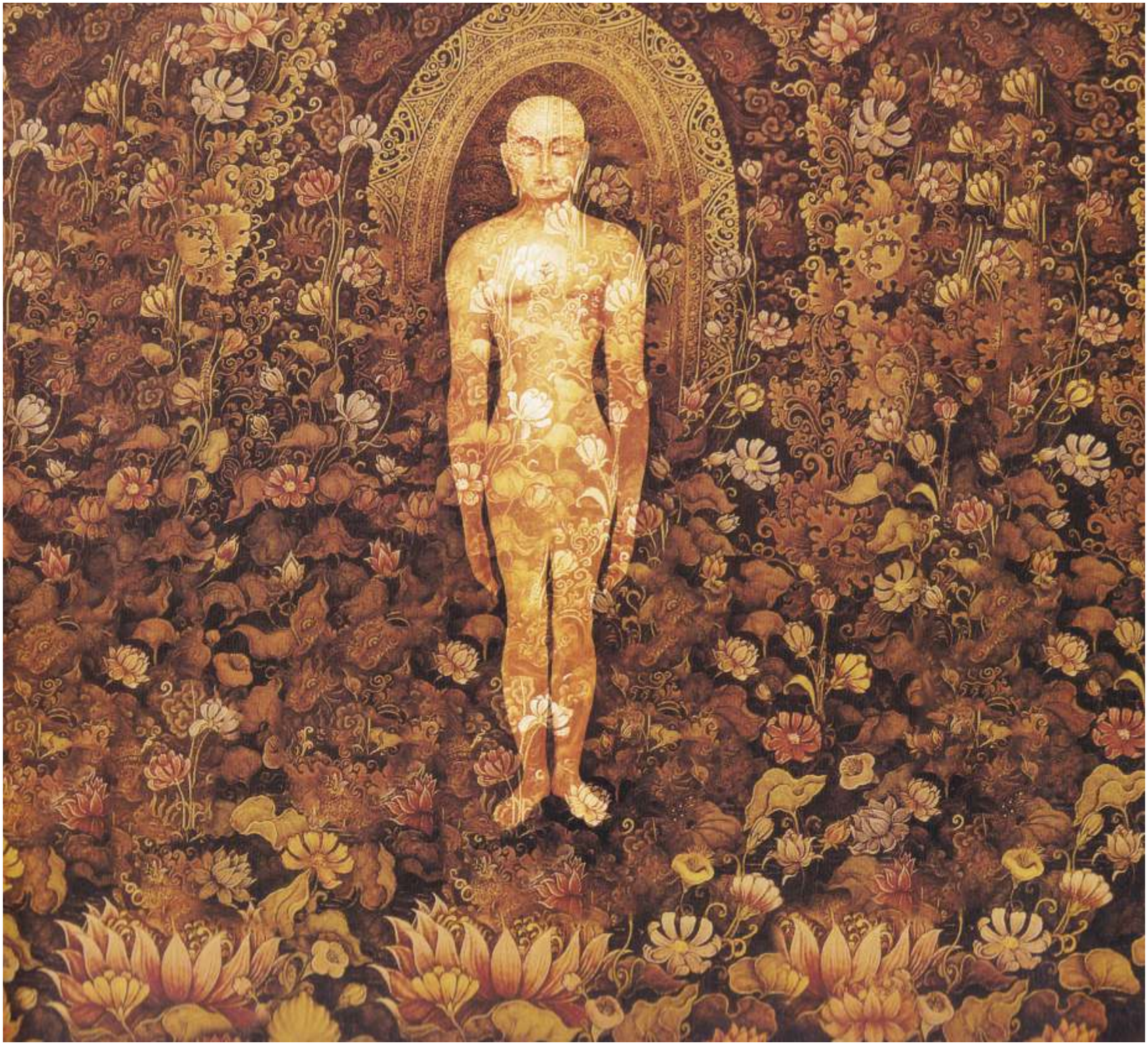

# मेरी कलम
# व
# मेरे गुरुदेव

## भाग– 2


प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थल

**रत्नत्रय प्रकाशन समिति, दिल्ली**

**पीपी-114, निकट गोपाल मंदिर, पूर्वी पीतमपुरा, दिल्ली**

**फोन न. : 9911177434**

**Website : www.gurusewakparivaar.org**

**e-mail : info@gurusewakparivaar.org**

प्रबंधन सहयोगी

पंकज जैन, अहमदगढ़

शब्दशिल्प, संयोजन एवं मुद्रण व्यवस्था

विमल विवेक जालंधर


### प्राप्ति स्थान

| | | | |
|---|---|---|---|
| कुशल जैन, गंगानगर | 9462961490 | नितिन जैन, दिल्ली | 9871416763 |
| विनोद जैन, जींद | 9462961490 | आशीष जैन, बड़ौत | 9837210341 |
| विनोद जैन, लुधियाना | 9814033180 | मुकेश जैन, दिल्ली | 9911177434 |
| दीपक जैन, नरवाना | 9034112000 | जय भगवान, गन्नौर | 9896617368 |
| राजेश जैन, पंचकूला | 9216640005 | वनीश जैन विक्की, भटिंडा | 9872900022 |
| संजीव जैन गोल्डी, जालंधर | 9417429000 | संजीव जैन, चंडीगढ़ | 9876180117 |

# श्रीमत् सुदर्शन गुरवे नमः

51 संघशास्ताकाल और गुरुदेव 1 - 3

52 पंच परमेष्ठि और गुरुदेव 4 - 5

53 स्वाध्याय और गुरुदेव 6 - 8

54 आचार्य पद और गुरुदेव 9 - 11

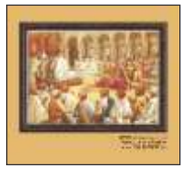

55 प्रवचनकला और गुरुदेव 12 - 15

56 श्रावक बल और गुरुदेव 16 - 18

57 तत्त्वज्ञान और गुरुदेव 19 - 21

58 पर्वाराधना विधि और गुरुदेव 22 - 24

59 लिखाई और गुरुदेव 25 - 26

60 श्रमणसंघ और गुरुदेव 27 - 29

61 भविष्यवाणियां और गुरुदेव 30 - 32

62 उदारता और गुरुदेव 33 - 35

63 प्राचीन क्षेत्रों का जीर्णोद्धार और गुरुदेव 36 - 38

64 वर्षीतप और गुरुदेव 39 - 41

65 विहार यात्रा और गुरुदेव 42 - 44

66 आहार वितरण प्रणाली और गुरुदेव 45 - 47

67 आहार-ग्रहण और गुरुदेव 48 - 50

68 संग्रह और गुरुदेव 51 - 53

69 आडम्बर रहित व्यक्तित्व और गुरुदेव 54 - 56

70 संगठन प्रियता और गुरुदेव 57 - 59

71 राजनेता और गुरुदेव 60 - 62

72 साहित्य प्रकाशन और गुरुदेव 63 - 65

73 गुरु परंपरा के पूर्वज और गुरुदेव 66 - 68

74 शासन प्रभावना और गुरुदेव 69 - 71

75 नारी सम्मान और गुरुदेव 72 - 74

76 बालक और गुरुदेव 75 - 77

77 वृद्ध और गुरुदेव 78 - 80

78 स्थानकवासी परम्परा और गुरुदेव 81 - 83

79 क्रांतिकारी कदम और गुरुदेव 84 - 86

80 इतर सम्प्रदाय और गुरुदेव 87- 89

81 तात्कालिक परिस्थितियां और गुरुदेव 90 - 92

82 सम्प्रदायवाद और गुरुदेव 93 - 95

83 हरियाणा और गुरुदेव 96 - 98

84 उत्तरप्रदेश व गुरुदेव 99 - 101

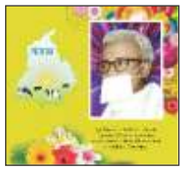

85 पंजाब और गुरुदेव 102 - 104

86 दिल्ली और गुरुदेव 105 - 107

87 जीवन की संध्यावेला और गुरुदेव 108 - 110

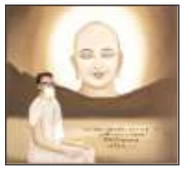

88 आत्मालोचना और गुरुदेव 111 - 113

89 संथारा व गुरुदेव 114 - 115

90 पंजाब परम्परा और गुरुदेव 116 - 118

**91** समाधिस्थल और गुरुदेव 119 – 120

**92** भेदविज्ञान व गुरुदेव 121 – 123

**93** मनमोहक शरीराकृति और गुरुदेव 124– 126

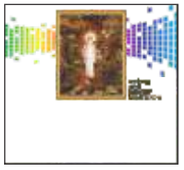

**94** साहस और गुरुदेव 127 – 129

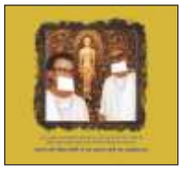

**95** उत्तराधिकार और गुरुदेव 130 – 132

**96** धर्म की बगिया और गुरुदेव 133 – 135

**97** मुनिसंघ और गुरुदेव 136 – 138

**98** चातुर्मास शृंखला और गुरुदेव 139 – 141

**99** गुरुसेवक परिवार और गुरुदेव 142 – 144

**100** मैं और गुरुदेव 145 – 149

संघ का सौभाग्य था कि हमें गुरुदेव जैसा योग्य संघशास्ता प्राप्त हुए
जो स्वयं को अनुशासित रखते हुए संघ के अनुशासक बने।

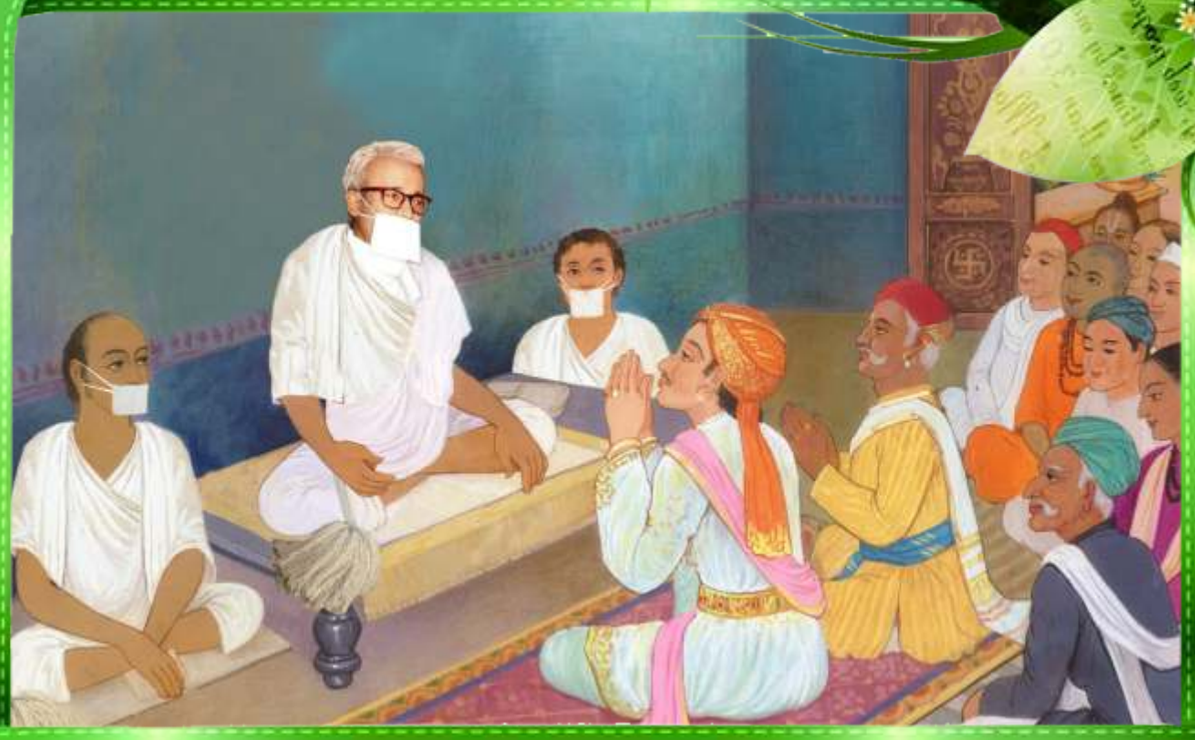

# 51 | संघशास्ताकाल और गुरुदेव

**किसी भी** संघ या समाज में सुव्यवस्था कायम करने के लिए प्रतिनिधित्व अनिवार्य है। प्रतिनिधि के अभाव में अराजकता व उदडंता की आशंका बढ़ जाती है। यदि योग्य नेतृत्व प्राप्त हो जाए तो संघ नई ऊचाईयों का स्पर्श कर सकता है। एक योग्य नेता वही है जो महत्त्वकाँक्षाओं से रहित होकर स्वयं को अनुशासित रखते हुए संघ का अनुशासक बने। यह हमारे संघ का सौभाग्य था कि हमें गुरुदेव जैसा योग्य संघशास्ता प्राप्त हुआ।

यदि हम अतीत के पृष्ठों का अवलोकन करते हैं तो पूज्य गुरुदेव श्री मयाराम जी महाराज अपने मुनि मंडल के गणावच्छेदक के रूप में संघशास्ता चयनित हुए। पूज्य गुरुदेव श्री मायाराम जी महाराज के भीतर गुरु-परम्परा पर अनुशासन करने का लेश-मात्र भाव नहीं था। वे प्रारंभ से ही अनुशासन में रहना पसंद करते थे। परन्तु पूज्य मयाराम जी महाराज के पश्चात् संघ में एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई। गुरु मयाराम संघ के तीन प्रमुख बने। पूज्य श्री जवाहर लाल जी महाराज, पूज्य श्री जड़ावचंद जी महाराज एवं पूज्य श्री छोटेलाल जी महाराज। पूज्य श्री बनवारीलाल जी महाराज के समय से मयाराम संघ पुन: एकता के सूत्र में बंध गया। इस प्रकार संघनायक की परंपरा आगे गतिमान होती रही।

सन् 1952 में जैन समाज में पुन: एक क्राँति हुई। संपूर्ण भारत के हिंदी भाषी संतों ने एक समाचारी व एक आचार्य के अनुशासन में रहने की प्रतिबद्धता प्रदर्शित की। उस संगठन को श्रमण संघ का नाम दिया गया। उस अवसर पर प्रांतीय मंत्री श्री प्रेमचंद जी महाराज से भी आज्ञा-पत्र मंगवाया गया। परन्तु कालान्तर में सिद्धांतों को लेकर कुछ संत इस संगठन से पृथक् हो गए। सन् 1956 में पूज्य श्री मदनलाल जी महाराज ने भी प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र सौंप दिया। वाचस्पति गुरुदेव ने अपने संघ को संयम व अनुशासन की परिपाटी से विचलित नहीं होने दिया। वाचस्पति गुरुदेव ने अपने जीवन के अंतिम समय में गुरुदेव को संघ का नेता घोषित किया।

सन् 1963 में जब वाचस्पति गुरुदेव का स्वर्गवास हुआ तो उन्होंने अपने अंतिम पत्र में गुरुदेव को 15 मुनियों के संघ का नेता घोषित किया था। परन्तु गुरुदेव ने विनम्रता पूर्वक पद पूज्य श्री रामजी लाल जी महाराज को समर्पित किया। तत्पश्चात् 1967 में गुरुदेव ने संघशास्ता के रूप में कार्यभार संभाला।

यद्यपि पूज्य श्री रामजीलाल जी महाराज के देवलोकगमन के पश्चात् भी संघ में दीक्षा पर्याय में कई मुनिराज बड़े थे। गुरुदेव ने उस समय भी निवेदन किया कि यदि कोई पूज्य रत्नाधिक संघशास्ता के पद को संभाले तो मैं पूर्ण सहयोग व समर्थन के लिए सहमत हूँ। परन्तु सभी पूज्य मुनिराजों ने गुरुदेव के नाम का सहर्ष समर्थन किया। मूनक में गुरुदेव को संघ का नेतृत्व प्रदान किया गया। गुरुदेव की अतिशय योग्यता व विनय को देखते हुए सभी ने एक स्वर में गुरु सुदर्शन के नाम

की अनुमोदना की।

गुरुदेव ने विधिवत् आचार्य पद की चादर धारण नहीं की। परन्तु गुरुदेव का जीवन आचार्य के समस्त गुणों से सुशोभित था। वही हमारे भावाचार्य थे।

जैसे फल लगने पर वृक्ष की शाखाएं स्वत: झुक जाती है। उसी प्रकार संघशास्ता का महत् पद प्राप्त कर गुरुदेव का विनय भाव ओर चमकने लगा। बड़ों का सम्मान करना तो गुरुदेव की विशेषता थी ही परन्तु लघु मुनियों से भी गुरुदेव स्नेहपूर्वक व्यवहार करते थे। अपने गुरु-भाइयों से भी उनका आत्मीय व्यवहार रहा। उन्होंने कभी अपने पद का दुरुपयोग नहीं किया।

संघशास्ता बनने के उपरांत गुरुदेव ने स्वयं को भी अनुशासित किया। अपने संयम व अनुशासनमय जीवन से अपने संघ के मुनियों को प्रेरणा दी। उन पर मनचाहे आदेश आरोपित नहीं किए। अपितु उन्हें समझ देकर संयमनिष्ठ जीवन जीना सीखाया। संघशास्ता बनकर संघ के प्रत्येक मुनि की सारणा वारणा की।

**ऐसे संयम निष्ठ गुरुदेव को कोटि-कोटि प्रणाम!**

# 52 | पंच परमेष्ठि और गुरुदेव

**गुरुदेव में पांचों पदों का संदर्शन होता था**

**पंचपरमेष्ठी** महामंत्र जैन धर्म का अनादि शाश्वत मंत्र है क्योंकि इसमें किसी व्यक्ति विशेष की नहीं अपितु सर्वोत्तम गुणों की पूजा है। एक सौ आठ गुणों का धारक कोई भी महापुरुष इस गरिमामय पद पर प्रतिष्ठित हो सकता है। भले ही गुणों की दृष्टि से अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु पद का पृथक-पृथक विवेचन किया गया है परन्तु मैं भक्तिवश गुरुदेव में पाँचों पदों का संदर्शन करता था।

गुरुदेव के सान्निध्य में आने के पश्चात् मैंने वर्षों तक गुरुदेव की अलौकिक मनोरम छवि को निहारा। गुरुदेव के संयमी जीवन की प्रत्येक क्रिया प्रतिक्रमण, प्रतिलेखना, प्रवचन, पत्र-व्यवहार व प्रेमपूर्वक मुनि मिलन का भी मैं प्रत्यक्ष साक्षी रहा हूँ। गुरुदेव की प्रत्येक अदा बेमिसाल थी। वे मात्र सामान्य संत नहीं अपितु वर्तमान युग के भगवान थे। इस युग की विरल विभूति थे।

उनकी स्नेहिल छवि, समत्वपूर्ण आत्मा, संयमी दृष्टिकोण, शिष्टतापूर्ण व्यवहार व सरल हृदय में भगवत्व झलकता था। गुरुदेव तीर्थंकर तो नहीं तीर्थंकरों के प्रतिनिधि थे। सिद्ध भगवान तो नहीं

सिद्धशिला का स्वरूप बताने वाले इस युग के परमात्मा थे।

मैं तो सदैव गुरुदेव में अरिहंत परमात्मा के दर्शन करता था। आज तक मैंने कभी मन, वचन तथा काय से अविनय अशातना नहीं की। मुझे स्मरण नही कि गुरुदेव ने मुझे कोई आदेश दिया हो और मैंने उसका यथावत पालन न किया हो। गुरुदेव की आज्ञा मेरे लिए कृपा प्रसाद था। वही मेरे मन मंदिर के देवता थे। उनका प्रत्येक वचन आगमसम्मत एवं अनुकरणीय होता था। जैसे अरिहंत परमात्मा समवसरण में शोभायमान होते हैं। उसी प्रकार अपने शिष्यों के मध्य गुरुदेव की शोभा थी।

असंख्य गुणों के धारक आत्मार्थी गुरुदेव का लक्ष्य सिद्धालय की प्राप्ति था। उनके रोम-रोम में मुक्ति की उमंग थी। गुरुदेव अक्सर फरमाते थे कि मुझे तो शीघ्रातिशीघ्र आत्मा के वास्तविक स्वरूप मोक्ष महल की ओर प्रस्थान करना है। उनकी साकारता में भी निराकारता के दिग्दर्शन होते थे। अर्थात गुरुदेव मेरे लिए सिद्ध स्वरूप भी थे।

गुरुदेव मया, मदन कुल के प्रदीप संत एवं श्रावक संघ के अधिनायक भी थे। उनमें संयमी संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले आचार्य के समस्त गुण विद्यमान थे। श्रावक संघ की यह हार्दिक भावना थी कि गुरुदेव आचार्य पद ग्रहण कर लें। परन्तु गुरुदेव ने पद लिप्सा से न उलझकर संघ-कल्याण के लिए समाज को अपना नेतृत्व प्रदान किया। परन्तु आचार्य पद की चादर ग्रहण नहीं की।

पूज्य भगवन् श्री रामप्रसाद जी महाराज ने कभी रायकोट के भरे प्रांगण में यह उद्घोषणा की थी कि वर्तमान में स्थानकवासी परंपरा के जितने भी आचार्य है उनमें सबसे सुयोग्य गुरु सुदर्शन है। उनमें आचार्य के समस्त गुण विद्यमान है। अगर फिर भी किसी के मन में कोई शंका हो तो वह व्यक्तिगत रूप से प्रवचन के पश्चात् मुझसे समाधान प्राप्त कर सकता है।

समय-समय अनेक महापुरुषों ने गुरुदेव में आचार्य पद की योग्यता के दर्शन किए थे। उनका यह प्रबल भाव था कि गुरुदेव उनके संघ में भी आचार्य पद ग्रहण कर अपना कुशल नेतृत्व प्रदान करें। एक नायक के अद्वितीय गुणों के साथ-साथ आगमों का गहन ज्ञान भी था।

जब मैं वैराग्यवस्था में 1981 को बुटाणा आया। तब गुरुदेव ने स्वयं मुझे तत्त्वज्ञान का बोध दिया। रोहतक व जींद में श्रमणाचार के मुख्य ग्रंथ दशवैकालिक सूत्र का सरल रूप से अध्ययन करवाया।

जैसा कि सर्वविदित ही है कि जब तपस्वीश्री बद्रीप्रसाद जी महाराज, श्री रामप्रसाद जी महाराज, श्री सेठ जी महाराज विरक्त दशा में पूज्य वाचस्पति गुरुदेव के चरणों में आए तो उस अवसर पर वाचस्पति गुरुदेव ने दोनों बालकों के शिक्षण व संस्कार संवर्धन का उत्तरदायित्व गुरुदेव को सौंपा था। गुरुदेव ने उन दोनों बालकों में ज्ञान व अध्यात्म का ऐसा बीज वपन किया जिसके फलस्वरूप वे एक दिन समाज के महान पथ प्रदर्शक बनें। अगर मैं गुरुदेव को उपाध्याय पद से उपमित करूँ तो भी इसमें कोई अतिशोक्ति नहीं होगी।

गुरुदेव एक सच्चे संयमी संतरत्न थे। श्री मयाराम जी महाराज के पश्चात् संपूर्ण उत्तर भारत के हृदयों पर साम्राज्य करने वाले अगर कोई संत थे तो वे मेरे पूज्य गुरुदेव संघशास्ता श्री सुदर्शन लाल जी महाराज थे। उन जैसा संयमी, स्नेही व समताशील संत मिलना दुर्लभ है। अपने अद्भुत और अप्रतिम गुणों के कारण वे संघ के सिरमोर बन गए।

**दुनिया में ऐसे गुरु मिलने कठिन है।**
**प्रेम से मधुर भरे, जिनके वचन है।।**

**ऐसे पाँचों पदों के गुण धारक मेरे गुरुदेव को शतशः नमन!**

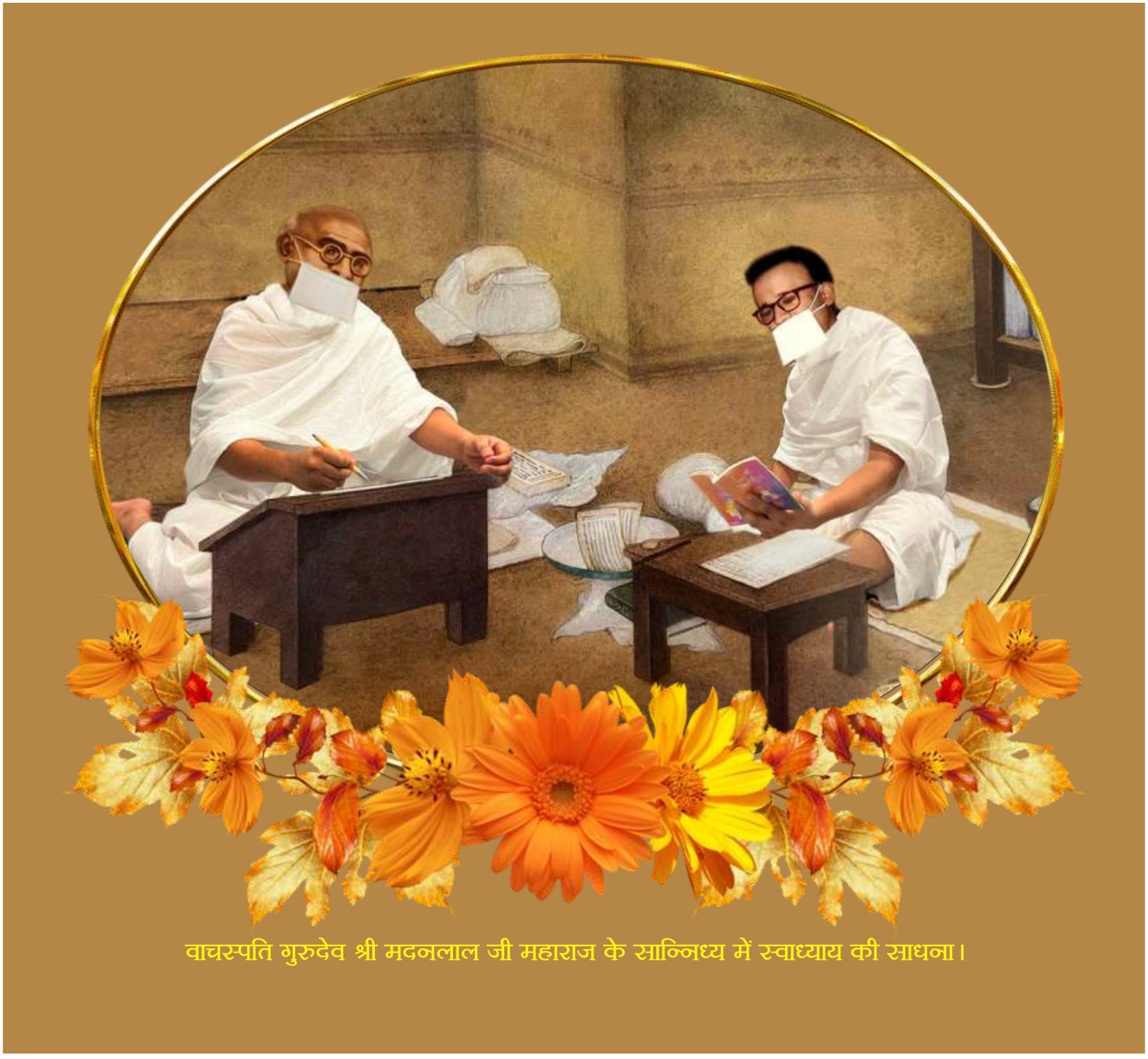

वाचस्पति गुरुदेव श्री मदनलाल जी महाराज के सान्निध्य में स्वाध्याय की साधना।

# 53 | स्वाध्याय और गुरुदेव

**स्वाध्याय** जीवन का नंदन वन है। स्व अर्थात् आत्म,अध्याय अर्थात् अध्ययन। स्वाध्याय का अर्थ हुआ आत्मिक-गुणों का अध्ययन। स्वाध्याय साधक को अध्यात्म से जोड़ने वाला सेतु है। इसलिए भगवान महावीर ने इसे आभ्यंतर तप की उपमा दी है। क्योंकि स्वाध्याय संयम व वैराग्य की नींव का पोषण एवं संवर्धन करता है।

पूज्य गुरुदेव बाल्यावस्था से ही स्वाध्याय के गहन अध्यवसायी थे। गुरुदेव अपने घर पर दस से बारह सामायिक करते समय अधिकतर समय स्वाध्याय व आत्म चिंतन में ही व्यतीत करते। बाल्यावस्था में ही उनके चिंतन क्षितिज पर ज्ञान बिन्दु उभरने लगे थे। सन् 1937 में स्वहस्त लिखित ज्ञान एवं पुस्तकों को एक अटैची में संग्रहित कर बड़े गुरुदेव के पास फिरोजपुर ले आए। वाचस्पति गुरुदेव ने वह संग्रह एक श्रावक के घर रखवा दिया परन्तु कालान्तर में वह संग्रह उन्हें नहीं मिल सका जिसका गुरुदेव को बहुत समय तक खेद होता रहा।

सन् 1952 से 1958 तक गुरुदेव बाबा जी महाराज की सेवा में चांदनी चौक विराजमान रहें। उस प्रवास के दौरान गुरुदेव ने सुविशाल महावीर जैन लाइब्रेरी की समस्त उपयोगी पुस्तकों का आद्योपांत अध्ययन किया। आप इसी से अनुमान लगा सकते हैं कि गुरुदेव स्वाध्याय के कितने पिपासु थे। वहीं गुरुदेव ने महान शास्त्रज्ञ सुश्रावक श्री मोहनलाल जी गांधी से तीस आगमों का कई बार विनयपूर्वक पारायण किया।

प्रज्वलित दीपक की पहचान यही है कि वह अपने साथ कई बुझे हुए दीपों को भी प्रकाशित कर देता है। उसी प्रवास में गुरुदेव ने कई युवकों में स्वाध्याय की प्यास जागृत की। उन्हें ज्ञान के महत्व से परिचित करवाया। गुरुदेव ने भक्तामर, कल्याण मंदिर, वीर-स्तुति, नमि-पवज्जा तथा अन्यान्य तात्त्विक विषय युवकों को कंठस्थ करवाए। सन् 1959 के बड़ौत चातुर्मास में भी स्वाध्याय का क्रम जारी रहा। गुरुदेव की इसी स्वाध्याय शिक्षण पद्धति से राजस्थान से पधारे आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज बहुत प्रभावित हुए। पूज्य गुरुदेव की शिक्षण प्रणाली से प्रेरित होकर आचार्य प्रवर ने राजस्थान जाकर फिर स्वाध्याय के प्रति विशेष अभियान प्रारंभ किया। सन् 1960 के रोहतक चातुर्मास में गुरुदेव ने स्वाध्याय क्रम को एक नई दिशा में प्रस्थापित किया। जिसका स्वल्पकालीन लाभ तो कई श्रावकों ने उठाया परन्तु इसका स्थायी रूप से लाभ लेने वाले प्रमुख श्रावक बने, श्री राजकुमार जैन (आई.ए.एस.)। जो आगे चलकर गुरु कृपा से उत्तर-भारत के वरिष्ठ एवं विशिष्ठ स्वाध्यायी बने। सन् 1962 में होशियारपुर चातुर्मास में धार्मिक परीक्षाओं का आयोजन कर गुरुदेव ने समाज को ज्ञान के प्रति जागरूक किया।

गुरुदेव श्री के स्वाध्याय स्नेह ने उन्हें इतना आत्मस्थ बना दिया कि बाह्य व्यवधान भी उनकी समाधि को भंग नहीं कर सकते थे। सन् 1978 के समालखा चातुर्मास में रेलवे स्टेशन सन्निकट होने के कारण अक्सर रात्रि में भी ट्रेनों का शोर रहता था। जब संतों ने गुरुदेव श्री को निवेदन किया कि आप रात्रि में नहीं सो पाते अत: दिन में विश्राम कर लिया करें। गुरुदेव ने बहुत ही सहज भाव से कहा,- मुझे प्रसन्नता है कि रात्रि में मैं प्रमत्तावस्था में नहीं जाता। इसी कारण मुझे रात्रि में भी

स्वाध्याय का सुअवसर प्राप्त हो जाता है।

पूज्य गुरुदेव एक जनवरी 1997 से लेकर 15 नवम्बर 1997 तक जींद में विराजमान रहे। सन् 1958 के पश्चात यह उनका सबसे दीर्घ प्रवास था। जींद चातुर्मास में गुरुदेव ने विश्व के सबसे बड़े ऐतिहासिक ग्रंथ जिसमें छत्तीस हजार प्रश्नोत्तरों का महान संकलन है। ***श्री भगवती सूत्र की वाचना प्रारंभ की***।

सन् 1998 के अम्बाला चातुर्मास में गुरुदेव ने संतों से श्री आचारांग सूत्र से प्रारंभ कर 28 से 30 आगमों का स्वाध्याय का श्रवण किया। दिन के चार प्रहरों में से दो प्रहर का समय गुरुदेव स्वाध्याय श्रवण में ही व्यतीत करते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री जीवन की अंतिम घड़ियों तक स्वाध्याय की प्रभावना करते रहे। सन् 1999 में जब साध्वी संयम प्रभा 'कमल' जी ने पूज्य गुरुदेव को लघु साध्वियों को स्वाध्याय करवाने की प्रार्थना की तो गुरुदेव ने तत्काल आज्ञा देते हुए फरमाया कि इन साध्वियों को श्रावक भाइयों की उपस्थिति में आगमों की स्वाध्याय करवाई जाए। गुरुदेव की अभिलाषा थी कि प्रत्येक साधु-साध्वी के भीतर ज्ञान का प्रकाश हो।

सन् 1989 से लेकर 1992 तक मेरा राजस्थान के क्षेत्रों में विचरण होता रहा। वहाँ मैंने आगम-साहित्य एवं स्तोक इत्यादि का विशेष अध्ययन किया। जब मैं अपनी आगम-संबंधी जिज्ञासाएं पूज्य गुरुदेव श्री के चरणों में प्रेषित करता तो गुरुदेव मेरी स्वाध्याय प्रवृत्ति को देखकर अत्यंत प्रसन्न होते। मुझे समाधान के साथ-साथ पत्र में प्रोत्साहनात्मक शब्द भी प्रेषित करते थे। गुरु-कृपा से ही मैं आगम-ज्ञान के क्षेत्र में विकास कर पाया हूँ। गुरुदेव ने मुझे स्वाध्याय के लिए कुछ निजी सामग्री भी प्रदान की। अनेक पाठ, स्तोत्र, स्तुतियां व भजन इत्यादि का साहित्य देकर मुझे गौरवान्वित किया। गुरुदेव द्वारा प्रदत्त सामग्री आज भी मेरे पास सुरक्षित है। जिसका मैं समय-समय पर मनन करता रहता हूँ।

चातुर्मास के प्रवेश से पूर्व गुरुदेव कुछ शास्त्रीय गाथाओं की स्वाध्याय किया करते थे। यह पूज्य गुरुदेव की स्वाध्यायशीलता का ही परिणाम था कि उनका आगम ज्ञान आचरण का ज्ञान बनता गया। यदि यह कह दिया जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि गुरुदेव एक चलते-फिरते आगम मंदिर थे।

**ऐसे महान गुरु के चरणों में कोटि-कोटि नमन।**

गुरुदेव सर्वथा योग्य भी और
अपने संघ के **भाव आचार्य** भी थे।
परन्तु उन्होंने कभी आचार्य पद स्वीकार
नहीं किया।

# 54 | आचार्य पद और गुरुदेव

**पंच**-परमेष्ठी महामंत्र के तृतीय पद में सुशोभित आचार्य शब्द स्वयं में एक गौरवमय पद है क्योंकि वर्तमान में आचार्य को ही तीर्थंकर का प्रतिनिधि कहा जाता है। संघ की शासन-व्यवस्था एवं उसे कल्याण पथ पर ले जाने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व आचार्य के कंधों पर होता है। संक्षेप में कहा जाए तो जैन धर्म में आचार्य के छत्तीस गुणों का उल्लेख है। इस विशेष योग्यता के धारक मुनि को ही संघ का संवाहक बनने का अधिकार होता है।

इस संबंध में भी गुरुदेव के विषय में कुछ प्रश्न जनमानस से उठते रहते हैं। (1) क्या गुरुदेव में आचार्य बनने की योग्यता थी? (2) क्या गुरुदेव अपने संघ के आचार्य थे? (3) क्या गुरुदेव को विधिपूर्वक आचार्य पद की चादर ओढ़नी चाहिए थी? यहाँ इन प्रश्नों का समाधान भी अनिवार्य है।



सर्वप्रथम पूज्य गुरुदेव की योग्यता पर प्रश्न चिन्ह उठाना ही नासमझी है क्योंकि गुरुदेव अल्प दीक्षा पर्याय में ही उत्कृष्ट योग्यताओं के स्वामी थे। इस बात को प्रमाणित करने वाला एक साक्ष्य आपको उदाहरण स्वरूप बताना चाहूँगा।

सन् 1944 में पूज्य आचार्यश्री काशीराम जी महाराज गुजरात का विचरण कर दिल्ली पधारे। उस समय उनका शरीर कृश एवं वृद्धत्व की ओर बढ़ रहा था। वे उत्तर भारत में अपना उत्तराधिकार ढूँढ रहे थे। उन्होंने वाचस्पति गुरुदेव के समक्ष मुनि सुदर्शन को आचार्य बनाने का प्रस्ताव रखा। पूज्य काशीराम जी महाराज की पारखी नजरों ने गुरुदेव के भीतर आचार्य की क्षमताओं को देख लिया था। परन्तु गुरुदेव इस बात से सहमत नहीं हुए। कहने का अभिप्राय है कि गुरुदेव आचार्य पद के पूर्ण योग्य थे। परन्तु उनमें पद-लिप्सा की भावना नहीं थी।

सन् 1947 के मूनक चातुर्मास में पूज्य फकीर चंद जी महाराज गुरुदेव की भरी प्रवचन सभा में प्रशंसा करते हुए कहते थे कि *मुनि सुदर्शन के गुण लाजवाब हैं। ये तो एक दिन किसी बड़े संघ का आचार्य बनने की योग्यता रखता है।* वाचस्पति गुरुदेव भी अक्सर यही बात कहते थे कि इतनी लघुवय में तुम्हारा जो पुण्योदय हुआ है, मैंने अपने जीवन काल में किसी अन्य मुनि का नहीं देखा।

सन् 1962 में जब पूज्य गणेशीलाल जी महाराज ने श्रमण संघ से अपना संबंध विच्छेद कर अपनी साधुमार्गी परम्परा को पुनर्जीवित कर रहे थे तो उन्होंने वाचस्पति गुरुदेव को यह समाचार प्रेषित किया कि हम नए संघ का गठन करने जा रहे हैं। यदि आप शिष्यों सहित हमारे संघ में सम्मिलित होते हैं तो हम आपके सुशिष्य श्री सुदर्शन मुनि को आचार्य घोषित करने को सहमत है परन्तु वाचस्पति गुरुदेव ने यह प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया।

उपरोक्त घटनाओं से यह बात भली भाँति स्पष्ट है कि प्रत्येक योग्य एवं संयमी परम्परा गुरुदेव को आचार्य के रूप में देखना चाहती थी। वाचस्पति गुरुदेव अक्सर गुरुदेव को फरमाते, *सुदर्शन! आचार्य बनना तुम्हारे लिए अति सुगम है परन्तु मैं तुम्हारे जीवन पथ को कंटाकाकीर्ण नहीं बनाना चाहता।*

श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर आचार्य आनंद ऋषि जी महाराज ने उत्तराधिकारी की घोषणा करने से पूर्व यह बात किसी श्रावक के समक्ष कही कि यदि हरियाणा में विराजित श्री सुदर्शन मुनि जी महाराज श्रमण संघ में सम्मिलित हो जाएं तो मुझे उन्हें आचार्य घोषित करने में हार्दिक प्रसन्नता होगी।

पंजाब परम्परा में भी एक बार उपाध्याय पद को लेकर विवाद हुआ। जिस कारण कुछ संत श्रमण संघ से पृथक हो गए। उस अवसर पर लुधियाना से श्री टी.आर. जैन ने ससंघ गुरुदेव श्री के चरणों में उपस्थित होकर निवेदन किया कि जो मुनि किसी कारणवश श्रमण संघ से पृथक हुए हैं आप उनके स्वामी (आचार्य) बन जाएं तो यह हमारे लिए गौरव का विषय होगा। उस अवसर पर भी गुरुदेव ने मुस्कुरा कर असहमति प्रकट कर दी। गुरुदेव के जीवन में अनेक प्रलोभन आए परन्तु गुरुदेव न कभी प्रलोभनों के समक्ष झुके और न ही अपने संयम मार्ग पर किसी प्रकार का समझौता किया।

पूज्य भगवन् श्री राम प्रसाद जी महाराज ने इस बात की पुष्टि करते हुए एक बार रायकोट में खुले प्रवचन में फरमाया था कि गुरुदेव का जीवन व नेतृत्व वर्तमान में स्थानकवासी परम्परा के समस्त आचार्यों में विशिष्ट स्थान रखता है। यदि इस विषय पर किसी को संदेह हो तो नि:संकोच मुझसे चर्चा कर सकता है। पूज्य गुरुदेव अपने संघ के भावाचार्य थे। आचार्य बनने के समस्त गुण उनके जीवन में समाहित थे। हम धन्य हो गए जो हमें ऐसे पुण्यशाली महापुरुष का सान्निध्य प्राप्त हुआ। उन्होंने भले ही विधिवत् आचार्य पद की चादर न ग्रहण की हो लेकिन भाव से उनमें आचार्य से सम्पूर्ण लक्षण थे।

सन् 1940 में जलगांव महाराष्ट्र से कुछ श्रावक नरवाना में गुरुदेव के दर्शनार्थ आए। उन श्रावकों में श्रीमान् रत्नलाल जी बाफना, वंशीलाल जी बोथरा व नैनसुख जी लुंकड़ प्रमुख श्रावक थे। जब वे सब गुरुदेव श्री के भव्य दरबार के दर्शन कर पुन: जलगांव आए तो मैंने पूछा कि गुरुदेव सुख-साता से विराजमान थे? तो वंशीलाल जी बोथरा बोले-आचार्य भगवन् खूब सुख-साता में थे। मैंने कहा कि गुरुदेव हमारे संघ शास्ता अवश्य हैं परन्तु उन्होंने आज तक आचार्य पद स्वीकार नहीं किया। मेरी बात सुनकर श्रावक आश्चर्यपूर्वक बोले- परन्तु गुरुदेव उनके वार्तालाप प्रवचन शैली, जीवन-शैली एवं प्रभाव से तो ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी बहुत बड़े संघ के आचार्य हों। उनके दर्शन करके ही मेरा मन श्रद्धा से अभिभूत हो गया।

दिल्ली 1993 के चातुर्मास प्रवास में महासंघ का प्रतिनिधि मंडल गुरुदेव के चरणों में आकर प्रार्थना करते हुए बोला-गुरुदेव! आपको अब विधिवत रूप से आचार्य पद ग्रहण कर लेना चाहिए परन्तु स्वभाव से विनम्र गुरुदेव ने उस अवसर पर इतना ही कहा कि आचार्य बनने के लिए अनेक योग्यताएं अपेक्षित हैं। उस समय महासंघ ने एक स्वर में कहा कि यदि आप स्वयं को योग्य नहीं मानते तो उत्तर भारत में दूसरी योग्य मूर्ति मिलनी दुर्लभ है।

उक्त चर्चा से आप समझ गए होंगे कि गुरुदेव सर्वथा योग्य भी और अपने संघ के भाव आचार्य भी थे। विलक्षण योग्यता के स्वामी होने पर भी उनमें कभी लोकेषणा का विष व्याप्त नहीं हुआ। न ही कभी उन्होंने किसी पद की आकांक्षा की। उनका जीवन सरल, सहज और आध्यात्मिक गुणों से युक्त था।

**ऐसे निर्लिप्त व्यक्तित्व को कोटिश: नमन।**

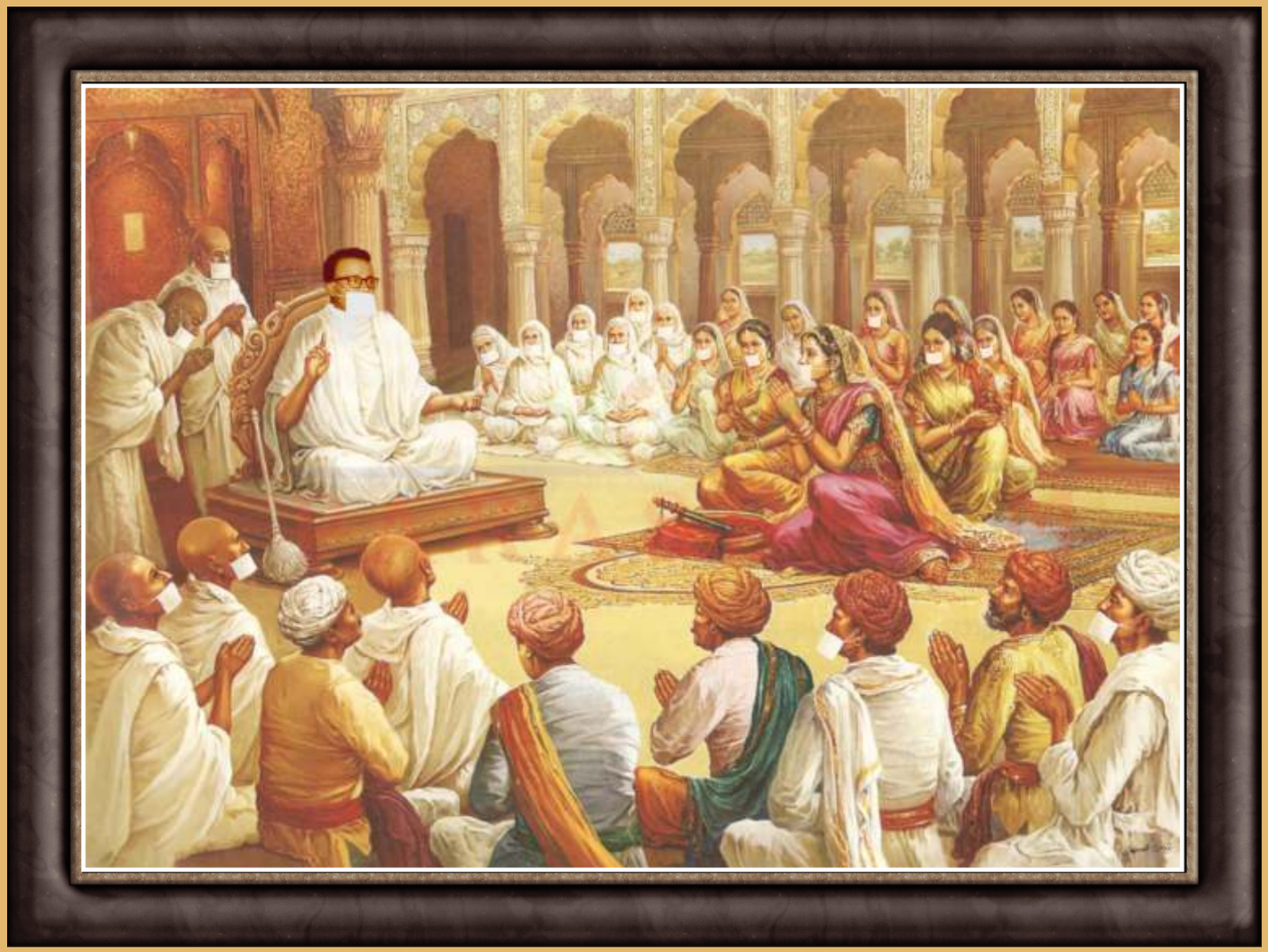

गुरुदेव एक कुशल प्रवचनकार थे।
श्रोतागण इतने मग्न हो जाते कि
समय की सुध-बुध बिसरा देते।

# 55 | प्रवचनकला और गुरुदेव

**स्पष्ट,** सटीक व वाक्पटुता के साथ सार्वजनिक सभा को संबोधित करना प्रवचन कहलाता है। भगवान ने प्रवचन को जिनशासन की प्रभावना का प्रमुख अंग बताया है। प्रवचन का अर्थ मात्र सभा को प्रभावित करना ही नहीं है। स्व-पर कल्याण के लिए किया गया संबोधन ही प्रवचन कहलाता है। वीतराग प्रभु द्वारा प्रणीत आगम को सुनाते समय यह भाव करना कि ऐसा सामर्थ्य मेरे भीतर भी प्रकट हो यही प्रवचन की कुशलता है। प्रवचन करते समय विनय, विवेक व वीतराग भाव का विकास हो। यही प्रवचन का उद्देश्य है।

इस दृष्टि से गुरुदेव एक कुशल प्रवचनकार थे। वे अक्सर प्रवचन प्रारंभ करने से पूर्व फरमाते कि जो कुछ गुरु चरणों में रहकर ग्रहण कर पाया हूँ, उसे आपके समक्ष रखने का प्रयास करूँगा। उनमें कहीं भी अहंकार की गंध नहीं थी। गुरुदेव की वाणी में ऐसी कशिश (आकर्षण) थी कि रो रहे चेहरे भी खिल जाते थे। निराशा में गिरे व्यक्ति को एक सहारा मिलता था। निष्प्राण हो रही चेतना को भी जीवंत कर देते। नास्तिक भी वैराग्यमय हो जाता। अविनीत भी माँ-बाप का आज्ञाकारी बन जाता। श्रोतागण इतने मग्न हो जाते कि समय की सुध-बुध बिसरा देते।

गुरुदेव अपने युग के प्रथम प्रवचनकार थे जिन्हें लोग प्रसिद्ध वक्ता कह कर संबोधित करते थे। सन् 1959 में यू.पी. प्रवास में उन्हें यह विशेषण दिया गया। वहाँ प्रत्येक स्थान पर गुरुदेव के प्रवचनों की धूम थी। सन् 1945 में गुरुदेव ने हांसी नगर से जो प्रवचनधारा बहानी प्रारंभ की वह जीवन के अंतिम क्षणों 18 अप्रैल 1999 तक अविरल बहती चली गई।

हांसी चातुर्मास में जब गुरुदेव ने प्रवचन प्रारंभ किया तो वाचस्पति गुरुदेव ने फरमाया सुदर्शन मुनि! आज से तुम भी कमाओ और खाओ। गुरुदेव के कहने का अभिप्राय यह था कि मैं तुम्हारी प्रवचन शैली से अत्यंत प्रसन्न हूँ। अत: आज से तुम प्रवचन के क्षेत्र में स्वयं का विकास करो और जिनशासन की प्रभावना करो। वाचस्पति गुरुदेव ने आशीर्वाद देते हुए कहा था कि आज तेरी सभा के प्रारंभ में तीन भाई हैं तो क्या हुआ? कभी तीस हजार भी होंगे।

गुरु आज्ञा प्राप्त कर गुरुदेव ने प्रवचन सामग्री का संग्रह करना प्रारंभ किया। गुरुदेव की वाणी इतनी सरस, स्पष्ट, सुरीली व विलक्षण थी कि प्रवचन के क्षेत्र में उनका कोई सानी नहीं था। जैसे वाणी के समस्त रस उनके कंठ में समा गए हों। उनकी सभा में हजारों की भीड़ उमड़ती थी। गुरुदेव ने प्रवचन के क्षेत्र में जिन ऊँचाइयों का स्पर्श किया वह अपने आप में एक कीर्तिमान था। गुरुदेव अपने प्रवचनों में अक्सर हिन्दी कविताएं, भजन, कहानी, मुक्तक, शायरी व अंग्रेजी कोटेशन भी सुनाते थे। उनका व्यक्तित्व स्थानकवासी परम्परा में एक मिसाल था।

सन् 1946 में गुरुदेव ने अहमदगढ़ मंडी में स्वतंत्र प्रवचनकार के रूप में प्रथम चातुर्मास किया। उस चातुर्मास में गुरुदेव के प्रवचनों की इतनी धूम थी कि सारा क्षेत्र गुरुदेव की वाणी का दीवाना बना हुआ था

**ध्यान योग** का मुख्य हेतु मुक्ति ही है
ध्यान के लिए **मानसिक प्रसन्नता**
अति आवश्यक है

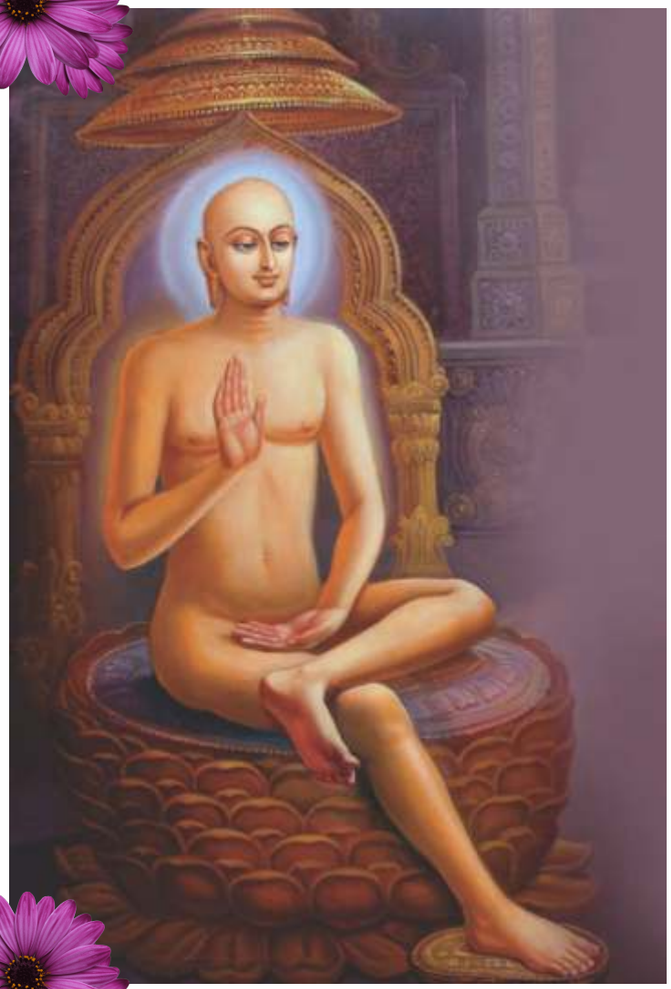

**अंहिसा** आदि द्वारा **सात्विक अनुष्ठान** से
**मानसिक प्रसन्नता** प्राप्त की जा सकती है।



और जैन समाज को एक कुशल प्रवचनकार एवं संयमनिष्ठ मुनि मिल गया। गुरुदेव के प्रवचनों का विषय वैराग्य प्रधान, सामाजिक कुरीतियों पर चोट करने वाला एवं पारिवारिक विषमताओं को समाधान देने वाला होता है।

सन् 1952 से 1958 तक गुरुदेव ने दिल्ली चांदनी चौक में अपनी प्रवचन गंगा बहायी। उस समय वहाँ बड़े-बड़े स्वाध्यायी आगम मर्मज्ञ श्रावक थे। गुरुदेव के आगम आधारित प्रवचनों एवं नित्य नई सामग्री को सुनकर सभी श्रावक बहुत प्रभावित हुए।

धीरे-धीरे गुरुदेव सिद्धहस्त एवं ख्याति प्राप्त प्रवचनकार बन गए। उनके प्रवचनों का विश्लेषण व मूल्यांकन करना सर्वथा असंभव है। वे प्रसंगों का इस प्रकार वर्णन करते कि शब्दों में अपनी आत्मा उंड़ेल देते थे। प्रवचनों में समाज जागृति एवं पारिवारिक सामंजस्य को लेकर अनमोल सूत्र प्रस्तुत करते थे। कभी रामायण का मार्मिक प्रसंग सुनाते तो कभी श्रोताओं को हास्य रस से लोटपोट कर देते। शब्दों की गंभीरता दर्शकों को सोचने पर विवश कर देती थी।

अक्सर बड़े-बड़े संत गुरुदेव की प्रशंसा करते हुए कहते थे कि सुदर्शन मुनि के तर्क काट सके ऐसा साहस किसी में नहीं है। गुरुदेव एक क्रांतिकारी प्रवचनकार थे। जो बुद्धि, भावना व तर्क के द्वारा समाज का सर्वांगीण विकास करना चाहते थे। गुरुदेव के प्रवचन सर्वजनग्राही थे। जैन एवं जैनेतर सभी लोग गुरुदेव के प्रवचनों से प्रभावित थे।

मेरा अहोभाग्य है कि मैंने पपीहा बनकर गुरुदेव के प्रवचनों का वर्षों पर्यन्त रसपान किया। वैराग्य परक प्रवचन श्रवण कर अक्सर मैं भावुक हो जाता था। कई बार तो गुरुदेव स्वयं ही मुझसे पूछ लेते अरुण! आज प्रवचन का विषय कैसा लगा। मैं गद्‌गद् भाव से उत्तर देता, गुरुदेव! आपका प्रवचन सुनकर तो आत्म कल्याण की भावना और

बलवती हो जाती है। सच कहूँ तो गुरुदेव की जिह्वा पर जैसे सरस्वती का वास था। श्रोता गुरुदेव के श्रीमुख से एक-एक वचन सुनने के लिए लालायित रहते थे और भजन, भावुक होकर गुरुदेव के साथ ही झूम-झूम कर गाते थे। मेरे मन में कई बार यह विचार आता था कि जब गुरुदेव की वाणी इतनी चमत्कृत करने वाली है तो तीर्थंकर भगवान की अतिशययुक्त वाणी का प्रभाव कैसा होता होगा?

गुरुदेव के प्रवचनों की कई कहानियां तो इतनी प्रचलित थीं कि लोग पुनः-पुनः उन्हें गुरुदेव के श्रीमुख से ही श्रवण करना चाहते थे। लोग गुरुदेव के प्रवचनों के गोपियों की भाँति दीवाने थे। गुरुदेव अपनी असाधारण अमृतमयी वाणी से सबका चित्त चुरा लेते थे। लोग चित्रलिखित से उनके मुख से एक-एक शब्द सुनने के लिए आतुर रहते थे।

सन् 1983 में हम विहार करते हुए 3 मई 1983 को कैलेबंदर (रामांमंडी पंजाब) गांव में रुके। गुरुदेव उस समय रात्रि प्रवचन नहीं करते थे। वहाँ के लोगों ने भक्ति भाव पूर्वक रात्रि प्रवचन के लिए निवेदन किया। गुरुदेव ने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा कि अरुण! आज तू कथा सुनाकर आ। दस दिन की अल्प दीक्षा पर्याय, न कोई प्रवचन का ज्ञान, न कोई अनुभव, परन्तु गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर प्रवचन सभा में जाकर भाषण कर दिया। यह प्रवचन मेरी दीक्षा के पश्चात का प्रथम प्रवचन था। उसके पश्चात सभा गुरुदेव का प्रवचन सुनकर ही तृप्त हुई। प्रवचन समाप्ति पर गुरुदेव ने मेरे सिर पर हाथ फिराते हुए कहा-अरुण! आज बेझिझक तुमने मेरी आज्ञा का पालन किया। मेरा आशीर्वाद है कि तू एक दिन कुशल प्रवचनकार बनेगा।

भगवन् श्री राम प्रसाद जी ने अपने गुरु भाई की महिमा को मंडित करते हुए एक भजन लिखा है जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

'जादू भरा-सा होता, इनका व्याख्यान है।
वाणी गंभीर इनकी, मेघ के समान है।
सिंह ज्यों गरजता स्वतंत्र वन में गर्जता'

गुरुदेव के देवलोक गमन पर भगवन् श्री ने भावुक होकर यह पंक्तियाँ भी लिखी थी :-

''जाने से उनके सरस्वती के आंगन में शोक छा गया।
वीर सा, मायाराम सा, मदन सा प्रवचन न रहा।।''

यह गुरुदेव की वाणी का अतिशय था जो मात्र लोगों को ही नहीं साधु-साध्वियों को भी मंत्र-मुग्ध कर देता था। यह सत्य है कि गुरुदेव के प्रवचनों में अपने पूर्वजों की छवि थी। जो उनके गुरु-भाइयों को भी दृष्टिगोचर होती थी।

**धन्य है वीतराग वाणी के अमर संवाहक को।**



आत्मन!
तू देह से,
मन से,
वचन से,
पुद्गलों से
एवं
कर्म से
भिन्न है।

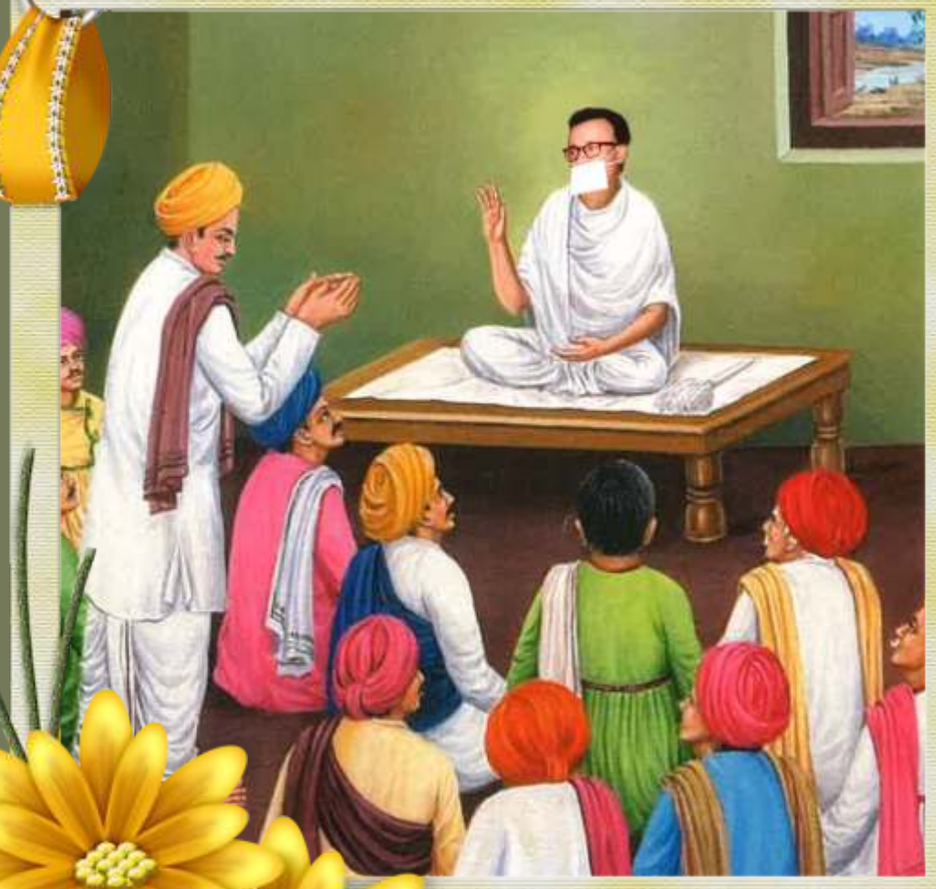

गुरुदेव के
प्रभावशाली व्यक्तित्व,
मधुर स्वभाव,
ओजस्वी प्रवचन शैली
व संयम निष्ठ जीवन से
मात्र हाथ जोड़कर विनय
करने वाले श्रावक नहीं बनाए
बल्कि उनमें सामायिक,
संवर, प्रतिक्रमण करने वाले
तत्त्वज्ञ एवं जिनशासन का
प्रचार करने वाले श्रावकों की
एक लंबी फेहरिस्त थी।

# 56 श्रावक बल और गुरुदेव

**जिनशासन** को आगे बढ़ाने के लिए भगवान ने चतुर्विध संघ की स्थापना की। साधु, साध्वी, श्रावक व श्राविका। जैसे किसी कार को गति देने में चारों पहिए एक समान सहायक है। उसी प्रकार शासन के विकास में चारों संघों का योगदान एक समान होता है। किसी का कम या अधिक मूल्यांकन करना असंभव है। भगवान ने तो श्रावक-श्राविका को माता-पिता की उपमा भी दी है। क्योंकि संयम पालन में श्रावक का अहम् योगदान होता है। श्रावकों का आधार लेकर ही मुनि अपनी संयम साधना करते हैं। श्रावकों के अभाव में निर्दोष संयम पालन संभव नहीं है।

गुरुदेव की संघ परम्परा में लाखों श्रावकों का समूह था। जिनमें कुछ श्रावक गुरुदेव को गुरु परम्परा से प्राप्त हुए थे। परन्तु गुरुदेव के प्रभावशाली व्यक्तित्व, मधुर स्वभाव, ओजस्वी प्रवचन शैली व संयम निष्ठ जीवन आकर्षण से श्रावक बल में आश्चर्यजनक अभिवृद्धि हुई।

गुरुदेव ने मात्र हाथ जोड़कर विनय करने वाले श्रावक नहीं बनाए। बल्कि उनमें सामायिक, संवर, प्रतिक्रमण करने वाले तत्त्वज्ञ एवं जिनशासन का प्रचार करने वाले श्रावकों की एक लंबी फेहरिस्त थी।

गुरुदेव ने इन श्रावकों को जिनशासन का उपासक बनाया किंतु उनको सांप्रदायिकता एवं कट्टरवाद का पाठ नहीं पढ़ाया। गुरुदेव की यही शिक्षा थी कि ज्ञान का मूल आत्मशुद्धि है, न कि वैमनस्य का प्रचार। मैंने संपूर्ण भारत में विचरण किया, परन्तु गुरुदेव सरीखा दुर्लभ व्यक्तित्व मिलना कठिन है। अधिकतर आचार्य या संघ प्रमुख अपनी परम्परा के पोषण को ही महत्त्व देते हैं। उन्हें अपने ही साम्प्रदायिक बाड़े में बांधकर रखना चाहते हैं। परन्तु गुरुदेव का संदेश था कि मुझसे नहीं अरिहंत परमात्मा से जुड़ें। शुद्ध संयम व जिनशासन से स्वयं को संलग्न करें। वर्तमान में कुछ ऐसी परम्पराएं पनप रही हैं जो श्रावक को जिनशासन से नहीं परोक्ष रूप से व्यक्तिगत परम्परा से जोड़ने में लगी हैं। ऐसे साधक व श्रावक दोनों ही प्रभु के पथ से भटक रहे हैं।

गुरुदेव का अधिकतर विचरण हरियाणा में हुआ। अतः वहाँ गुरुदेव का श्रावक बल अधिक था। जब हरियाणा के श्रावक दिल्ली में जाकर बसने लगे तो दिल्ली में भी गुरुदेव के अनुयायियों की संख्या बढ़ती चली गई। इसके पश्चात् पंजाब में भी गुरुदेव का बहुत बड़ी मात्रा में श्रावक वर्ग था। सन् 1987 के पश्चात् पंजाब में भी श्रावक विशेष रूप से बढ़ने लगे। यू.पी. में भी गुरुदेव के अनुयायियों की संख्या अच्छी खासी थी। राजस्थान में अलवर व जयपुर में भी गुरुदेव का श्रावक वर्ग मजबूत था।

गुरुदेव अपने सभी श्रावकों की आध्यात्मिक उन्नति का भी ध्यान रखते थे। उस समय टेक्नोलॉजी का इतना विकास नहीं था, फिर भी गुरुदेव हस्त लिखित पत्रों द्वारा उनकी श्रद्धा को बढ़ाने एवं नियम पालन का निर्देश देते रहते थे। किसी रूग्ण या पीड़ित को भी पत्र के माध्यम से सांत्वना देते रहते थे।।

उत्तर भारत में गुरुदेव के 70% श्रावक पूर्णत: समर्पित थे। 25% श्रावक औपचारिकता से विनय भाव करते थे। पांच प्रतिशत श्रावक विचारभिन्नता के कारण दूरी बनाकर रखते थे। परन्तु गुरुदेव के मन में सभी के प्रति मंगलभाव थे। गुरुदेव ने कभी किसी को पराया नहीं समझा।

समयानुसार गुरुदेव के श्रावक एवं साधक वर्ग का विस्तार होने लगा। अब इतने विशाल संघ में कोई न कोई विचारणीय प्रश्न अथवा समस्या उत्पन्न हो ही जाती थी। उन समस्याओं के समाधान के लिए गुरुदेव ने श्रावक वर्ग से परामर्श लेकर ही अंतिम निर्णय करते थे। संपूर्ण उत्तर भारत में गुरुदेव का समझदार, पक्षपातरहित, विश्वसनीय श्रावक वर्ग था।

जैसे जींद में मांगेराम जी, रामू जैन, रोहतक में अजीत जैन, गोहाना में जगदीश जैन, पानीपत में राजाखेड़ी वाले जगदीश जैन, बरनाला से रत्नलाल जैन, दिल्ली से किशोरीलाल जैन, राधेश्याम जैन, जीवनराम जैन, चांदनी चौंक में केसरीचंद जी पालावत, लुधियाना से सुभाष जैन गैलोरी वाले, जालंधर से चमनलाल जैन धागेवाले, दिल्ली दरियागंज से सुकमाल जैन, मूनक से जगदीश जैन, लुधियाना से फूलचंद जैन, सोमप्रकाश जैन, सुनाम से उज्जवल जैन, शालीमार बाग दिल्ली से शांति जैन, फगवाड़े से टेकचंद जैन, गोहाना से भानीराम जैन, रामेश्वर जैन, शालीमार बाग से कीमतीलाल जैन कैलाश ज्वैलर्स इत्यादि। ऐसे अनेकों बुद्धिजीवी श्रावक थे। इनके साथ-साथ मुज्फरनगर से सेठ मनमोहन जैन भी पूज्य गुरुदेव के विश्वसनीय श्रावक थे, जिनसे गुरुदेव समय-समय पर परामर्श लेते रहते थे।



सन् 1952 से लेकर 1958 तक गुरुदेव चांदनी चौक दिल्ली में विराजमान रहे। वहाँ गुरुदेव ने गंभीर, सुविज्ञ एवं हितैषी श्रावकों को

यह निर्देश दिया हुआ था कि आपको यदि मेरे आचार-विचार व प्रवचन शैली में कोई कमी दृष्टिगोचर हो तो आप मुझे निस्संकोच बता सकते हैं। जिससे मैं उस दोष का परिहार कर सकूँ। उनमें कई तत्त्वज्ञ आदरणीय श्रावक थे जैसे जमनादास जी, निहालचंद जी तथा मा. श्यामलाल जी।

इन तथ्यों से आप समझ गए होंगे कि गुरुदेव ने श्रावक वर्ग मात्र जय-जयकार या प्रदर्शन करने के लिए नहीं बनाया उनका उद्देश्य था कि संघ सभी के सहयोग से, मिलकर आध्यात्मिक विकास की दिशा में आगे बढ़ता रहे।

**ऐसे दूरदर्शी समन्वय के संयोजक गुरुदेव को शत् शत् नमन!**

पूज्य वाचस्पति गुरुदेव से वैराग्यकाल से ही तत्त्वज्ञान प्राप्तकर
गुरुदेव ने सामायिक, संवर की आराधना के
साथ-साथ तत्त्वज्ञान के प्रति भी लोगों को जागृत किया।

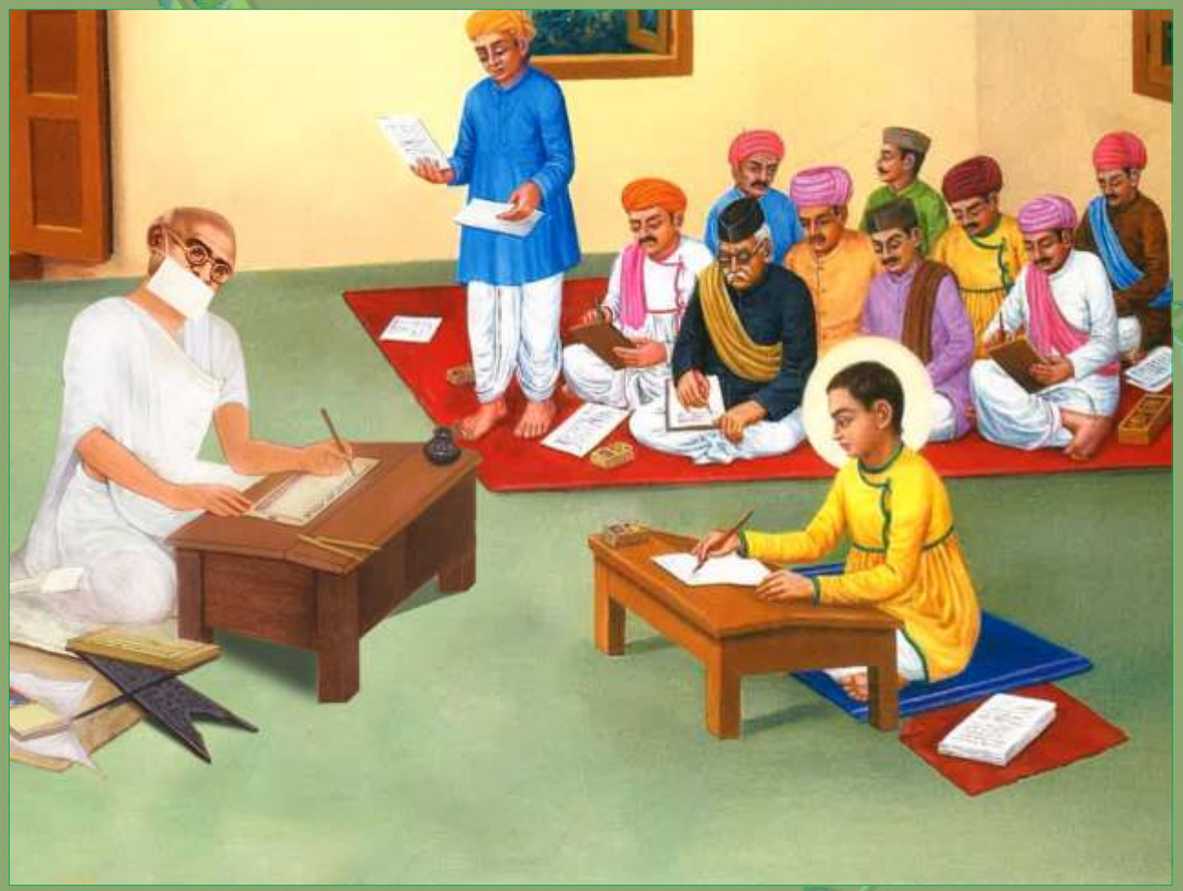

# 57 | तत्त्वज्ञान और गुरुदेव

**तत्त्वज्ञान** का अर्थ है वास्तविकता का संदर्शन, सत्य का साक्षात्कार, जिस ज्ञान से आत्मा को जड़ व पुद्गल का भेद-विज्ञान हो। सम्यक्त्व व मिथ्यात्व के अंतर को समझ पाएं। उसे आगमों में तत्त्वज्ञान कहा गया। तत्त्वज्ञान के अभाव में क्रियाकांड मात्र आडंबर है। तत्त्वज्ञान ही वह माध्यम है, जिसका अलंबन लेकर ही संत व समाज आत्मोत्थान के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है।

गुरुदेव के हृदय में स्व-पर कल्याण की प्रबल भावना थी। वे समाज को अंधविश्वास व कुरीतियों से उभारना चाहते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने अपने जीवन में ज्ञान दान का महायज्ञ प्रारंभ किया। जैन मंदिर मार्गी परम्परा में भक्ति को अधिक महत्व दिया गया है जिसके कारण मंदिर मार्गी समाज में भक्ति मार्ग का विकास तो हुआ परन्तु ज्ञान के क्षेत्र में उन्नति नहीं कर पाया। परन्तु गुरुदेव ने सामायिक, संवर की आराधना के साथ-साथ तत्त्वज्ञान के प्रति भी लोगों का रूझान जागृत किया।



यह संस्कार गुरुदेव को अपनी गुरु परम्परा से प्राप्त हुए। दादा गुरुदेव पूज्य श्री नाथूलाल जी महाराज श्रावकों को सामायिक, प्रतिक्रमण व नवतत्त्व इत्यादि का ज्ञान सिखाते। बिनौली चातुर्मास में उन्होंने 21 श्रावकों को प्रतिक्रमण याद करवाया। विशेषता यह थी कि प्रतिक्रमण सीखने वाले अधिकतर श्रावक अनपढ़ थे। आप अनुमान लगा सकते हैं ऐसे अनपढ़ पत्थरों में ज्ञान फूंकने के लिए गुरुदेव ने कितना परिश्रम किया होगा। पूज्य वाचस्पति गुरुदेव श्री मदन लाल जी महाराज ने भी ज्ञान की अलख जगाते हुए समाज को एक नई दिशा प्रदान की। इसी अद्भुत कार्य को आगे बढ़ाते हुए गुरुदेव ने तत्त्वज्ञान प्रशिक्षण के कार्य को युगानुरूप ढंग से व्यवस्थित करते हुए परीक्षा व पुस्तकों के माध्यम से एक नई दिशा दी। जिससे समाज में तत्त्वज्ञान की प्यास जागृत हो।

गुरुदेव ने अपनी प्रखर प्रज्ञा का उपयोग करते हुए सर्वप्रथम तात्त्विक स्लेबस का एक संग्रह एकत्रित किया। उस युग में यह तत्त्वज्ञान का अद्वितीय संग्रह था। इससे पूर्व पंजाब परम्परा में ऐसा तात्त्विक संग्रह नहीं था। उस संग्रह को मास्टर श्यामलाल जी ने अल्पबोध, सरल बोध व धर्म बोध के नाम से प्रकाशित किया।

इस तात्त्विक संग्रह को कंठस्थ कर सैंकड़ों युवाओं ने कितने ही लोगों ने गुरुदेव का आशीर्वाद एवं समाज से पारितोषिक प्राप्त किया। गुरुदेव ने इन अनूठी ज्ञान-प्रभावना के द्वारा वर्तमान एवं पुरातन युग के मध्य सेतु का कार्य किया। गुरुदेव के मनोभाव यह थे कि कुछ युगानुरूप परिवर्तन तो हो परन्तु पुरातन परम्पराओं का भी उल्लंघन न हो।

गुरुदेव सम्यक् ज्ञान आदि परीक्षाओं का कार्यक्रम अपने गुरुदेव के दिशा-निर्देश में ही करते थे। गुरुदेव ने 1958 तक चांदनी चौक, सन् 1959 में बड़ौत, 1960 में रोहतक, 1961 में अमृतसर एवं 1962 में होशियारपुर में परीक्षा का भागीरथ कार्यक्रम आयोजित किया। गुरुदेव किसी भी कार्य को करने से पूर्व गुरु आज्ञा को सर्वोपरि मानते थे। उस युग में श्रुतज्ञान संग्रह, पुस्तक प्रकाशन, परीक्षा पत्र, पुरस्कार एवं प्रमाण

जब सम्यक्त्व का सूर्य जगमगाते हुए उदित होता है,
तब भ्रम रूपी अंधकार दूर हट जाता है,
अनुभूति प्राप्त होती है व अहं का नाश होता है।

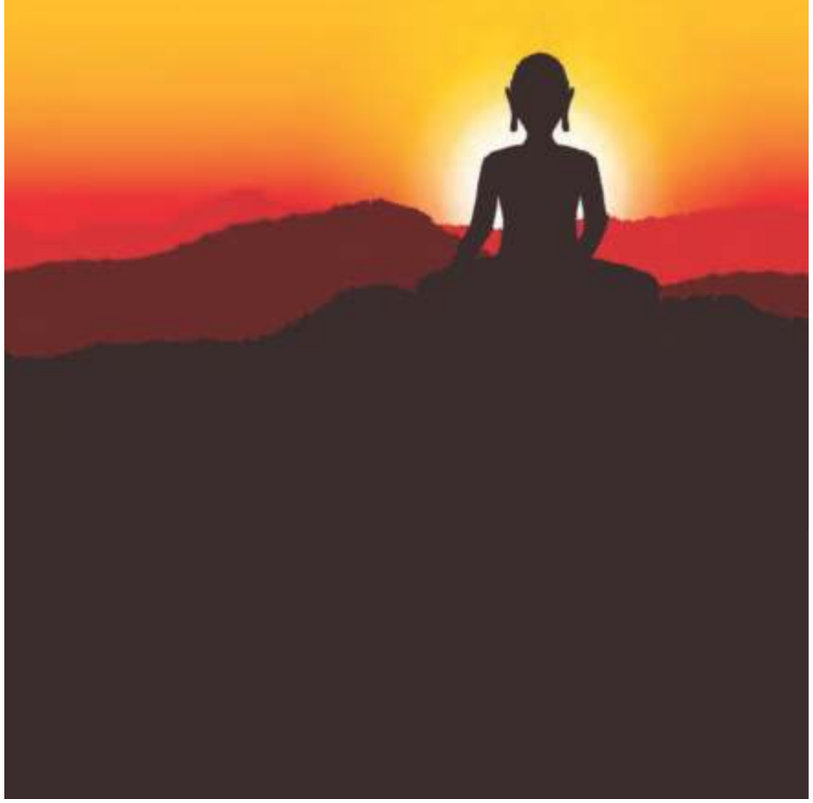

पत्र इत्यादि कार्य द्वारा समाज में नवीन क्राँति घटित की।

गुरुदेव समाज को किस्से-कहानियों, भजन व चुटकुलों तक ही सीमित नहीं रखना चाहते थे। उनकी आंतरिक भावना थी कि समाज तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में उन्नति करे। समाज जीव-अजीव, पाप-पुण्य, निर्जरा इत्यादि नव-तत्त्वों की जानकार बनें। प्रतिक्रमण, सामायिक के आध्यात्मिक महत्त्व को समझें।

सन् 1993 के त्रिनगर चातुर्मास में गुरुदेव ने मुझे संध्या-काल के समय बुलाकर कहा-अरुण मुनि! तुम्हें यहाँ प्रात:काल से धर्म ज्ञान के यज्ञ को अपने दिशा-निर्देश में संचालित करना है। मैंने तत्क्षण गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य कर ज्ञानदान के कार्य को संभाला। मैंने कभी भी गुरुदेव की आज्ञा के आगे प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया। गुरुदेव ने जो भी आदेश दिया उसे सदैव सिर झुकाकर स्वीकार किया।



त्रिनगर में प्रात:काल की कक्षा में लगभग 120 बालक युवा व वृद्ध आते थे। गुरुदेव प्रतिदिन मुझसे पूछते कि आज क्या सिखाया? और मुझे प्रशिक्षण संबंधी टिप्स भी प्रदान करते। गुरुदेव की कृपा से उस चातुर्मास में लगभग 300 भाई-बहनों ने सामायिक पाठ याद किए। चालीस भाई बहनों ने प्रतिक्रमण कंठस्थ किया। जो आज भी संवत्सरी के अवसर पर देश के विभिन्न क्षेत्रों में धर्म-ध्यान की सेवा देते हैं। लगभग 500 से ऊपर भाई-बहनों ने सामायिक व तत्त्वज्ञान से संबंधित परीक्षाएं दीं। सौ भाइयों ने प्रतिक्रमण के विषय पर परीक्षा दी। यह सब गुरुदेव के आशीर्वाद एवं कृपा से संभव हो पाया। 1993 का चातुर्मास ज्ञान के क्षेत्र में आज भी अनेक यादों को समेटे हुए है। इस चातुर्मास में गुरुदेव की छत्रछाया में प्रत्येक क्षेत्र में कीर्तिमान हुए।

**ज्ञान के दिव्य उपासक गुरुदेव को शत्-शत् नमन।**

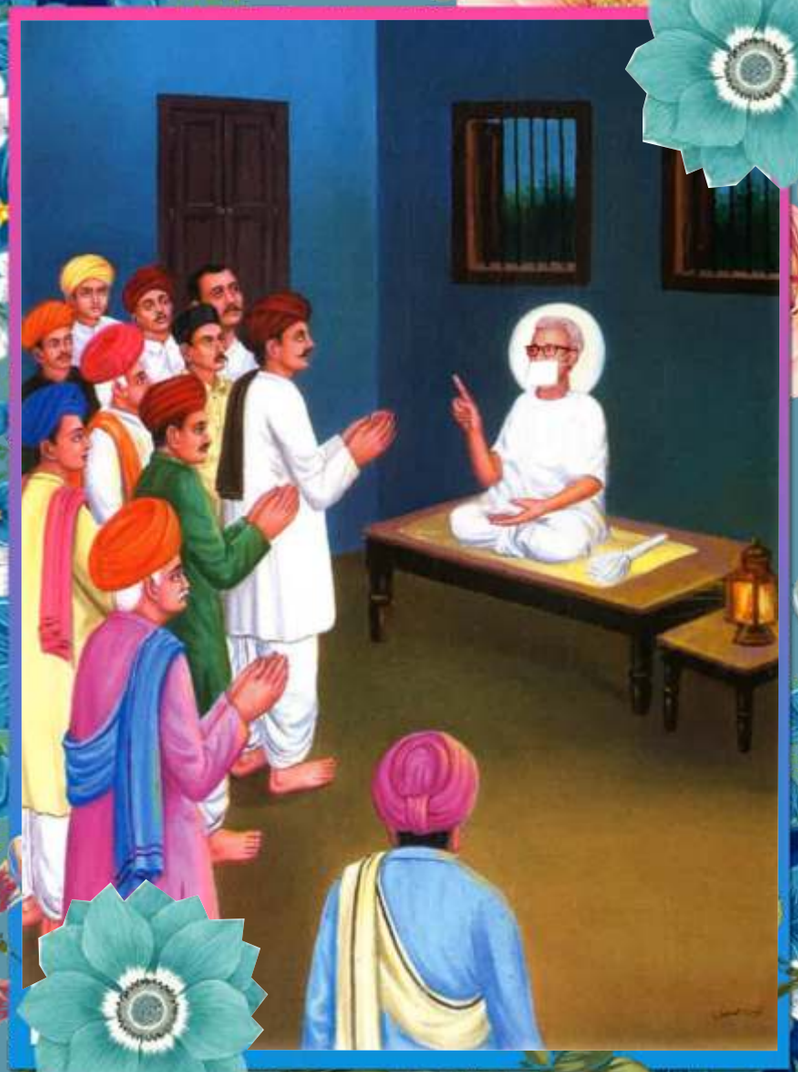

गुरुदेव महापर्व के दिनों में
व्रत, नियम,
प्रत्याख्यान की प्रेरणा देते।
हरी सब्जी व रात्रि भोजन का
त्याग करवाते।
निरंतर आठ दिन शास्त्र श्रवण
के लिए प्रेरित करते थे।

# 58 | पर्वाराधना विधि और गुरुदेव

**आर्यवर्त** भारत वर्ष पर्वों का संगम स्थल है। संपूर्ण विश्व में कहीं भी पर्वों की ऐसी उज्ज्वल संस्कृति नहीं है। पर्व का नाम सुनते ही जनमानस का हृदय उल्लास से आप्लवित हो जाता है। जीवन व जगत में नव चेतना का संचार होता है। पर्व भारतीय संस्कृति की चेतना का अभिन्न अंग है। पर्व का एक अर्थ है महोत्सव अर्थात् महान गुणों की उपासना करने वाला उत्सव। पर्व पारस्परिक सौहार्द व स्नेह को दृढ़ करने वाला उत्सव है। भारत पर्वों व त्यौहारो का देश है। इस संबंध में एक कहावत प्रचलित है। 'भारत में यदि सात वार है तो नौ त्यौहार है।' अर्थात् प्रतिदिन कोई न कोई उत्सव भारत वासियों के हृदय द्वार पर दस्तक देता है।

पर्वों को मुख्यत: दो भागों में विभक्त किया गया है : 1. लौकिक, 2. लोकोत्तर।

जिस पर्व में खान-पान व मौज-मस्ती की प्रधानता हो। उसे लौकिक पर्व कहा जाता है। परन्तु जिस पर्व के आराधन से स्व का बोध प्राप्त हो। आत्मशुद्धि की प्रेरणा मिले, जीवन संस्कारित बनें, संबंधों में स्नेह का संचार हो, व्यसनमुक्ति का पराक्रम हो व मोक्ष का पुरुषार्थ हो। वह पर्व लोकोत्तर पर्व कहा जाता है।

गुरुदेव किस प्रकार लोकोत्तर पर्वों की आराधना करते थे। इस विषय में उनके जीवन का सिंहावलोकन करेंगे।

**महापर्व पर्यूषण :** अध्यात्म की प्रेरणा देने वाला, जीवन में त्याग, तप व ज्ञान का दीप प्रज्ज्वलित करने वाला जैन संस्कृति का महान पर्व है। गुरुदेव महापर्व के दिनों में व्रत, नियम, प्रत्याख्यान की प्रेरणा देते। हरी सब्जी व रात्रि भोजन का त्याग करवाते। निरंतर आठ दिन शास्त्र श्रवण के लिए प्रेरित करते। विशेषत: प्रथम, तृतीय व अंतिम दिन पौषध पर विशेष बल देते। गुरुदेव अक्सर फरमाते संवत्सरी पर्व हमारी आत्मा के लिए दीपावली का पर्व है। इस दिन श्री अंतकृत सूत्र का वाचन पाट से नीचे उतरकर स्थिरभाव से सुनाते थे। तपस्वी भाई-बहनों को सामायिक इत्यादि के वस्त्र वितरित करवाते थे। मध्याह्न में कल्पसूत्र एवं आलोचना पाठ की वाचना होती थी। संध्याकाल में सभी श्रावक-श्राविकाओं को सामूहिक प्रतिक्रमण की प्रेरणा देते। वर्षभर यदि प्रतिक्रमण न कर पाए तो आज के दिन यह भूल क्षमा योग्य नहीं होगी। गुरुदेव इस महापर्व के महात्म्य के प्रति पूर्णत: सजग थे।



प्रत्येक माह में एक दिन सक्रांति का पर्व मनाया जाता है। इस दिन सूर्य अपनी श्रेणी का परिवर्तन करता है। सक्रांति पर्व सिख धर्म में अधिक प्रचलित था। मूर्तिपूजक समाज के आचार्य वल्लभ जी ने भी इस परंपरा का अनुगमन किया। स्थानकवासी समाज में पूज्य आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज ने 1947 से सक्रांति सुनाना प्रारंभ किया था। पूज्य मयाराम गण में सक्रांति सुनाने की परंपरा को गुरुदेव ने प्रारंभ किया। जब गुरुदेव अपने श्री मुख से नए महीने का नाम सुनाते तो लोगों में श्रद्धा का उन्माद देखने योग्य होता। क्योंकि गुरुदेव की साधना इतनी उच्च श्रेणी की थी जो श्रद्धालुओं को अभिभूत कर देती थी।

गुरुदेव के सक्रांति सुनाने का अंदाज कुछ इस प्रकार था। जैसे **सावन का महीना, मीन की सक्रांति, दिन रविवार। धर्म-ध्यान**

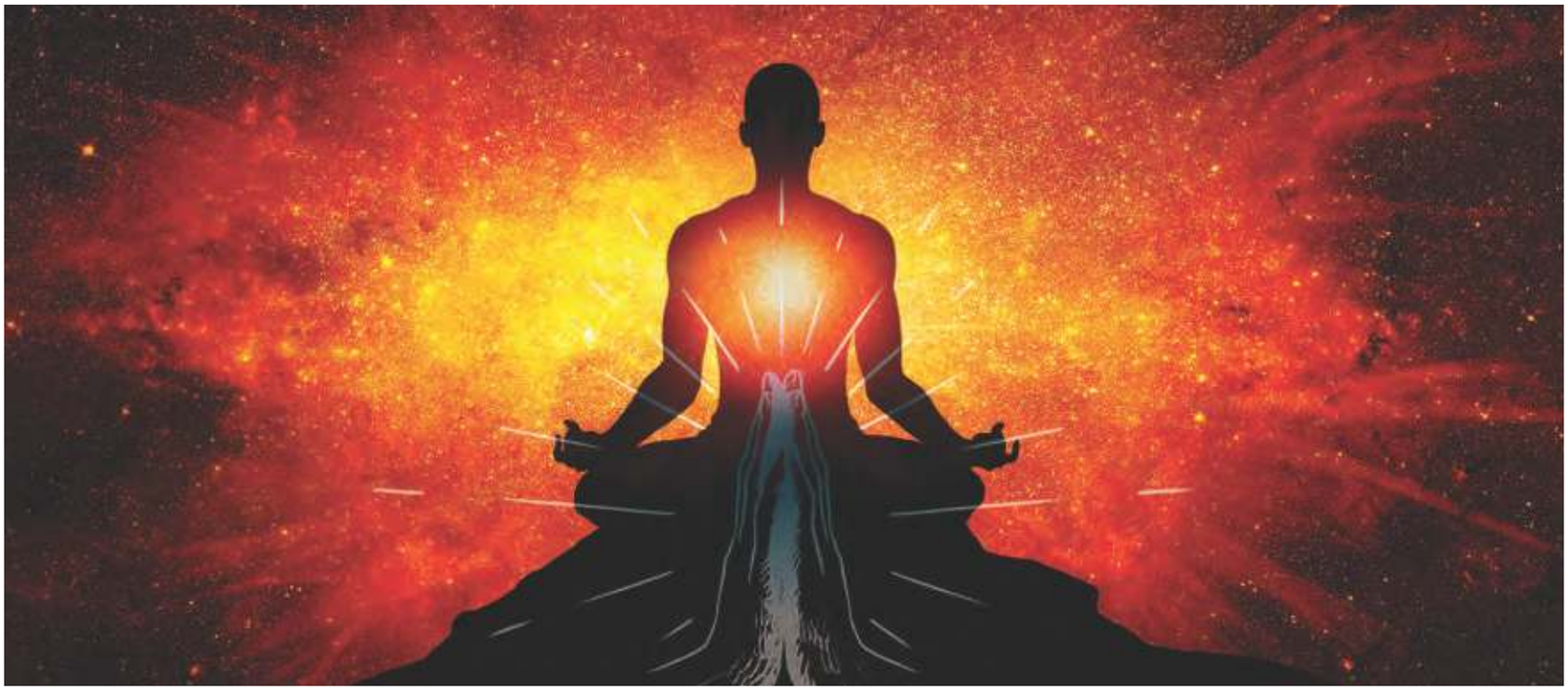



**करें। सब मंगल होगा।**

गुरुदेव दीपावली पर्व पर तेले तप की प्रेरणा देते। दिन व रात्रि में आगम एवं स्तोत्र पाठ सुनाते। वीर निर्वाण दिवस पर गुरुदेव का विशेष उद्‌बोधन होता।

रक्षा बंधन व दशहरा पर्व पर गुरुदेव का इन विषयों पर मार्मिक वक्तव्य होता था। इन पर्वों की पवित्रता व मर्यादा पर गहन विवेचन करते थे।

महावीर जयंति के पर्व की मनोरम छटा देखने योग्य होती थी। शासनपति भगवान महावीर को अपनी श्रद्धा का अर्घ्य समर्पित करते। अक्षय तृतीया के दिन तपस्वी भाई-बहनों को सम्मानित किया जाता था। गुरुदेव दीर्घ तपस्या करने वालों को प्रोत्साहन देते एवं उनके तप की अनुमोदना भी करते थे।

होली पर्व के अवसर पर साधकों को अधयात्म के गुलाल से रंगने की प्रेरणा करते। इसके अतिरिक्त गुरुदेव अन्य लोकोत्तर पर्व जैसे अष्टमी, पक्खी, चौदस, चौमासी पर्व को जप-तप व संयम से मनाने की प्रेरणा देते थे।

**ऐसे सम्यक पर्वाराधक गुरुदेव को वंदन!**

# 59 | लिखाई और गुरुदेव

**शब्दों** की बनावट व लिखावट मनुष्य की भावनाओं का प्रतिबिम्ब होती है। मानव मन की भावनाएं शब्दों का आकार लेकर बाहर प्रकट होती है। चौसठ कलाओं में भाषा लिपि का ज्ञान भी एक कला है। लिपि का अर्थ होता है भाषा की लिखावट या लिखने का ढंग। जिसमें पद, अनुस्वार व मात्रा आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है। पूज्य गुरुदेव बाल्यकाल से ही इस कला में सिद्धहस्त थे। बुद्धि का वैभव गुरुदेव को विरासत से ही प्राप्त हुआ था।

गुरुदेव कई बार अपने बचपन के संस्मरण सुनाते थे कि लघु वय में उनका लेखन बहुत ही व्यवस्थित एवं आकर्षक था। मुझे पूज्य गुरुदेव की हस्तलिखित प्राचीन कापियों को देखने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिसमें गुरुदेव के 1962 में होशियारपुर चातुर्मास के प्रवचनों का संग्रह था। गुरुदेव के सुलेख को देखकर मेरी आँखें खुली-की-खुली रह गई। अक्षर इतने व्यवस्थित थे कि जैसे कम्प्यूटर से टाइप किए हो।

गुरुदेव प्रवचनों में नित्य नया चिंतन सुनाने का प्रयास करते और उसे लिपिबद्ध भी करते रहते थे। धीरे-धीरे प्रवचन विषय और भक्तों

की संख्या बढ़ने लगी। समयाभाव के कारण गुरुदेव ने शीघ्रतापूर्वक लिखना प्रारंभ किया जिससे शब्द टेढ़े-मेढ़े लिखे जाने लगे। समय के अभाव व शारीरिक दुर्बलता ने गुरुदेव की लिखावट को महात्मा गांधी की लिखावट में परिवर्तित कर दिया।

सन् 1983 से 1999 तक मैंने गुरुदेव द्वारा लिखित सैंकड़ों पन्नों को देखा, जिसे पढ़ना व उसके भाव समझना प्रत्येक साधु के वश की बात नहीं थी। अक्सर सुनने में आता है कि महापुरुषों की लिखावट समयानुसार आढ़ी-तिरझी हो जाती है जैसे महात्मा गांधी की लिखावट भी कोई-कोई समझ पाता था।

परन्तु गुरुदेव के शब्द मेरे लिए सदैव आशीर्वाद स्वरूप रहे हैं। गुरुदेव श्री ने मुझे अपने अंतिम वर्षावास में लगभग 122 पत्र लिखें। उस समय मेरा चातुर्मास पटियाला में था। पत्रों की लिखावट देखकर मैं समझ जाता था कि संभवत: गुरुदेव ने दो मिनट में ही पत्र लिखा होगा। पूर्व समय में पंजाब परंपरा के संत श्रावकों से पत्र लिखवाते थे। परन्तु देश-काल की परिस्थितियों को देखते हुए संत स्वयं पत्र-व्यवहार करने लगे। पूर्व समय में तो श्रावक ही श्रावकों को पत्र लिखते थे। परन्तु जब संतों ने स्वयं पत्राचार प्रारंभ किया तो श्रावकों को भी प्रत्युत्तर लिखने लगे। अत: गुरुदेव को प्रतिदिन पाँच-सात पत्र लिखने होते थे और फिर प्रवचन सामग्री के लिए भी समय निकालना पड़ता था। पूज्य गुरुदेव की अंतस्फुरणा इतनी विलक्षण थी कि वे कुछ ही समय में प्रवचन सामग्री का चिंतन कर लेते थे। जिस सामग्री को लिखने में किसी संत को एक घंटा लगता, उसे गुरुदेव पंद्रह मिनट में लिपिबद्ध कर देते थे। अपने लेखन को गुरुदेव स्वयं ही समझ सकते थे। पूज्य गुरुदेव द्वारा लिखित हजारों पन्नों को देखकर मेरा मन धन्यता से अभिभूत हो जाता था व बार-बार गुरुदेव की लेखन व चिन्तन क्षमता को प्रणाम करने लगता था। भले ही गुरुदेव की लिखावट में विकृति आई परन्तु व्याकरण पूर्णत: शुद्ध एवं सटीक थी। गुरुदेव के द्वारा लिखित पन्नों पर भजन, ढालें, दृष्टांत एवं शेरो-शायरी का सुंदर सम्मिश्रण था। गुरुदेव में बुद्धि का उपयोग इतना अद्‌भुत था कि प्रवचन का चिन्तन पाटे पर बैठे-बैठे ही कर लेते थे।

गुरुदेव द्वारा हस्त-लिखित डायरियों एवं पन्नों को सैट करने का सौभाग्य मुझे कई बार प्राप्त हुआ। अव्यवस्थित पन्नों को भी मैंने क्रम से व्यवस्थित किया। पुराने पन्नों को सुरक्षित रखने का भी प्रबंध किया। पूज्य गुरुदेव ने कृपाकर कुछ हस्त लिखित पन्ने मुझे आशीर्वाद स्वरूप प्रदान किए। जो धरोहर रूप में मेरे पास आज भी सुरक्षित है। जिनकी स्वाध्याय कर मन आज भी गुरुदेव की स्मृतियों से भर जाता है। उन शब्दों में गुरुदेव के दर्शनकर मैं श्रद्धावनत होकर उनके चरणों में झुक जाता हूँ। आज भी अपने इर्दगिर्द उनकी उपस्थिति का अनुभव करता हुआ मन रोमांचित हो जाता है।

मुझे आज भी स्मरण है कि गुरुदेव के लेखन में इतनी गति थी कि जैसे कोई मशीन चल रही हो। उनकी यह कला गुरुदेव के मन की संतुलित साधना के भी दर्शन करवाती है क्योंकि संतुलित एवं एकाग्रचित्त व्यक्ति ही बिना किसी त्रुटि के इतना शीघ्र लिख सकता है।

चिन्तन का स्तर व लेखन कला मनुष्य के व्यक्तित्व का परिचय देती है। गुरुदेव के चिन्तन एवं लिखावट ने युगानुरूप ऐतिहासिक कार्य किया। इतना सशक्त लेखन महापुरुषों की परिपक्वता एवं दूरदर्शिता का परिचायक है। यद्यपि समयानुसार समाज में बहुत से परिवर्तन आए हैं, पर गुरुदेव का लेखन आज भी सटीक एवं अपटुडेट है क्योंकि महापुरुषों की सोच सार्वकालिक होती है।

**सरस्वती के महान उपासक को हम बारम्बार वंदन करते हैं।**

गुरुदेव ने सभी संघों को सामंजस्य का पाठ पढ़ाया।
आज गुरुदेव संपूर्ण उत्तर भारत के दिलों पर राज कर रहे हैं।

# 60 श्रमणसंघ और गुरुदेव

श्रमण समाज का प्रहरी होता है। भले ही उसकी साधना का लक्ष्य आत्म कल्याण करते हुए मोक्ष प्राप्ति का है। परन्तु समाज को संगठित करना भी एक सच्चे श्रमण का उत्तरदायित्व है क्योंकि श्रमण का अस्तित्व भी समाज के साथ जुड़ा हुआ है परन्तु भारत में एक समय ऐसा भी था कि पूरा स्थानकवासी समाज खंड-खंड में विभाजित था। सम्भवत: भारत वर्ष में लगभग चौबीस संप्रदाय थी और सभी संप्रदायों की अपनी-अपनी समाचारी थी। अपना-अपना अलग आचार्य था। समाज में विघटन व विषमता के कारण जिन शासन विकास की ओर नहीं ह्रास की ओर उन्मुख था।



समाज की दयनीय स्थिति देखते हुए साधु समुदाय एवं श्रावक वर्ग में एक क्रांतिकारी विचार उत्पन्न हुआ क्यों न पारस्परिक मतभेदों को विस्मृत कर हम सब एक मंच पर एकत्रित हो जाएं। नियम व समाचारी पर पर्याप्त विचार-विमर्श के पश्चात् स्थानकवासी समाज एक मंच पर एकत्रित हो गया।

इस संगठन के निर्माण के लिए मुनि भगवंतों के एक समन्वयात्मक समाचारी को लेकर अनेक सम्मेलन हुए।

जिनमें मुख्यत: सन् 1933 में 1952 में तथा 1956 में क्रमश: अजमेर, सादड़ी, भीनासर नगर में सम्मेलन संपन्न हुए। सादड़ी सम्मेलन में स्व स्वार्थ का त्यागकर एक आचार्य की रूपरेखा में श्रमणसंघ का संगठन बना जिसमें पंजाब परम्परा के तेजस्वी संत पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज का नाम सर्वमान्य हुआ। तत्पश्चात् 1956 में विधिवत् चादर समारोह हुआ।

सन् 1956 में जिन भावनाओं को लेकर श्रमण संघ का निर्माण हुआ था उसमें अविलंब कुछ त्रुटियाँ व शिथिलता आनी प्रारंभ हो गई। संघ की स्थिति देखते हुए वाचस्पति गुरुदेव ने अकाल अपने प्रधानमंत्री पद से त्याग पत्र दे दिया। यहाँ उल्लेखनीय यह है कि वाचस्पति गुरुदेव ने अपने दायित्व से इस्तीफा दिया था न कि श्रमण संघ से पृथक हुए थे। परन्तु कालान्तर में कुछ संतों को श्रमणसंघ से पृथक् माना जाने लगा।

जिस समय श्रमण संघ के संगठन व सम्मेलनों की चर्चा चल रही थी। उस अवसर पर वाचस्पति गुरुदेव ने अपने प्रज्ञाशील शिष्य सुदर्शन मुनि के विचार जानने चाहे। उस समय गुरुदेव ने विनय पूर्वक एक ही बात कही कि आप सर्वथा समर्थ है। आपका निर्णय ही मुझे मान्य होगा। गुरुदेव सुदर्शनलाल जी महाराज श्रमण संघ के निर्माण के समय, ज्ञाता-द्रष्टा थे न कि वक्ता। गुरुदेव के जीवन की एक विशेषता थी कि वे विवादास्पद स्थितियों से सदैव दूरी बनाकर रखते थे।

27 जून 1963 के पश्चात् पूज्य सुखीराम जी महाराज एवं पूज्य श्री छोटेलाल जी महाराज के सोलह संत श्रमण संघ से पृथक् हुए तो उन्होंने उस अवसर पर गुरुदेव को अपना संघ प्रमुख घोषित किया। परन्तु गुरुदेव ने कहा कि मैं अपना पद पूज्य योगीराज जी महाराज को समर्पित करता हूँ। सन् 1967 में पूज्य योगीराज जी महाराज के देवलोकगमन के

पश्चात् गुरुदेव को सर्वसम्मति से संघ प्रमुख के पद के लिए चयनित किया गया। सन् 1968 में पूज्य गुरुदेव विधिवत संघशास्ता बने। परन्तु उन्होंने कभी भी श्रमण संघीय संतों से मतभेद या संघर्ष की स्थिति नहीं बनाई।

गुरुदेव का मन्तव्य था कि आचारण में दृढ़ता एवं व्यवहार में मधुरता ही संत की पहचान है। यद्यपि उस समय श्रमण संघीय संतों की संख्या अधिक थी। फिर भी गुरुदेव के नम्र व्यवहार ने कभी कटुता या टकराव की स्थिति उत्पन्न नहीं होने दी। गुरुदेव अपने सिद्धांतों पर अडिग थे। सामंजस्य की भावना का त्याग नहीं किया।

दिल्ली चाँदनी चौक का प्रसंग है जब राष्ट्रीय कांफ्रेंस के अध्यक्ष आनंदराज जी सुराणा एक संत के साथ गुरुदेव के पास आए। अपना पक्ष प्रस्तुत करते समय उनकी वाणी आवेशपूर्ण हो गई। साथ में आए हुए संत ने भी अमर्यादित भाषा का उपयोग किया। उस समय भी गुरुदेव ने शांत भाव से मात्र यही बात कही कि जैसा मेरे गुरुदेव का आदेश होगा मैं श्रमण संघ के साथ वैसा ही व्यवहार रखूँगा।

गुरुदेव से अपने युग में कई बड़े-बड़े श्रमण संघीय संतों से समागम हुआ और उनके साथ स्नेहपूर्ण संबंध थे। जैसे जालंधर में श्री रघुवरदयाल जी महाराज, दिल्ली शक्ति नगर में पंजाब केसरी श्री प्रेमचंद जी महाराज, लुधियाना में श्रमण श्री फूलचंद जी महाराज तथा श्री रत्नमुनि जी महाराज, उपाध्याय श्री मनोहर मुनि जी महाराज, श्री राममुनि जी महाराज व श्री भद्रमुनि जी महाराज, श्री सुरेन्द्र मुनि जी, पूज्य आचार्य श्री आनंद ऋषि जी महाराज, श्री शिव मुनि जी महाराज, श्री पन्नालाल जी महाराज इत्यादि अनेक संतवृंदों से गुरुदेव का मधुर व्यवहार था। परन्तु फिर भी गुरुदेव ने अपने संघ की समाचारी से कभी कोई समझौता नहीं किया।

समय-समय पर संत एवं श्रावक वर्ग द्वारा ऐसा प्रयास भी किया गया कि गुरुदेव को सम्मानपूर्वक श्रमण संघ में वापिस लाया जा सके। इस विषय पर गुरुदेव सदैव यही कहते थे कि आप भी कुछ कदम बढ़ाएं। मैं तो प्रारंभ से ही संगठन का पक्षधर हूँ।

गुरुदेव की महानता एवं प्रज्ञाशीलता देखिए। गुरुदेव ने पर्याप्त समृद्ध श्रावकवर्ग होते हुए भी श्रमण संघ की प्रतिस्पर्धा में कोई श्रावक संघ का निर्माण नहीं किया। यहाँ तक कि अपना पृथक् तिथि-पत्र भी नहीं छपवाया। कोई पृथक पत्रिका नहीं निकाली। न ही स्थानक भवनों का अलग से निर्माण करवाया। क्योंकि गुरुदेव की भावना थी कि संत का कार्य संयम की सौरभ फैलाना हैं न कि संप्रदायवाद की दुर्गंध। गुरुदेव ने श्रमण संघ से पृथक् होकर भी कभी उनकी विचारधारा का खंडन नहीं किया।

पूज्य प्रवर्तक श्रमण श्री फूलचंद जी महाराज के साथ गुरुदेव का विशेष आत्मीय संबंध था। योग्य समझकर श्रमण जी महाराज गुरुदेव को कुछ आत्म-हित के निर्देश भी देते थे। एक बार तो गुरुदेव ने पूज्य श्रमण जी के निर्देशानुसार अपनी मुनि की सारणा वारणा भी की।

गुरुदेव का विनयभाव व मिलन सारिता जगत प्रसिद्ध थी। गुरुदेव फरमाते थे कि आचरण स्वयं के लिए है और व्यवहार दूसरों के लिए।

अगर संघ व समाज गुरुदेव के उदार दृष्टिकोण को समझ पाता तो कभी संघ का विभाजन नहीं होता। सभी संत संग्रहित होकर जिनशासन की प्रभावना करते। गुरुदेव ने सभी संघों को सामंजस्य का पाठ पढ़ाया। तभी आज गुरुदेव संपूर्ण उत्तर भारत के दिलों पर राज कर रहे हैं।

**ऐसे समन्वय साधक को मेरा कोटि-कोटि नमन्!**

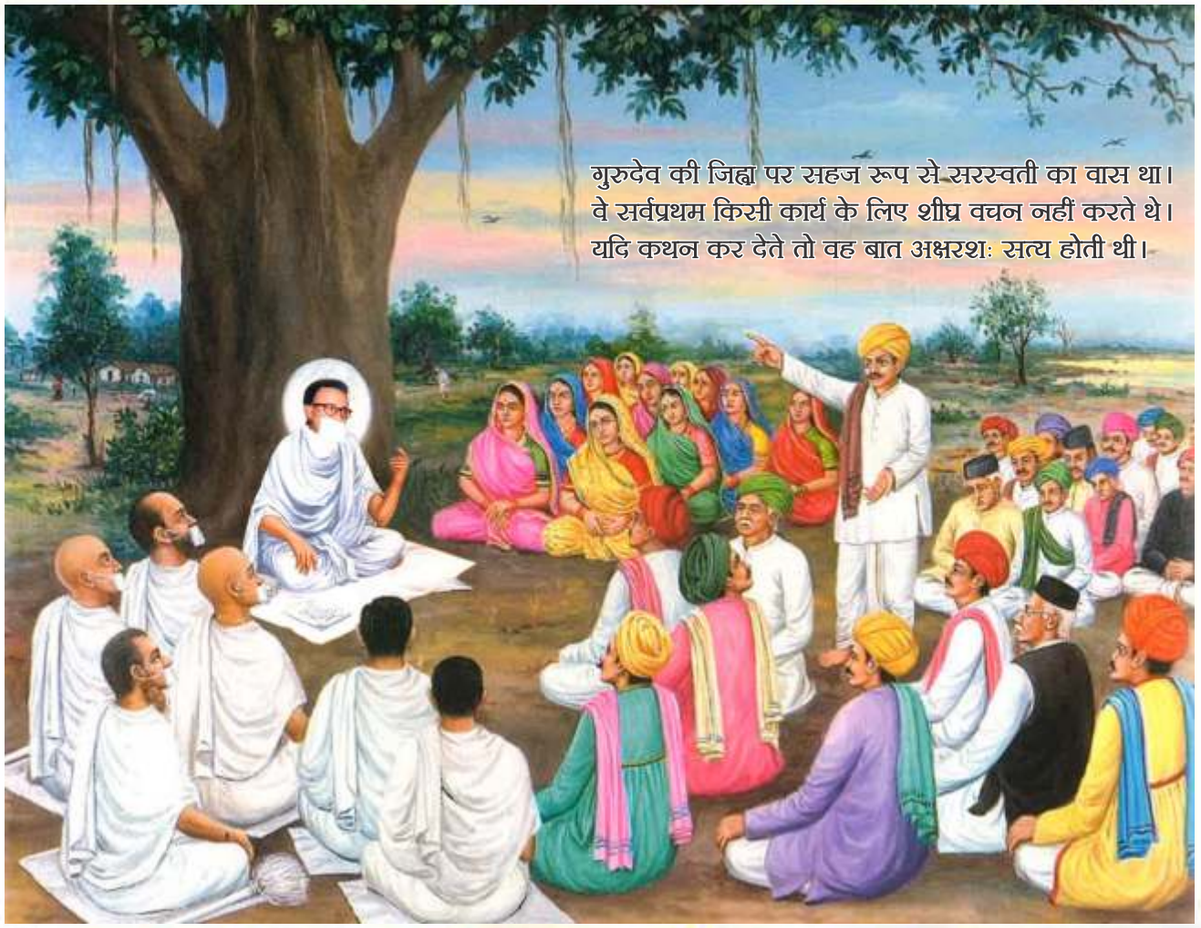

गुरुदेव की जिह्वा पर सहज रूप से सरस्वती का वास था।
वे सर्वप्रथम किसी कार्य के लिए शीघ्र वचन नहीं करते थे।
यदि कथन कर देते तो वह बात अक्षरशः सत्य होती थी।

# 61 | भविष्यवाणियां और गुरुदेव

आगमीकाल में होने वाले कार्य विशेष का पूर्व में यथावत कथन कर देना भविष्य वाणी कहा जाता है। भविष्यवाणी की सत्यतता किसी दैवी प्रेरणा अथवा आन्तरिक साधनाबल पर निर्भर करती है। परन्तु कुछ महान् साधक ऐसे भी होते हैं जिनकी बाह्य व आंतरिक प्रवृत्तियां इतनी सरल, सहज व नैसर्गिक होती है कि ऐसा साधक यदि सहजतापूर्वक कोई वचन बोल दें तो वह पत्थर की लकीर बन जाता है। प्रकृति भी उनके शब्दों की परिक्रमा करती है। गुरुदेव भी एक सरल, सच्चे साधनाशील योगी थे। जिनकी जिह्वा पर सहज रूप से सरस्वती का वास था। वे सर्वप्रथम किसी कार्य के लिए शीघ्र वचन नहीं करते थे। यदि कथन कर देते तो वह बात अक्षरश: सत्य होती थी। गुरुदेव के जीवन में ऐसी अनेकानेक घटनाएं है कि गुरुदेव ने सहज रूप से बोला और वही घटित हो गया। कहावत भी है 'संत बोले सहज सुभाएं, संत का कहा वृथा न जाए।' गुरुदेव के जीवन के कुछ प्रसंगों का मैं स्वयं साक्षी रहा हूं।

12-2-1984 से रोहतक मंडी में गुरुदेव की निश्राय में 21 संतों का सम्मेलन हुआ। मैं भी उस सम्मेलन में सम्मिलित था। 23 तारीख को गुरुदेव कुछ संतों के साथ बाबरा मौहल्ले में पधारे। तत्पश्चात् गुरुदेव का रोहतक से विहार कर गोहाना में आगमन हुआ। गोहाना में गुरुदेव अचानक एक दिन बोले-मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वापिस रोहतक जाना पड़ेगा। यद्यपि गुरुदेव का सफीदों में महावीर जयंति का भाव था। मैंने निवेदन किया-गुरुदेव! अभी तो हम रोहतक से आए हैं। भला फिर उस दिशा में विहार क्यों करेंगे? पूज्य जयमुनि जी और मैंने गुरुदेव की आज्ञा प्राप्त कर बुटाणा व मोरखी की दिशा में विहार किया।

इधर रोहतक से पूज्य बाबा भंडारी जी महाराज का समाचार आया कि मेरा स्वास्थ्य समीचीन नहीं है। अत: मैं आपसे भेंट करना चाहता हूँ। गुरुदेव ने तुरंत रोहतक की ओर विहार किया हमें भी समाचार मिला कि आप दो ठाणे से मोरखी से पुन: रोहतक पधार जाएं।

यह सुनते ही मुझे गुरुदेव के वचनों का स्मरण हो गया। जब गुरुदेव ने अचानक कहा था कि हमें पुन: रोहतक जाना पड़ेगा।

सन् 1981 में जब मेरे सांसारिक परिवार ने मुझे गोहाना में जबरदस्ती गुरु चरणों से घर वापिस ले गए। गुरुदेव जानते थे कि बालक अरुण के मन में दीक्षा का दृढ़ भाव है। उस समय उन्होंने नरवाना के श्रावक टेकचंद जैन (घसो वाले) को बता दिया था कि अरुण अब फरवरी तक नरवाना वापिस आ जाएगा। गुरुदेव की बात अक्षरश: सत्य सिद्ध हुई। फरवरी 1982 में ही मेरा नरवाना में गुरु चरणों में आने का संयोग बना। सन् 1983 में मेरी व अचल मुनि जी की दीक्षा तिथि निर्धारित हो गई। परन्तु कहीं से भी शोभा यात्रा में हाथी की व्यवस्था नहीं हुई। मेरे संसारी पिता जी का मन था कि मैं अपने पुत्र को हाथी पर बैठे देखना चाहता हूँ? इस तरह लाला हंसराज जी को चिंतित देखकर गुरुदेव ने फरमाया आप यहाँ से पश्चिम दिशा में जाए तो आपका मनोरथ पूर्ण हो जाएगा। समयानुसार लाला जी बस में बैठकर गंगानगर

की ओर गए। मार्ग में एक हाथी दिखाई दिया। उन्होंने बस से उतरकर बात की तो शोभा यात्रा में हाथी का प्रबंध हो गया। ऐसे महान योगी थे गुरुदेव! यदि कुछ सहज में फरमा देते तो वह विधि का विधान बन जाता।

सन् 1985 में मेरा संस्कृत का अध्ययन चल रहा था शास्त्री की परीक्षा के लिए मेरा शिक्षण गतिमान था। दिसंबर 1984 में जून 1985 तक रोहतक में पूज्य भंडारी जी महाराज की सेवा में रहते हुए मैंने भगवन् श्री रामप्रसाद जी महाराज व श्रद्धेय श्री जयमुनि जी महाराज से शास्त्री के कोर्स की तैयारी की थी। उसी समय राजस्थान में विचरण कर रहे संघस्थ मुनियों का समाचार आया कि हमें यहाँ एक मुनि की आवश्यकता है। गुरुदेव ने मुझे इंगित करते हुए राजस्थान जाने की आज्ञा दी। गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर मैं राजस्थान जाने के लिए तैयार हो गया। राजस्थान जाने का अर्थ था इस वर्ष शास्त्री की परीक्षा ना दे पाना। इसी बीच गुरुदेव ने समीपस्थ मुनि को एक कागज पर लिखकर दिया। अरुण मुनि दो दिन पश्चात विहार कर रोहतक वापिस आएगा। संभवत: यह उसके विनय की परीक्षा है। मैंने राजस्थान की दिशा में विहार तो किया परन्तु दो दिन पश्चात ही संतों का समाचार आया परिस्थितियों अनुकूल होने से अतिरिक्त संत की आवश्यकता नहीं है। अत: संत भेजने का कष्ट न करें। जब मैं विहार कर पुन: रोहतक वापिस आया तो गुरुदेव ने वह कागज मंगवाया था। जब उसे पढ़ा गया तो सभी मुनि आश्चर्य चकित थे। यह था गुरुदेव की वाणी का प्रभाव।

सन् 1997 में नवांशहर चातुर्मास से पूर्व लुधियाना में मेरे पाँव में तकलीफ हुई। डॉक्टर ने ऑपरेशन की सलाह दी। मैं आर्तध्यान में चला गया। उस संवेदनशील अवसर पर गुरुदेव ने प्रोत्साहन भरा पत्र लिख कर कहा-अरुण मुनि! तुम चिंता मत करो। तुम अपने पैरों पर चलकर नवांशहर जाओगे। एक मुस्लिम डॉक्टर का संयोग बना। जिसके उपचार से मैं पद यात्रा कर चातुर्मास के लिए गया।

सोनीपत में श्रद्धेय जयमुनि जी महाराज ने गुरुदेव से अट्ठाई तप करने की आज्ञा मांगी। गुरुदेव ने कहा-मैं तप के क्षेत्र में अतंराय नहीं दूँगा। परन्तु तुम प्रयास करो। तुमसे अट्ठाई तप नहीं होगा। इधर तेले के दिन ही पूज्य जयमुनि जी को पित्त का प्रकोप हुआ। जिस कारण अगले दिन पारणा करना पड़ा। गुरुदेव को जयमुनि जी महाराज ने पूछा- गुरुदेव! आपने पहले ही कैसे बता दिया? गुरुदेव मुस्कुराते हुए बोले- मुझे तुम्हारे शरीर की प्रकृति का ज्ञान है।

एक बार शरीर से दुर्बल श्री नवीन मुनि जी ने आज्ञा मांगी। गुरुदेव ने कहा-हिम्मत रखना। तपस्यापूर्ण हो जाएगी। किसी ने कल्पना भी नहीं की होगी कि कृश शरीरी श्री नवीन मुनि जी का अट्ठाई तप सातापूर्वक पूर्ण हो जाएगा। गुरुदेव के हृदयगत रहस्यों को समझना कठिन है। परन्तु इतना अवश्य था कि गुरुदेव का वाक्य कभी व्यर्थ नहीं गया।

**ऐसे सरल हृदय सहज साधक को मेरा नमन!**

**हे आत्मन्!**
**विकल्पों के उस पार**
**तू प्रकाश से जगमगा रहा है।**
**अब खो जा! अपने में ही!**

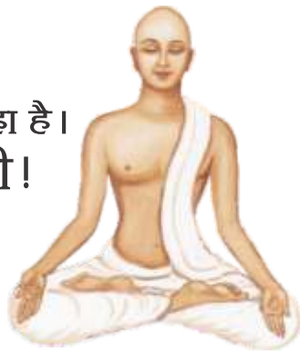

गुरुदेव कभी **संकीर्ण** विचार धाराओं के बंधन में **आबद्ध नहीं** हुए। वे **उदारता** के राजमार्ग के महापथिक थे।

# 62 | उदारता और गुरुदेव

उदारता वह दैवीय गुण है, जो एक साधारण मनुष्य को पूजनीय बनाता है। तप, दान व ज्ञान ध्यान-यह सद्गुण लोकेषणा से प्रभावित होकर भी किए जा सकते हैं। परन्तु उदारता एक आंतरिक मनोवृत्ति है जो सहज सरल हृदय से प्रकट होती है। किसी विरल विभूति में ही इस अलौकिक गुण का प्रादुर्भाव होता है। उदार व्यक्तित्व महापुरुष का यश रूपी शरीर युगों तक अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। इसी महान गुण के कारण पूज्य गुरुदेव की मधुर स्मृतियां आज भी हमारे में जीवित हैं।

गुरुदेव कभी संकीर्ण विचार धाराओं के बंधन में आबद्ध नहीं हुए। वे उदारता के राजमार्ग के महापथिक थे। गुरुदेव के उदार व्यक्तित्व के आख्यान सुनकर आप भी भाव विभोर हो जाएंगे।



सन् 1967 में गुरुदेव भटिण्डा में विराजमान थे। संवत्सरी पर्व से एक दिन पूर्व कुछ श्रावकों ने आकर गुरुदेव से मंगलपाठ सुनाने का निवेदन किया। गुरुदेव ने पूछा कोई विशेष कार्य? श्रावक बोले-हम माछीवाड़ा में पूज्य छगनलाल जी महाराज के सान्निध्य में संवत्सरी मनाने जा रहे हैं। गुरुदेव ने स्नेहपूर्वक मंगलपाठ की कृपा की। एक बार भी उन्हें रोकने या समझाने का प्रयास नहीं किया। जब वे श्रावक पूज्य छगनलाल जी महाराज के पास गए तो पूज्य श्री ने उन्हें उपालम्भ देते हुए कहा-तुम्हारे नगर में इतना बड़ा चातुर्मास है फिर वहाँ रहकर धर्माराधन करनी चाहिए। क्या मुनि सुदर्शन ने आपको नहीं रोका? श्रावक बोले,-गुरुदेव ने हमारे भावों का तनिक भी विरोध नहीं किया। यह सुनकर छगनलाल जी महाराज बहुत प्रभावित हुए बोले-मुनि सुदर्शन महान् प्रतिभावान संत रत्न है। ऐसे उदार व्यक्तित्व संत का परचम एक दिन पूरे देश में लहराएगा।

1985 में जब गुरुदेव हांसी पधारे। वहाँ चारों परंपराओं के श्रावक-श्राविकाएं दर्शनों के लिए उमड़ पड़े। जनता में अपूर्व उत्साह था। गुरुदेव सभी परंपराओं के धर्मस्थलों में विराजे। उस समय कुछ तेरापंथी श्रावकों ने गुरु धारणा देने का अनुरोध किया। परन्तु उदार हृदय गुरुदेव ने कहा-मेरा कार्य विघटन का नहीं है। अपनी परंपरा में रहकर आत्म कल्याण करना ही श्रेयस्कर है। यह गुरुदेव के जीवन की उदारता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

सन् 1987 में पूज्य आचार्यश्री नानालाल जी महाराज के शिष्य श्री शांतिमुनि जी महाराज गुरुदेव के दर्शनार्थ पधारे तो गुरुदेव स्वयं उन्हें आगे तक लेने गए। भारत की किसी भी परंपरा में यह दृश्य दुर्लभ है कि कोई संघपति लघु मुनि के स्वागत के लिए आगे जाए। गुरुदेव की उदारता को देखकर शांतिमुनि जी चकित हो गए। इस प्रकार अतिथि सत्कार करना गुरुदेव की उदारवृति का ही गुण था।

सन् 1970 में बड़ौत श्री संघ की उत्साहपूर्ण चातुर्मास की विनती थी। समाज के कुछ भाईयों ने आचार्य श्री आनंदऋषि जी महाराज के चातुर्मास की आवाज़ उठाई। जब गुरुदेव को इस बात का ज्ञान हुआ तो उन्होंने बड़ौत श्री संघ को बुलाकर समझाया। हम तो आपके स्थानीय संत हैं। भविष्य में भी चातुर्मास कर लेंगे। परन्तु पूज्य आचार्यश्री हमारे

अतिथि हैं। उनका सम्मान करना हमारा कर्त्तव्य है। अत: इस बार आचार्यश्री के चातुर्मास की उत्साह पूर्वक विनती करें। हम कहीं अन्यत्र चातुर्मास करेंगे। इस प्रकार की उदारता त्यागवृति का संदर्शन दुर्लभ है।

1989 में जब श्रद्धेय प्रकाश मुनि जी महाराज, श्री राजेंद्रमुनि जी महाराज तथा मैं (अरुणमुनि) ठाणा-3 से राजस्थान यात्रा के लिए विहार करने की अनुमति लेने गुरुचरणों में आए उस समय गुरुदेव ने विशेष आदेश देते हुए कहा-तुम जिस किसी भी क्षेत्र में विचरण करो वहाँ के प्रमुख संतों के दर्शन अवश्य करना। बड़े संतों से कृपा रूपी आशीर्वाद प्राप्त करना। तुम्हारे मधुर संबंधों की सुगंध यहाँ उत्तर भारत तक महकनी चाहिए। गुरुदेव अपने संतों को भी उदारता के संस्कार देते थे।

गुरुदेव ने समाज में कभी कट्टरता का विष नहीं फैलाया। गुरुदेव सदैव यही शिक्षा देते थे जहाँ संयमी महापुरुष के दर्शन करो वहां झुककर वंदन अवश्य करो। कट्टरता विद्वेष को जन्म देती है। द्वेष की चिंगारी आत्म गुणों को नष्ट कर देती है और संघ को भी विध्वंस की राह पर ले जाती है।

इस युग में ऐसे उदार हृदय संत के दर्शन होना भी सौभाग्य का सूचक है। मैं भाग्यशाली हूँ जो मुझे ऐसे महान गुरु का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

**ऐसे उदार हृदय संत के चरणों में शत-शत नमन।**

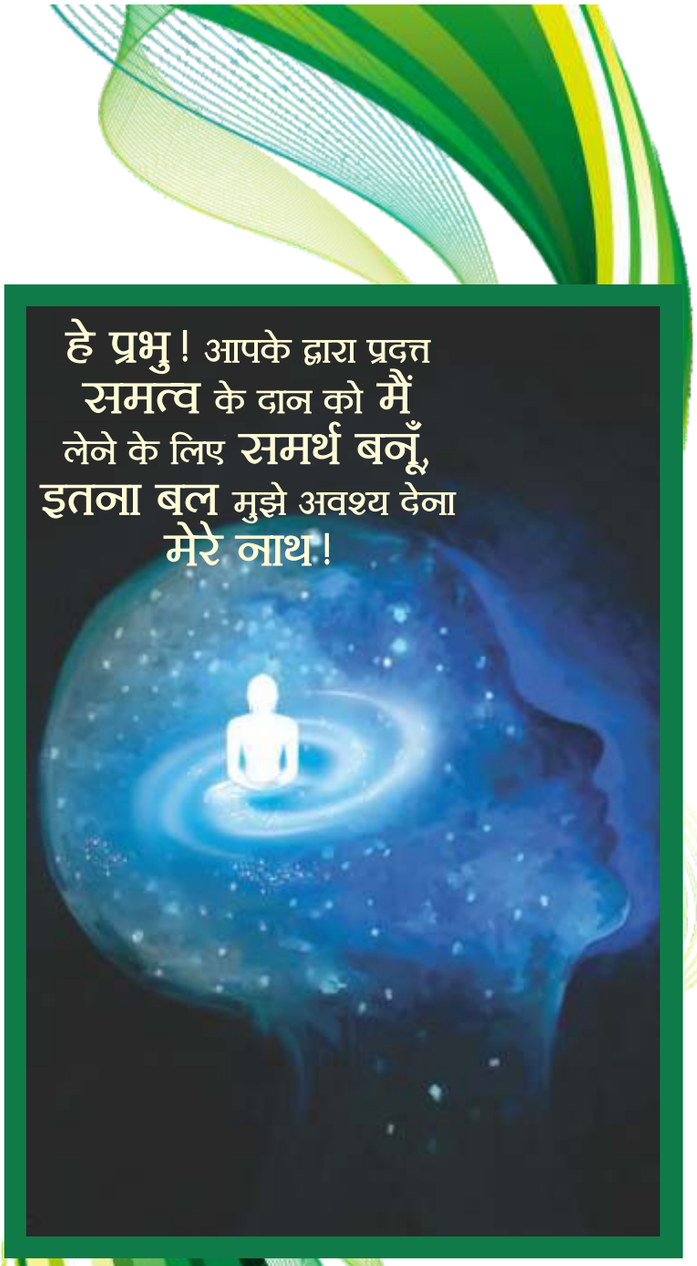

गुरुदेव ने **जरा जीर्ण** हो गए क्षेत्रों में
क्राँति का शंखनाद कर जैनत्व की सुरक्षा एवं जिनशासन की प्रभावना की।

# 63 | प्राचीन क्षेत्रों का जीर्णोद्धार और गुरुदेव

**धर्म** के संस्कारों को पल्लवित पुष्पित करने में धर्म स्थान की अहम भूमिका होती है। आगम साहित्य में वर्णन आता है कि श्रावक अपने भवन के साथ-साथ पौषधशाला का भी निर्माण करते थे। जो सामायिक, संवर व पौषध के अतिरिक्त मुनियों के निर्दोष संयम पालन मे भी उपयोगी बनते थे। परन्तु समय के अनुसार परिस्थितियां परिवर्तित होती गई। फिर सामूहिक धर्म-ध्यान के लिए धर्म-स्थलों का प्रचलन बढ़ गया। दुर्भिक्ष एवं बाह्य आक्रमणों के कारण कुछ स्थल जरा जीर्ण हो गए तो कहीं साधु-संतों से संपर्क के अभाव के कारण लोगों ने धर्म परिवर्तन कर लिया। परन्तु गुरुदेव ने इस क्षेत्र में भी क्राँति का शंखनाद किया। जैनत्व की सुरक्षा एवं जिनशासन की प्रभावना में गुरुदेव का अतुलनीय योगदान रहा है।

उस समय की भौगोलिक स्थिति वर्तमान से भिन्न थी। हरियाणा प्रदेश पंजाब के अंतर्गत ही समाहित था। वर्तमान पंजाब का क्षेत्र तो समृद्धिशाली एवं संस्कारित था परन्तु हरियाणा प्रदेश का हिस्सा अभी भी बहुत पिछड़ा हुआ था। लोगों के रहन-सहन व खान-पान में ग्रामीणता की झलक थी। स्थानीय भाषा भी असभ्य थी। उस विषम परिस्थिति में भी लोगों को संस्कारित करने का उत्तरदायित्व संभवत: सर्वप्रथम पूज्य कान्हीराम जी महाराज एवं पूज्य मयाराम जी महाराज ने संभाला।

सन् 1970 के आसपास लोगों ने गाँव से निकल कर शहरों में निवास स्थान बनाए। उस समय तक पूज्य वाचस्पति गुरुदेव का देवलोक गमन हो चुका था। उनके इस कार्य को पूज्य गुरुदेव एवं उनके संतों ने संभालने का जिम्मा उठाया। गुरुदेव की प्रेरणा से हरियाणा में कई प्राचीन क्षेत्रों का जीर्णोद्धार हुआ और कई नए स्थानों पर जैनत्व के प्रचार के कारण नव स्थानकों का भी निर्माण हुआ।

उन दिनों हरियाणा में पंजाब परम्परा के संतों का विचरण बहुत कम था। मात्र पूज्य मयाराम जी की परम्परा के संतों ने ही इन सभी क्षेत्रों को संस्कारों से समृद्ध बनाया। पानीपत, मतलौड़ा, जींद, सोनीपत, समालखा, गन्नौर, नरवाना, उचाना, पीलूखेड़ा आदि क्षेत्रों का विशेष रूप से विकास हुआ। गुरुदेव ने स्वयं एवं अपने संघस्थ मुनियों के चातुर्मास इन क्षेत्रों में करवाए। संतों की प्रेरणा प्राप्त कर लोगों में उत्साह बढ़ने लगा। प्रवचनों में संख्या निरंतर बढ़ रही थी। उसी के अनुरूप लघु स्थानकों ने फिर भव्य रूप ले लिया। शहरों में जैन धर्मानुयायियों की संख्या बढ़ी तो वहाँ भी भव्य स्थानक बने। जब हरियाणा में स्थानकवासी समाज का इतिहास लिखा जाएगा तो पूज्य गुरुदेव का नाम उस इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित होगा। अन्यथा उस इतिहास का कोई मूल्य न होगा।

क्योंकि पूज्य गुरुदेव एवं उनकी शिष्य परम्परा ने इस क्षेत्रों में संस्कारों के बीज वपन के लिए अपने जीवन काल के कई वर्ष व्यतीत किए हैं। सन् 1963 के पश्चात वहाँ कई नवीन क्षेत्रों का विस्तार भी हुआ। कोई भी क्षेत्र गुरुदेव की कृपा से अछूता नहीं रहा।

गुरुदेव में एक विशेषता यह भी थी कि उन्होंने जन-जन में जैन

धर्म के प्रति श्रद्धा एवं आस्था का निर्माण किया। जगह–जगह स्थानक भवनों का निर्माण भी हुआ। परन्तु कहीं भी पत्थरों पर अपना नाम लिखवाने की कोई लालसा नहीं थी। उनका नाम लोगों के दिलों में अंकित था। वे जैन संस्कृति के संरक्षक थे। धर्म–स्थलों के निर्माण के साथ–साथ गुरुदेव ने लोगों के भीतर सामायिक, प्रतिक्रमण आदि का भाव जागृत कर आत्मिक विकास की प्रेरणा भी दी। क्योंकि भवन निर्माण का मुख्य उद्देश्य ही धर्म की प्रभावना है। कतिपय स्थलों पर गुरुदेव ने शास्त्रीय ज्ञान द्वारा लोगों में श्रावक के व्रतों के प्रति रुचि उत्पन्न की। गुरु कृपा से ऐसे कई क्षेत्र हैं जहाँ आगमों की स्वाध्याय, कर्मग्रंथ का अभ्यास, थोकड़े आदि सीखने की विशेष रुचि बनी। लोगों ने बारह व्रत भी ग्रहण किए। हरियाणा के कई क्षेत्र जैसे रोहतक, जींद, सोनीपत आदि जिलों पर गुरुदेव की विशेष कृपा रही।

हरियाणा के साथ–साथ यू.पी. के कई क्षेत्रों पर भी गुरुदेव का असाधारण उपकार रहा जैसे शामली का क्षेत्र। इस क्षेत्र में तो जैन स्थानकवासी समाज लुप्तप्राय हो गया था। गुरुदेव ने इस क्षेत्र में पर्याप्त समय व्यतीत किया। अपने संतों को भी संस्कार पोषण की आज्ञा दी। उसी के परिणाम स्वरूप यहाँ एक श्रावक वर्ग खड़ा हुआ। कई स्थानकवासी घरों ने पुनः सामायिक प्रारंभ की। धर्म–ध्यान के लिए भव्य जैन स्मारक बना।

गुरुदेव ने प्रत्येक क्षेत्र में जैन स्थानकवासी सभा के नाम से ही भवन निर्माण की प्रेरणा दी। यह भाव गुरुदेव की उदार वृत्ति एवं संघनिष्ठा का परिचायक है। अन्यथा गुरुदेव का जनमानस पर इतना अतिशय प्रभाव था कि वह स्थान–स्थान पर मदन स्मृति भवन भी बनवा सकते थे। परन्तु गुरुदेव कभी भी निजी संस्था निर्माण के पक्षधर नहीं रहे।

गुरुदेव ने अपने जीवनकाल में जो बीज वपन किए वही बीज आज वट वृक्ष बनकर जिनशासन की गौरव–गाथा गा रहे हैं।

**ऐसे शासन–प्रभावक गुरुदेव को हार्दिक नमन।**

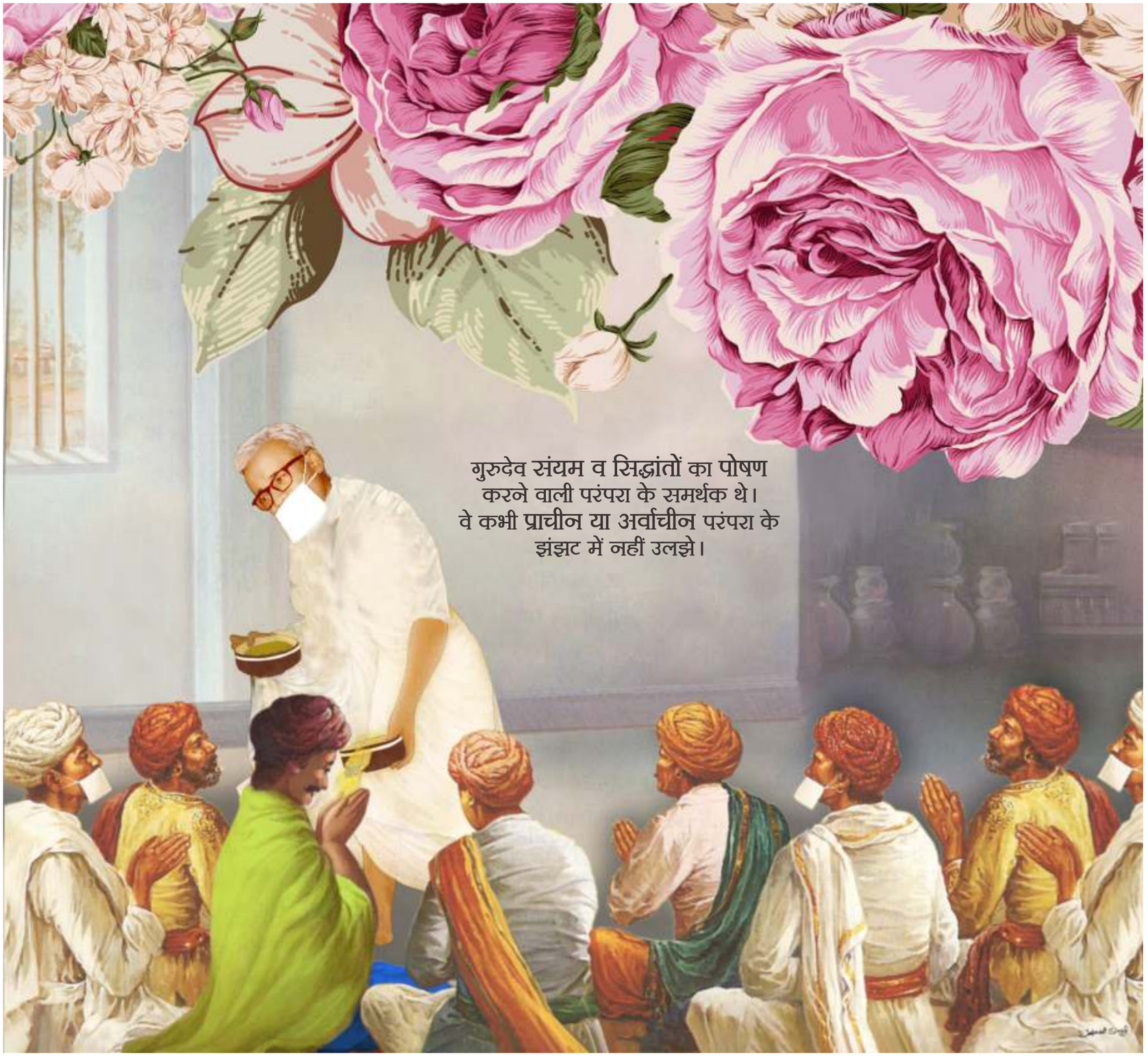
गुरुदेव संयम व सिद्धांतों का पोषण
करने वाली परंपरा के समर्थक थे।
वे कभी प्राचीन या अर्वाचीन परंपरा के
झंझट में नहीं उलझे।

# 64 | वर्षीतप और गुरुदेव

**युगादिदेव** परमात्मा ऋषभदेव के पारणे की अनुमोदना हेतु वर्षीतप के पारणे की परम्परा का विधान प्रारंभ हुआ। भगवान ऋषभदेव ने समग्र मानव-जाति को रहन-सहन के तरीके से लेकर आत्मोद्धार मोक्ष प्राप्ति तक समस्त कलाओं से अवगत करवाया। भगवान ऋषभदेव ने जब मुनि दीक्षा ग्रहण की, उस समय प्रजा श्रमण-चर्या के आहार-दान संबंधी नियमों से अनभिज्ञ थी। योग्य आहार न मिलने के कारण भगवान ऋषभदेव ने बाहर माह तक उपवास किए। जब प्रभु हस्तिनापुर पधारे तो प्रभु के पड़पौत्र श्रेयांस राजा को पुण्योदय से जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ। और पारणे योग्य उचित आहार इक्षुरस का दान देकर उन्होंने प्रभु का पारणा करवाया।



उसी तप व पारणे की अनुमोदनार्थ वर्षीतप की परिपाटी प्रारंभ हुई। यद्यपि वर्षीतप का कोई आगम संगत परम्परा या विधान नहीं है, परन्तु समय-समय पर तीर्थंकर भगवान की भक्ति व जिनशासन की प्रभावना के लिए आचार्यों ने धार्मिक अनुष्ठान प्रारंभ किए। जिसमें भगवान महावीर जयंति, भगवान पार्श्वनाथ जयंति व संक्रांति पर्व जैसे अर्वाचीन त्यौहार भी सम्मिलित हैं। पर्वों का मूल उद्देश्य जनमानस के मन में धर्म श्रद्धा को प्रगाढ़ बनाने का होता है। उत्सवों के माध्यम से जनता जिनशासन के हार्द को समझने में सक्षम बन सकें। समय के प्रभाव से कुछ परंपराएं लुप्त होती हैं और नवीन परम्पराओं का आर्विभाव होता है। नवीन परंपराएं तभी अनुकरणीय बनती है जब वे आगमनुकूल हो एवं सैद्धांतिक दृष्टि से तर्कसंगत हों।

इन परंपराओं के अंतर्गत जैन धर्म में वर्षीतप की साधना का भी श्री गणेश हुआ। संभवत: सर्वप्रथम वर्षीतप की साधना का प्रारंभ गुजरात प्रांत से हुआ। प्रथमत: मंदिरमार्गी समाज में इस परंपरा का प्रचलन हुआ। तत्पश्चात् प्रभु के पारणास्थल हस्तिनापुर को भी इस परंपरा के साथ सम्मिलित किया गया। साधक भाव-भक्तिपूर्वक इस तप का आराधन करने लगे। गुरुदेव ने भी अपने जीवनकाल में इस वर्षीतप की अनुमोदना कर जिनशासन की महती प्रभावना की।

संभवत: उत्तर भारत में इस परंपरा को प्रारंभ कर शिखर तक पहुंचाने का श्रेय गुरुदेव को प्राप्त हुआ। गुरुदेव संयम व सिद्धांतों का पोषण करने वाली परंपरा के समर्थक थे। वे कभी प्राचीन या अर्वाचीन परंपरा के झंझट में नहीं उलझे।

सन् 1973 में दिल्ली चांदनी चौक के सुश्रावक श्री केसरीचंद जी की धर्मपत्नी जसवंती बाई जी वर्षीतप की आराधना कर रही थी। उनके परिवार की यह प्रबल भावना थी। अक्षय तृतीय के पारणे पर गुरुदेवश्री का अवश्य पदार्पण हो। परिवार की भव्य भावना को सम्मान देते हुए गुरुदेव दिल्ली पधारे। जसवंती बहन के हाथों से इक्षुरस का दान ग्रहण कर उत्तर भारत में वर्षीतप की साधना को प्रारंभ करने वाले उन्नायक बने। सन् 1979 में चाँदनी चौंक के सुश्रावक श्री जीवन सिंह जी बोथरा की धर्मपत्नी सुश्राविका श्रीमति सिताब देवी के वर्षीतप का पारणा गुरुदेव ने अपने कर कमलों से संपन्न करवाया। तत्पश्चात प्रतिवर्ष अक्षय तृतीय के दिन किसी न किसी पारणे का निमित्त बनता रहा। परन्तु

संघ में अब तक इस कार्यक्रम को कोई भव्य रूप प्राप्त नहीं हुआ था।

सर्वप्रथम सन् 1994 में गुरुदेव ने वर्षीतप पारणों के लिए एक भव्य रूपरेखा बनाई। उस उद्देश्य की पूर्ति हेतु गुरुदेव श्री की निश्राय में मुजफ्फरनगर में वर्षीतप पारणे का भव्य कार्यक्रम आयोजित हुआ। जिसमें वर्षीतप आराधिका सुश्राविका श्रीमति चंचल बहन ने इस तप की ज्योति को प्रज्जवलित किया। इस देदीप्यमान दीप की लौ से अनेकों बुझे हुए दीपों को जगमगाने की प्रेरणा दी। धीरे-धीरे इस पर्व ने संघ में दीपावली का भव्य रूप धारण कर लिया तत्पश्चात संघ में प्रतिवर्ष विधिवत् वर्षीतप के पारणों का आयोजन होने लगा। हरियाणा में जींद व दिल्ली के रोहिणी क्षेत्र में भी इस कार्यक्रम का अतिशय रूप देखने को मिला।

18 अप्रैल 1999 में दिल्ली शालीमार बाग में भी वर्षीतप के पारणों की दिव्य छटा प्रसारित हुई। विशालजन समुदाय व तपस्वियों के उत्साह ने इस कार्यक्रम को मनोरम स्वरूप प्रदान किया। इस अवसर पर गुरुदेव के सान्निध्य में पचास भाई-बहनों ने पारणा किया और इससे अधिक भाई-बहनों ने इस तप को अपने जीवन में अंगीकार किया। पारणोत्सव के पंडाल में अत्यधिक आतप होते हुए भी गुरुदेव अकम्पभाव से निरंतर दो घंटे तपस्वियों की अनुमोदना करते रहे। वह दिवस गुरुदेव के जीवन काल का स्मरणीय सौभाग्यशाली दिन बन गया। क्योंकि यह गुरुदेव के जीवन का अंतिम आयोजन था। उस तप-शृंखला में जुड़कर कई भाई-बहनों ने अपना जीवन धन्य बना लिया। श्रीमति सावित्री जैन (गोहाना), श्रीमति चंचल जैन (मुज्जफरनगर), श्रीमति चमेली जैन, श्रीमति सुमित्रा जैन (डबरपुर वाले), श्रीमति मूर्ति देवी, श्रीमति ओमपति जी, श्रीमति सोमादेवी (प्रीतमपुरा), श्रीमति शकुंतला जैन (राजाखेड़ी) इस क्रम में अनेकों भाई-बहनों ने तप के द्वारा अपनी आत्मा को भावित किया।

संघ में गुरुदेव द्वारा संचालित इस परंपरा को निर्वाधगति से आगे बढ़ाने के प्रयत्न गतिशील है। श्रावक-श्राविका भी उत्साह व श्रद्धापूर्वक इस तप की आराधना में संलग्न है। अभी सन् 2022 में गुरु-कृपा से मेरी निश्राय में वर्षीतप के लगभग 155 पारणों का महनीय कार्यक्रम जालंधर में आयोजित हुआ। गुरुदेव वर्षीतप की साधना के प्रेरक व महान् प्रभावक थे।

**ऐसे भावसाधक को मेरा कोटिशः नमन्!**

पूज्य गुरुदेव का जीवन स्वालंबन का ज्वलंत उदाहरण है।
'चरेवेत्ति-चरेवेत्ति' (चलते रहो) ही उनका जीवन का मंत्र था।

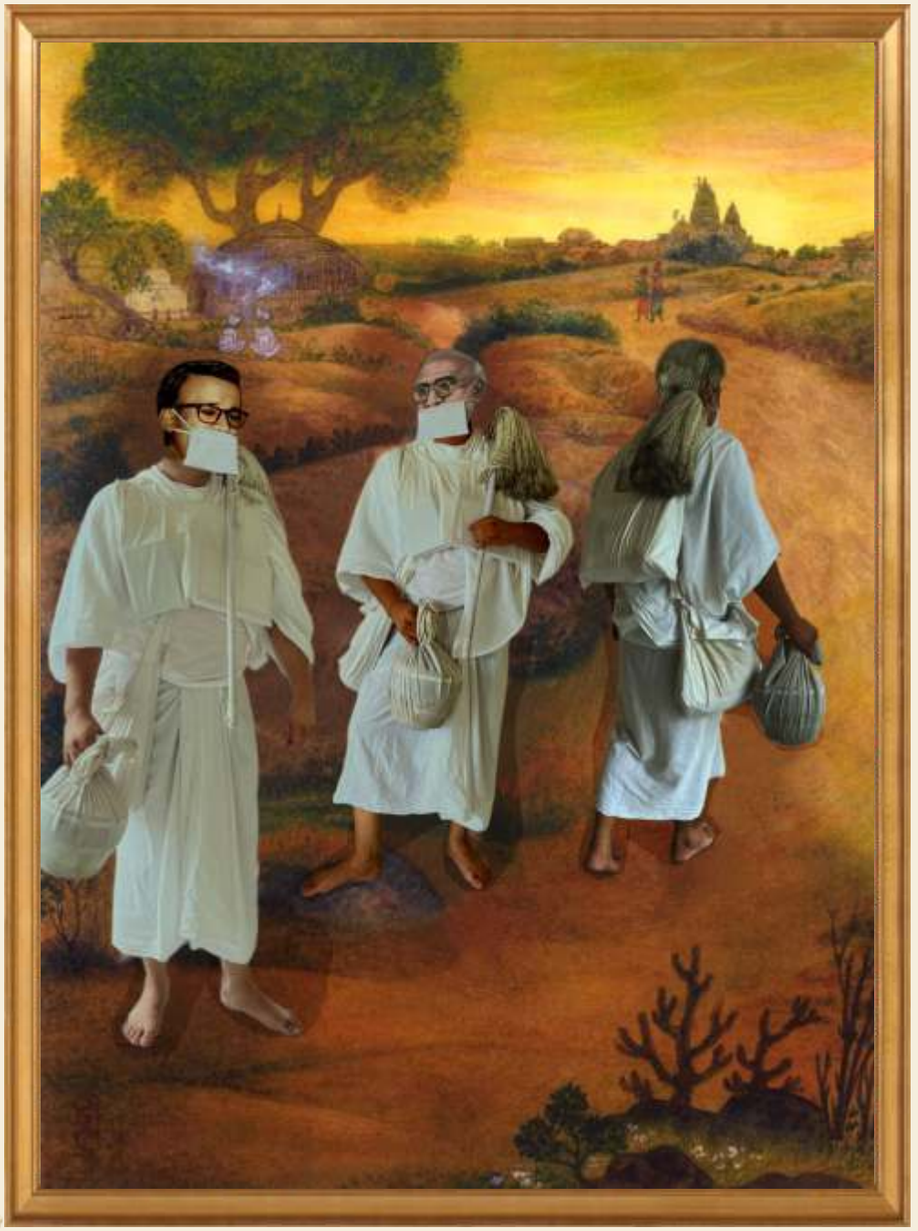

# 65 | विहार यात्रा और गुरुदेव

**भगवान** महावीर की साधना का अभिन्न अंग है पद-यात्रा। पादविहार अहिंसा के साथ-साथ आत्मनिर्भरता का भी द्योतक है। क्योंकि पराश्रित होना ही जीवन की सबसे बड़ी व्यथा है। अत: भगवान ने अपने साधकों को निर्देश दिया है कि वह एक स्थान से दूसरे स्थान तक गमन के लिए किसी साधन या सुविधा की अपेक्षा न रखें। स्वालंबन ही संयमी जीवन की पहचान है।

पूज्य गुरुदेव का जीवन स्वालंबन का ज्वलंत उदाहरण है। ***'चरेवेत्ति-चरेवेत्ति'*** (चलते रहो) ही उनका जीवन का मंत्र था। सन् 1942 से लेकर सन् 1999 तक गुरुदेव ने यायावर बन पादविहार किया। सन् 1981 में विरक्त अवस्था में गुरुदेव की बुटाणा से लेकर गोहाना तक की पदयात्रा का विहंगम दृश्य आज भी मेरे मानस पटल पर अंकित है। मैंने देखा गुरुदेव गंधहस्ती की भाँति सतर्कतापूर्वक एक-एक पग आगे बढ़ा रहे हैं। गुरुदेव के संग अपनी प्रथम विहार-यात्रा का मैंने बहुत आनंद उठाया। गुरुदेव का अनुकरण करते हुए मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मैं किसी दिव्य लोक की यात्रा कर रहा हूँ। गोहाना की जैन स्थानक में पहुंचने के उपरांत जब संतों के पश्चात मेरा वंदन करने का नंबर आया तो गुरुदेव ने मेरा हाथ पकड़कर कहा-आज तो आपने भी बिना चप्पल के विहार किया है। तुम्हारे प्रथम विहार का अनुभव कैसा रहा? मैंने कहा-गुरुदेव आपके साथ विहार करके मुझे अनुत्तर लोक की सैर का मजा आ रहा था।

विहार-यात्रा में गुरुदेव अपने सहवर्ती संतों की समाधि का भी पूर्ण ध्यान रखते थे। संभवत: इसी प्रशस्त भावना के कारण उनके जीवन की समाधि में भी कभी व्यवधान उत्पन्न नहीं हुआ। उनके जीवन का सबसे सुखद क्षण यह था कि उन्हें कभी आजीवन ठाणापति नहीं होना पड़ा, रुग्णावस्था के कारण न ही दिन भर के लिए पाट पर आश्रित रहना पड़ा। न ही एक स्थान पर समय से अधिक रुककर कल्प की मर्यादा का उल्लंघन किया। कुछ विरले महापुरुष ही स्वालंबी होते हुए संसार को अलविदा कहते हैं, उन्हीं महापुरुषों की श्रृंखला में मेरे गुरुदेव का अग्रणी स्थान है।

गुरुदेवश्री के सैंकड़ों भक्त विहार-यात्रा का लाभ उठाने के लिए गुरुदेव के साथ चलने को आतुर रहते थे परन्तु गुरुदेव की यह मानसिकता थी कि अधिक भाई विहार-यात्रा में साथ न चलें। बुटाणा से विहार का वह संस्मरण मुझे आज भी याद है जब विहार में चल रहे श्रावकों को दया पालने का निर्देश दिया और मात्र दो भाइयों को ही संग चलने की आज्ञा दी।

गुरुदेव की एक विशेषता यह भी थी कि वह संतों के पहुँचने से पूर्व किसी भाई को अगले गाँव में नहीं जाने देते थे क्योंकि गुरु-राग के कारण कहीं आगे जाकर हमारे निमित्त आहार-पानी की व्यवस्था न कर दें।

यद्यपि गुरुदेव का विचरण क्षेत्र हरियाणा, पंजाब, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल व राजस्थान में रहा फिर भी उनके विचरण की बहुलता हरियाणा में ही अधिक रही। गुरुदेव के 57 चातुर्मासों में से 21 चातुर्मास

हरियाणा में, 14 चातुर्मास पंजाब में, यू.पी. में 5 और दिल्ली में 15 चातुर्मास हुए। दो चातुर्मासों का लाभ राजस्थान क्षेत्र को भी प्राप्त हुआ। सन् 1952 से लेकर 1958 तक सात वर्ष गुरुदेव बाबा जी महाराज के स्वास्थ्य के कारण दिल्ली चांदनी चौक में विराजमान रहे। 1978 से लेकर 1991 तक गुरुदेवश्री का विचरण विशेष रूप से जींद के इर्द-गिर्द होता रहा। मेरा सौभाग्य है कि गुरुदेव श्री ने मेरी जन्म भूमि भटिंडा को भी अपने चरणों से पावन किया।

संयम ग्रहण करने के पश्चात बाबा श्री जग्गुमल जी महाराज की वृद्धावस्था के कारण गुरुदेव ने लघु विहार किए परन्तु 1963 के पश्चात गुरुदेव ने दीर्घ विहार करते हुए जम्मू-कश्मीर से लेकर शिमला और जयपुर तक जिनशासन की महती प्रभावना की। लगभग 1975 में गुरुदेव घुटनों में दर्द के शिकार हो गए परन्तु फिर भी अपने सामर्थ्य अनुसार विहार यात्रा करते रहे। मेरी दीक्षा के समय गुरुदेव पांच-सात किलोमीटर का ही विहार करते थे फिर भी गुरुदेव का मनोबल कमजोर नहीं हुआ। अनेक भावनाशील क्षेत्रों ने गुरुदेव को ठाणापति होने का विशेष आग्रह भी किया परन्तु गुरुदेव मुस्कुराते हुए कहते कि ***साधु तो रमता भला***। उनका यही संकल्प अंतिम क्षणों तक उनका संबल बना रहा। अंतिम समय तक विचरण करते हुए गुरुदेव ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया।

सन् 1995 के लुधियाना चातुर्मास के पश्चात पुनः रायकोट पधारे। रायकोट के श्रावकों ने गुरुदेव के चरणों में प्रार्थना की कि रायकोट में स्थिरवास करें। लगभग 12 महीनों से घुटनों का दर्द चल रहा था फिर भी गुरुदेव ने सहमति प्रकट नहीं की। हरियाणा में जींद क्षेत्र का विशेष आग्रह था कि गुरुदेव यहाँ स्थिरवास करें पर जींद तक भी कैसे पहुँचें? संतों ने डोली का सुझाव दिया। गुरुदेव ने पहले तो यह कहते हुए स्पष्ट

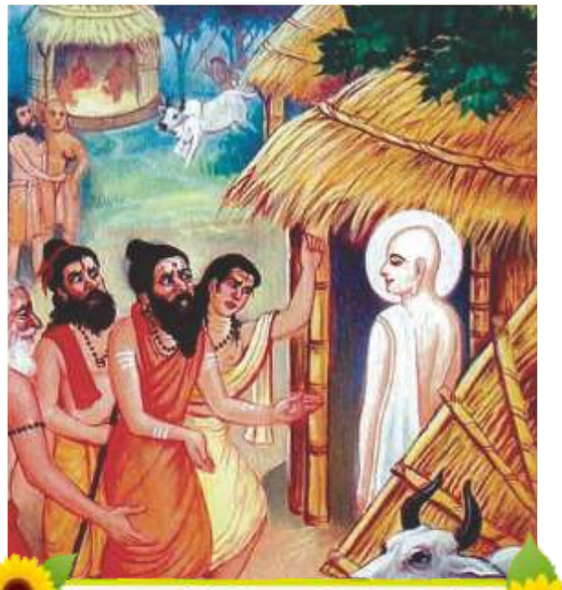

**मैं मात्र ज्ञाता एवं द्रष्टा हूँ।**

इंकार कर दिया कि मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण किसी भी संत को परेशानी हो। 24 अप्रैल 1996 को ज्येष्ठ शिष्यों का अत्याधिक आग्रह एवं विवशता को देखते हुए गुरुदेव ने डोली का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात जीवन पर्यन्त डोली के सहारे यात्रा तो की पर गुरुदेव ने डोली को कभी देश भ्रमण या धर्म-आडंबर का साधन नहीं बनाया। विहार-यात्रा में गुरुदेव ने अनेक परीषह सहन किए परन्तु पैरों में चप्पल तो दूर कभी कपड़ा बांधने का भी विचार नहीं किया। गुरुदेव ने चतुर्थ आरे के मुनियों की तरह भारत विहार यात्रा को कर्म-निर्जरा का साधन बनाया। महावीर प्रभु की साधना स्वीकार कर जिस पारी का आगाज किया उसका साहस पूर्वक अंतिम क्षणों तक निर्वहन किया।

**गुरुदेव की ऐसी अनुपम विहार यात्रा की हम बार-बार अनुमोदना करते हैं।**

यहाँ स्वयं के मुंह में भोजन का ग्रास लेने से पूर्व परिवार के सभी सदस्यों को आमंत्रित करना गुरुदेव की परम्परा रही है। गुरुदेव ने इसे आजीवन निभाया।

# 66 | आहार वितरण प्रणाली और गुरुदेव

**भारतीय** संस्कृति आदर्श व संस्कारों की महान् परम्परा है। परिवार में अपने से बड़ों का सम्मान करना व बड़ों द्वारा छोटों को यथोचित्त स्नेह देना भारतीय सभ्यता का अभिन्न अंग रहा है। यहाँ स्वयं के मुंह में भोजन का ग्रास लेने से पूर्व परिवार के सभी सदस्यों को आमंत्रित करना हमारी परम्परा रही है। भले ही गृहस्थ जीवन में यह परपंरा लुप्तप्राय हो गई हो। परन्तु मुनि जीवन में गुरु कृपा से इस प्राचीन परम्परा का निर्वाह यथावत् हो रहा है।

गुरुदेव ने इस परंपरा को आजीवन निभाया और अपने मुनियों को शिक्षण भी दिया। आहार आने के उपरांत गुरुदेव एक आसन पर विराजित हो जाते और मुनिगण उसके इर्द-गिर्द गोलाकार रूप में बैठ जाते। गोचरी से आया हुआ आहार गुरुदेव के समक्ष रखा जाता। गुरुदेव कभी-कभी पृच्छना भी करते कि आहार किसके घर से आया? कहीं मुनि मन:इच्छित आहार के लिए पुन: पुन: एक ही घर की गोचरी तो नहीं ला रहे। गुरुदेव माँ की भाँति आहार को अपने हाथों से वितरित करते थे। सन् 1987 में गुरुदेव के चरणों में एक साथ गोलाकार बैठकर आहार ग्रहण करना स्वयं में एक इतिहास था। गुरुदेव को प्रत्येक मुनि की रुचि का ज्ञान था। सभी मुनियों को उसकी आवश्यकता इच्छानुसार स्नेहपूर्वक भोजन देकर संतुष्ट करना गुरुदेव की विशेषता थी। गुरुदेव के इस वात्सल्य पूर्वक व्यवहार को मैं भी मूकदर्शक बन भावुक होकर निहार रहा था। सभी को तृप्त करने के उपरांत जो रोटी का टुकड़ा शेष बचा उसे अपने पात्र में रख लिया। ये कैसे भगवान थे? जो सर्वप्रथम भक्तों को तृप्त करते और सबसे आखिर में स्वयं ग्रहण करते। हम मंदिर में देखते है कि पहले भगवान को भोग लगाकर भक्तों को प्रसाद दिया जाता है। परन्तु यहाँ स्वयं परमात्मा अपने भक्तों को भोग लगाने के पश्चात् आहार ग्रहण करता था।

मेरे गुरुदेव करूणाशील थे। परम विचरण व प्रज्ञाशील भी थे। एक शब्द में कहुँ तो गुरुदेव सर्वगुण संपन्न थे। तभी उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता अर्जित की।

गुरुदेव इस बात का पूर्ण ध्यान रखते कि किस मुनि को कौन-सा खाद्य अनुकूल है। उसी के अनुसार उसे आहार परोसते थे यदि मैं अपने मन की बात कहूँ तो उस समय मुझे राजमां अनुकूल लगते थे। 29 संतों के समूह में भी यदि किसी पात्र में राजमां दिखाई देते तो गुरुदेव वह पात्र मुझ तक लेकर आते थे। उनके हाथ से भोजन लेकर ऐसा दिव्य सुख प्राप्त होता था जैसे किसी मसीहा ने अपने भक्त को प्रसाद दिया हो।

मैं आज भी अपने भाग्य की सराहना करता हूँ कि मुझे इस युग के भगवान के हाथ से प्रसाद प्राप्त हुआ है। हे गुरुदेव! मैं कभी आपके ऋणों से ऊऋण नहीं हो पाऊँगा। मुझ पामर पर आपके अनेकानेक उपकार हैं।

गुरुदेव विवेकशील जागृत महापुरुष थे। अगर किसी मुनि के पात्र में थोड़ी-सी जूठन रह जाती तो गुरुदेव उसी क्षण उस मुनि को सचेत कर देते थे। तभी मुनि अपनी त्रुटि को समझ जाते। गुरुदेव अन्न के एक-एक दाने का सम्मान करते थे। अन्न का एक कण भी व्यर्थ नहीं जाने देते

थे। अगर कभी आहार करते समय कोई कण नीचे गिर जाता तो उसे भी उठाकर खा लेते थे। गुरुदेव सदैव यही प्रेरणा देते कि अयतना पूर्वक अन्न का एक दाना भी भूमि पर नहीं गिरना चाहिए।

गुरुदेव ने व्यक्तिगत रूप से आहार के संबंध में कुछ नियम मर्यादाएं निर्धारित की हुई थी। जैसे सभी मुनियों को मक्खन लाने का निषेध था। कुछ पकी हुई सब्जियों पर भी पाबंदी थी। जैसे बैंगन, फूलगोभी, भेंह तथा जिन सब्जियों का नाम तुम्हें ज्ञात न हो। आहार मुनियों की आवश्यकता अनुसार ही लाया जाए। ताकि कभी गोचरी में जूठन न बचें। कदाचित् किसी एक मुनि के पास अधिक आहार आ जाए तो वह अन्य मुनि को प्रार्थना कर आहार प्रदान करे। कभी भी आहार का दुरुपयोग न हो।

जब किसी मुनिराज का दीक्षा दिवस होता तो गुरुदेव स्वयं अपने हाथों से उसका मुंह मीठा करवाते थे। कोई न कोई मीठी वस्तु मुनि को भेंट करते और फिर हृदय से आशीर्वाद देते थे।

सन् 1999 में जब हम कैथल से गुरुदेव के दर्शन कर यू.पी. की ओर विहार कर रहे थे तो मार्ग के किसी गाँव में गुरुदेव के दर्शन हुए। उस अवसर पर गुरुदेव ने स्वयं अपने हाथों से तीनों मुनियों को कुछ प्रसाद खिलाया था।



सन् 1994 में होली के पश्चात् रंग फेंकने का दिन था। घर-घर में रंगों की धूम थी। संतों ने विचार किया कि अभी संपूर्ण गोचरी संभव नहीं है। मात्र गुरुदेव के लिए स्वल्प आहार की व्यवस्था कर लें। हम सब संध्या में आहार कर लेंगे। परन्तु करुणा के सागर गुरुदेव ने सब मुनियों को कहा कि जब तक आप सब आहार नहीं करते मैं अन्न का एक दाना ग्रहण नहीं करूँगा। जब मुनिराज संपूर्ण गोचरी लाए तभी गुरुदेव ने भोजन ग्रहण किया। गुरुदेव का हृदय कठोर अनुशासक का ही नहीं अपितु गुरु माँ की भांति कोमल भी था।

**धन्य है ऐसी वात्सल्य की मूर्ति को।**

गुरुदेव ने दीक्षा से लेकर अंत तक सदैव निर्दोष प्रासुक आहार की गवेषणा की।

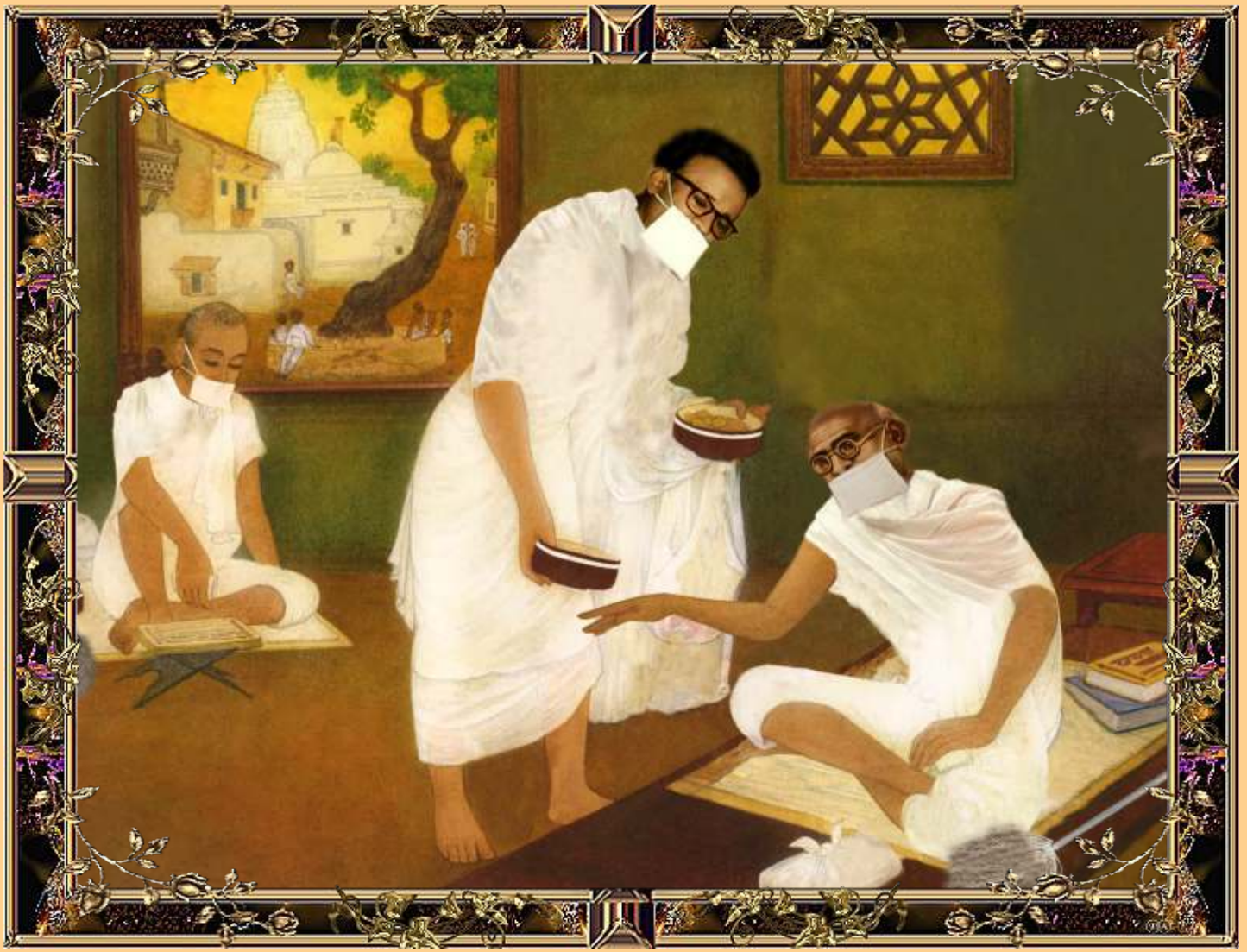

# 67 | आहार-ग्रहण और गुरुदेव

**आहार** शरीर की प्राथमिक आवश्यकता है। मानसिक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए सुपाच्य आहार अपेक्षित है। परन्तु साधना के पथ को अंगीकार करने वाला साधक आहार को जीवन यात्रा के माध्यम के रूप में स्वीकार करता है। वह रस लोलुपता के कारण नहीं शरीर को संयमी व योग्य बनाए रखने के लिए आहार ग्रहण करता है।

संयम-मार्ग अंगीकार करते ही गुरुदेव ने भी संकल्प किया कि मुझे आजीवन निर्दोष संयम का पालन करना है। आगमकार फरमाते हैं कि समस्त इन्द्रियों में से रसनेन्द्रिय को नियंत्रत करना दुष्कर है। जो साधक रस-लोलुप बनकर अपने संयम को मलिन कर लेता है वह मोक्ष पद का अधिकारी नहीं बन सकता। संयम के प्रति श्रद्धा तो गुरुदेव के रोम-रोम में समाई हुई थी। गुरुदेव के आचार व्यवहार को देखकर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे गुरुदेव पूर्वभव में कोई महान साधक रहे हो। शास्त्रों में सिद्धों के भेदों से एक भेद है-'स्वयंबुद्ध सिद्धा।' अर्थात् जो स्वयं प्रबुद्ध होकर सिद्ध शिला के स्वामी बनते हैं। गुरुदेव भी जैसे स्वयंबुद्ध थे। दीक्षा के उपरांत गुरुदेव ने कोई ऐसी पाबंदी नहीं लगाई। अथवा कोई ऐसा निर्देश भी नहीं दिया कि तुम्हें ऐसा आचरण करना है। परन्तु गुरुदेव के अन्तर मानस में यह भाव तरंगित थे कि मुझे संयम के उज्ज्वल पक्ष का स्पर्श करना है।

गुरुदेव ने दीक्षा लेकर सदैव निर्दोष प्रासुक आहार की गवेषणा की। 24 अप्रैल 1983 में जब मैंने संयम ग्रहण किया। तब से मैंने गुरुदेव के समक्ष कई बार आहार प्रस्तुत किया। पाठकों को यह जानकर अत्यंत आश्चर्य होगा कि गुरुदेव ने मिष्ठान, नमकीन, गरिष्ठ भोजन, खीर, हलवा, तला हुआ, मसाला-युक्त, ड्राई-फ्रूट, मलाई व मक्खन इन पदार्थों का कभी भी सेवन नहीं किया। गुरुदेव आहार में सादे व सीमित द्रव्य ही ग्रहण करते थे। यदि कोई अन्य मुनि सुविधानुसार कुछ मीठा ग्रहण करना चाहे तो गुरुदेव ने कभी निषेध नहीं किया।

गुरुदेव का आहार सेवन भी कर्म-निर्जरा का हेतु था जैसा भगवान ने फरमाया 'जयं भुंजतो भासंतो, पावं कम्मं ण बंधइ।।' विवेकशील साधक खाते हुए भी पाप कर्म का बंधन नहीं करता। गुरुदेव की आहार प्रक्रिया से यह स्पष्ट था कि वे रसनेन्द्रिय के दास नहीं थे। वे इन्द्रियजयी थे। यह गुरुदेव के आहार-नियंत्रण का ही परिणाम था कि गुरुदेव जीवन में कभी असह्य रोग जैसे शुगर, बी.पी. हार्ट इत्यादि रोगों की चपेट में नहीं आए। वस्तुत: जिह्वा पर नियंत्रण करने वाला साधक ही ध्यान मंदिर में प्रवेश कर सकता है।

वर्तमान के साधकों की आहार प्रक्रिया को देखकर कई बार मन में विचार उत्पन्न होता है। जो साधक पास्ता, पिज्जा व चाउमीन के चक्रव्यूह में फंसे हुए हैं वे कैसे अपने लक्ष्य को प्राप्त करेंगे। उन्हें गुरुदेव के सादगी युक्त, सीमित आहार पद्धति से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए।

एक साधक के लिए आहार ग्रहण की जैसी प्रक्रिया शास्त्रों में वर्णित है। गुरुदेव ठीक उसी प्रकार आहार ग्रहण करते थे। गुरुदेव

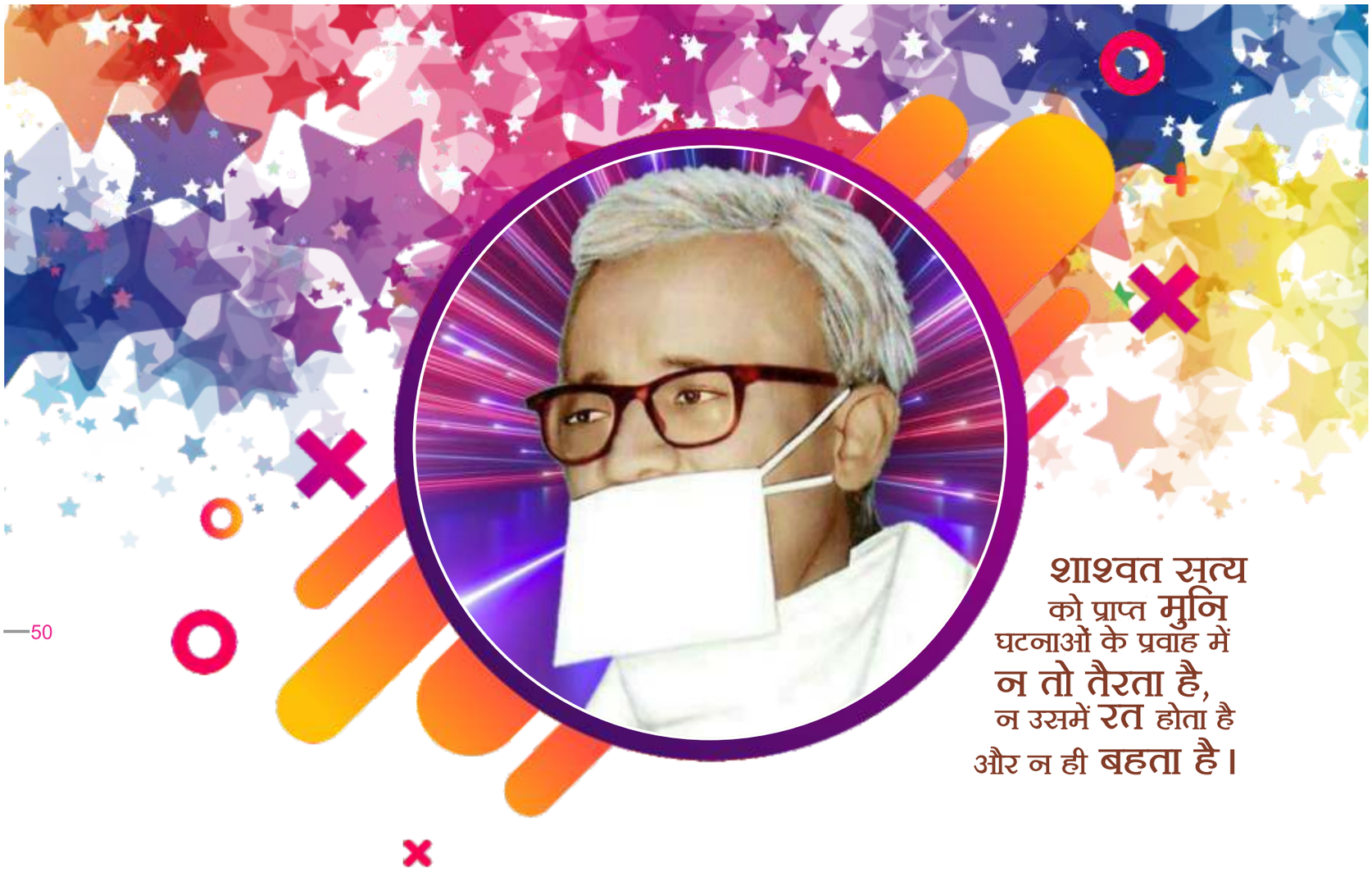

शाश्वत सत्य
को प्राप्त मुनि
घटनाओं के प्रवाह में
न तो तैरता है,
न उसमें रत होता है
और न ही बहता है।



एषणा समिति की शुद्धि का पूर्ण ध्यान रखते। गुरुदेव का अपने आहार-विहार पर जितना नियंत्रण था। यह प्रत्येक महापुरुष के लिए संभव नहीं है। गुरुदेव जैसी विरल विभूति युगों के पश्चात् अवतरित होती है।

इस वर्ष हम गुरुदेव का जन्म शताब्दी महोत्सव मना रहे हैं। यह महोत्सव मनाना तभी सार्थक होगा। अगर हम गुरुदेव के अनन्त गुणों में से एक दो गुण भी अपने जीवन में धारण कर लें। हमारी आत्मा भी कल्याण के मार्ग पर बढ़ सकती है।

**ऐसी विरल विभूति को बारंबार प्रणाम!**

पूज्य गुरुदेव कर्त्तव्य
के
प्रति पूर्णतः सजग थे।
परन्तु आसक्ति एवं
मूर्च्छा भाव नहीं था।

# 68 | संग्रह और गुरुदेव

**नमस्कार** महामंत्र के तृतीय पद में आचार्य को आठ संपदाओं का वर्णन है। यहाँ संपदा का अर्थ है जो संघ एवं मुनियों के आध्यात्मिक विकास में परम उपयोगी है। उनमें संग्रह को भी आचार्य का गुण बताया है। संग्रह एवं परिग्रह में जमीं-आसमां का अंतर है। संयम की सुरक्षा एवं मुनियों की दिनचर्या में उपयोगी उपकरणों का संग्रह रखना आचार्य, संघाध्यक्ष का कर्त्तव्य होता है परन्तु उन उपकरणों पर आसक्ति एवं मूर्च्छा का भाव परिग्रह है।

पूज्य गुरुदेव अपने कर्त्तव्य के प्रति पूर्णत: सजग थे। संयमोपयोगी उपकरणों को लेकर संघ के मुनियों में अभाव एवं असंतोष की भावना जन्म न ले। गुरुदेव ने इसकी भी यथोचित व्यवस्था की थी। वस्त्र, पात्र, ओघा, पूंजनी एवं पुस्तक इत्यादि को संयम मार्ग पर उपयोगी उपकरण माना गया है। ये उपकरण प्रत्येक स्थान व समय पर उपलब्ध नहीं हो पाते। अत: संघ के मुखिया को मुनियों की आवश्यकतानुसार इन उपकरणों का संग्रह रखना पड़ता है।



गुरुदेव एक सुविशाल संघ के स्वामी थे। समय-समय पर अनेक मुनियों को किसी न किसी वस्तु की आवश्यकता रहती ही है। गुरुदेव अपने संघ एवं संयम के प्रति पूर्णत: सजग थे। सन् 1985 में मेरा चातुर्मास दिल्ली चांदनी चौक में था। दीक्षा के समय गुरुदेव ने श्री दशवैकालिक सूत्र का गुटका मुझे अपनी नेश्राय में स्वाध्याय करने के लिए दिया था। जिसे बंदरों ने फाड़ दिया। अब स्वाध्याय में व्यवधान होने लगा। मैंने गुरुदेव से निवेदन किया तो गुरुदेव ने उसी समय एक और श्री दशवैकालिक सूत्र के मूल पाठ का गुटका मुझे प्रेषित कर दिया। मैं प्रसन्न था कि गुरुदेव ने मेरी प्रार्थना इतनी शीघ्र स्वीकार कर ली। आज भी जब दशवैकालिक सूत्र के गुटके से मैं स्वाध्याय करता हूँ तो गुरुदेव का स्मरण तरोताजा हो जाता है। प्रवचन करने करने की पट्टी भी गुरुदेव ने ही मुझे प्रदान की थी।

जाखल जैन स्थानक में बना पुस्तकालय भी गुरुदेव की प्रेरणा का फल है। आज भी वह भंडारा आगमों का संग्रह एवं साहित्य मुनियों की स्वाध्याय एवं ज्ञानाभ्यास के लिए उपयोगी है।

गुरुदेव अपने नेश्राय में स्वल्प संग्रह रखते थे। जैसे कुछ दृष्टांतों की पुस्तकें, शेरो-शायरी एवं कुछ अन्य पुस्तकें इत्यादि। गुरुदेव की तृणमात्र भी परिग्रह में रुचि नहीं थी। वे अत्युपयोगी वस्तुओं का संग्रह रखते थे। गुरुदेव की निश्रा में हस्तलिखिति पन्नों व डायरियों का संग्रह प्रचुर मात्रा में हो गया तो गुरुदेव ने स्वयं ही कुछ डायरियाँ व पन्ने फाड़कर परठ दिए। स्वाध्याय एवं प्रवचन प्रभावना में मेरी रुचि देखकर गुरुदेव ने स्वयं सैंकड़ों पन्ने मुझे अपनी निश्रा में रखने के लिए प्रदान किए। गुरुदेव के मन में किसी भी वस्तु के प्रति क्षणिक ममत्व का भाव भी नहीं था। आज भी जब मैं उन पन्नों को निहारता हूँ तो गुरुदेव का स्मरण मुझे भावुक बना देता है। जैसे एक धाय माता बच्चों की सार-संभाल करती है वैसे ही गुरुदेव उपकरण एवं ज्ञान सामग्री का संरक्षण करते थे। उसे कभी स्वकीय समझकर परिग्रह नहीं किया।

सन् 1963 में वाचस्पति गुरुदेव के देवलोक गमन के पश्चात पूज्य श्री राम प्रसाद जी महाराज एवं भंडारी जी महाराज के पास जो बड़े

गुरुदेव की सामग्री थी वे सब गुरुदेव को सौंप दी गई। उस सामग्री में से जो सामग्री वर्तमान में अनुपयोगी थी वह सब गुरुदेव ने वोसिरा दी। गुरुदेव ने स्वयं की सामग्री का बहुत-सा भाग अप्रयोज्य समझकर त्याग दिया। मैंने एक दिन गुरुदेव से प्रश्न किया, गुरुदेव! आप इतनी अमूल्य हस्तलिखित सामग्री क्यों परठ देते हैं? तो गुरुदेव ने बहुत ही निर्लेप भाव से उत्तर देते हुए कहा कि अत्यावश्यक वस्तुओं का संग्रह भी परिग्रह बन जाता है। वीतराग देव की आज्ञा का अक्षरश: पालन करना ही गुरुदेव के जीवन का लक्ष्य था। वे पाप-भीरू थे। आवश्यक उपकरण रखना तो मुनि की विवशता है परन्तु वर्तमान में उपयोग रहित वस्तुओं का भी संग्रह करके रखना परिग्रह है और परिग्रह ही साधक के लिए सबसे बड़ा पाप है। मुक्ति-मार्ग में अवरोधक है। गुरुदेव कर्त्तव्य निर्वहन के लिए उपकरणों का संग्रह अवश्य रखते थे। परन्तु गुरुदेव का लक्ष्य एकमात्र मौन, स्वाध्याय एवं ध्यान साधना का था।

संग्रह में भी गुरुदेव का कोई मूर्च्छा-भाव नहीं था। गुरुदेव श्रावकों व शिष्यों से चौबीसों घंटे घिरे रहते थे। परन्तु उनका मन जल कमलवत निर्मल व निर्लेप था। शिष्यों अथवा श्रावकों का मोह उन्हें कभी आसक्त नहीं कर पाया। प्रतिपल आत्मरमणता के भाव में तल्लीन रहते थे।

सन् 1995 में मैंने गुरुदेव के चरणों में निवेदन किया कि हमारे संघ की पुस्तकें व आगम-साहित्य स्थान-स्थान पर अव्यवस्थित रखा हुआ है। अत: आप कृपा कर उन्हें एक स्थान पर संग्रहित करवा दीजिए। गुरुदेव ने श्रावकों को इशारा किया। गुरुदेव की प्रेरणा से दिल्ली शालीमार बाग में एक विशाल लाइब्रेरी का निर्माण हुआ। संतों के स्वाध्याय में उपयोगी पुस्तकें एक स्थान पर एकत्रित कर दी गई। प्रचुर संग्रह संपदा के स्वामी होते हुए भी गुरुदेव के मन में कभी ममत्व का भाव नहीं आया।

**गुरुदेव!** आपका मन **कमलवत निर्मल** व **निर्लेप** था। आपकी **निर्लिप्त भावना** को वंदन!

श्रुत ज्ञान से सुसज्जित
तथा सम्यक् चारित्र से प्रकाशित
गुरुदेव के जीवन में सम्यक दर्शन
का निर्झर प्रवाहमान था।

# 69 | आडम्बर रहित व्यक्तित्व और गुरुदेव

**आडम्बर** रहित जीवन शैली उसे कहते हैं। जहाँ रहन-सहन, वेश-भूषा और आचार-विचार का निर्दिष्ट स्तर निश्चित हो। जहां कृत्रिमता व औपचारिकता का स्थान न हो। जीवन सीधा सादा व स्वाभाविक हो। सादगीपूर्ण जीवन में दो गुण विशेष रूप से अपेक्षित है। (1) कठिन-से-कठिन परिस्थिति में धैर्य धारण करना। (2) अपनी आवश्यकताओं को न्यूनतम बनाना। सादगीपूर्ण जीवन जीने वाले व्यक्ति के कार्यों में गुणवत्ता बढ़ती है और उसके भीतर यह चेतना विकसित हो जाती है कि जीवन में क्या और क्यों महत्त्वपूर्ण है। वह इच्छाओं का सम्यक प्रबंधन करने लगता है।

पूज्य गुरुदेव की इच्छाएं सीमित एवं जीवन शैली सादगी पूर्ण थी। वे आडम्बरों से कोसों दूर आत्म ध्यान में लीन रहते थे। न ही उन्हें कभी नामेषणा व लोकेषणा की मृग-मारीचिका भ्रमित कर पायी और न ही बाह्य चकाचौंध, जन-सैलाब के मेले और प्रशंसा की गाथाएं उन्हें कभी भी प्रभावित कर सकीं। उनका एकमात्र लक्ष्य था आत्म-शुद्धि। चेतना का परिष्करण।

सादगीपूर्ण जीवन के संस्कार उन्हें अपने श्रद्धेय गुरुदेव व संयमी परिवार से विरासत में प्राप्त हुए थे। आजीवन गुरुदेव ने ऐसा कोई भी कार्य नहीं किया जिससे परम्पराओं व मर्यादाओं का उल्लंघन हो। समाज का धन कभी ऐसे कार्यों में व्यर्थ न होने दिया जिसमें समाजोन्नति व आत्मोन्नति का लक्ष्य न हो।

गुरुदेव के सादगीपूर्ण व्यवहार से कभी ऐसा लक्षित नहीं हुआ कि वे एक विशाल संघ के अधिपति है। संघ के नायक है। सुविशाल श्रावक बल के स्वामी है। गंभीर व्यक्तित्व व ओजस्वी वाणी से युक्त गुरुदेव का जीवन अनेक सद्गुणों का संगम स्थल था। श्रुत ज्ञान से सुसज्जित तथा सम्यक् चारित्र से प्रकाशित गुरुदेव के जीवन में सम्यक दर्शन का निर्झर प्रवाहमान था।

गुरुदेव की मनोभिराम छवि व आकर्षक जीवन शैली को जब निहारते थे तो ऐसा प्रतीत होता था जैसे प्राचीन परम्परा के किसी विशिष्ट संत की भव्य आकृति के दर्शन हो गए हों। गुरुदेव की सादगीपूर्ण जीवनशैली में निमंत्रण कार्ड, बैनर, राजनेताओं की कतारें व व्यर्थ के तामझाम का कोई स्थान नहीं था।



गुरुदेव के जीवन चारित्र का जब हम आद्योपांत अवलोकन करते हैं तो हृदय श्रद्धा से तरंगित होने लगता है। बाल्यावस्था से ही गुरुदेव सादगी के उपासक थे। उनके मन में कभी भी बाह्य चमक-दमक का आकर्षण नहीं था। फिजूलखर्ची, अनावश्यक वस्तुओं का भी कोई गहरा शौक नहीं था। मित्रों की भी कोई लंबी फेहरिस्त नहीं थी। जो वस्त्र मिले वही प्रसन्नता पूर्वक धारण कर लिए। जो भोजन में प्रस्तुत हुआ बिना किसी जिद के खा लिया। यूँ कह दिया जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी कि गुरुदेव गृहस्थ में रहते हुए गृहस्थ-योगी थे।

सन् 1982 में मुझे संगरूर में एक वयोवृद्ध श्रावक मिले जिन्होंने संगरूर में गुरुदेव की दीक्षा देखी थी। उन्होंने बताया कि गुरुदेव की दीक्षा का कार्यक्रम अत्यंत सादगीपूर्ण था।

दीक्षा ग्रहण करते ही गुरुदेव ने सेवा व स्वाध्याय को अपना लक्ष्य बना लिया। प्रारम्भिक चातुर्मास परम्परा के महान संतों के चरणों में करने का सौभाग्य मिला। सन् 1963 के पश्चात उन्हें संघ-प्रमुख बनाया गया। उस अवसर पर भी गुरुदेव का एकमात्र लक्ष्य यही था कि मैंने कभी पूर्वजों द्वारा निर्मित मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना।

शनैः-शनैः गुरुदेव की सादगी का प्रभाव जन-सैलाब के रूप में परिवर्तित होने लगा। श्रद्धा के सूत्र से बंधी जनमेदिनी गुरुदेव के चरणों में उमड़ने लगी। परन्तु फिर भी गुरुदेव कभी जलसों व शोभा यात्राओं के चक्रव्यूह में नहीं फंसे।

पूर्व में जैन भागवती दीक्षा के अवसर पर साधारण पंडाल लगाया जाता था। एक लघु निमंत्रण-पत्र भी प्रेषित किया जाता था परन्तु गुरुदेव ने इन औपचारिकताओं को भी स्थगित कर दिया। न ही राजनेताओं को आमंत्रण और न ही शहर को सजाने की होड़। गुरुदेव का एकमात्र भाव यही था कि जिनशासन की प्रभावना हो, परन्तु मर्यादा व सादगीपूर्ण वातावरण में हो।



सन् 1998 में मेरा चातुर्मास पटियाला में था। गुरुदेव ने अम्बाला चातुर्मास के पश्चात पटियाला संघ का निवेदन स्वीकार कर लिया। श्रीसंघ गुरुदेव का आगमन सुनकर अति उत्साहित था। समाज ने गुरु चरणों में प्रार्थना की। गुरुदेव! अपने आगमन की निश्चित तिथि बताने की कृपा करें। 1008 श्रावकों का समूह आपके अग्रिम स्वागत के लिए उपस्थित रहेगा। गुरुदेव ने फरमाया कि हमें आडम्बरों में कोई रुचि नहीं है और न ही ऐसे भव्य स्वागत की अपेक्षा है। अगर आप हमारा स्वागत करना चाहते हैं तो स्थानक में आकर सहज भाव से सामायिक करें। हमें जिस दिन आना होगा स्वतः पहुँच जाएंगे।

सन् 1994 में जब गुरुदेव पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में पधारे तो

गुरुदेव के स्वागत में सम्पूर्ण स्थानकवासी समाज आंदोलित था। कई संघ प्रतिनिधि बागपत में एकत्रित हुए। न्यूज चैनल के प्रतिनिधि गुरुदेव की यात्रा की कवरेज करना चाहते थे परन्तु जब गुरुदेव को इस आयोजन का पता चला तो उन्हें प्रथम पड़ाव पर ही उन्हें रोक दिया। फिर भी अमर उजाला के एक पत्रकार ने गुरुदेव का समाचार सचित्र प्रकाशित कर दिया। जिसे देखकर गुरुदेव ने उपालंभ भरा पत्र उस पत्रकार को लिखा। गुरुदेव के उपालंभ को पढ़कर उसे अपनी गलती का अहसास हुआ और उसने गुरु चरणों में आकर क्षमा याचना की। पुनः ऐसी गलती न करने का संकल्प भी किया। गुरुदेव का सादगीपूर्ण व्यक्तित्व आज भी संघों एवं संत समाज के लिए आदर्श-स्वरूप है।

**सादगी के इस महान देवता को शत्-शत् नमन।**

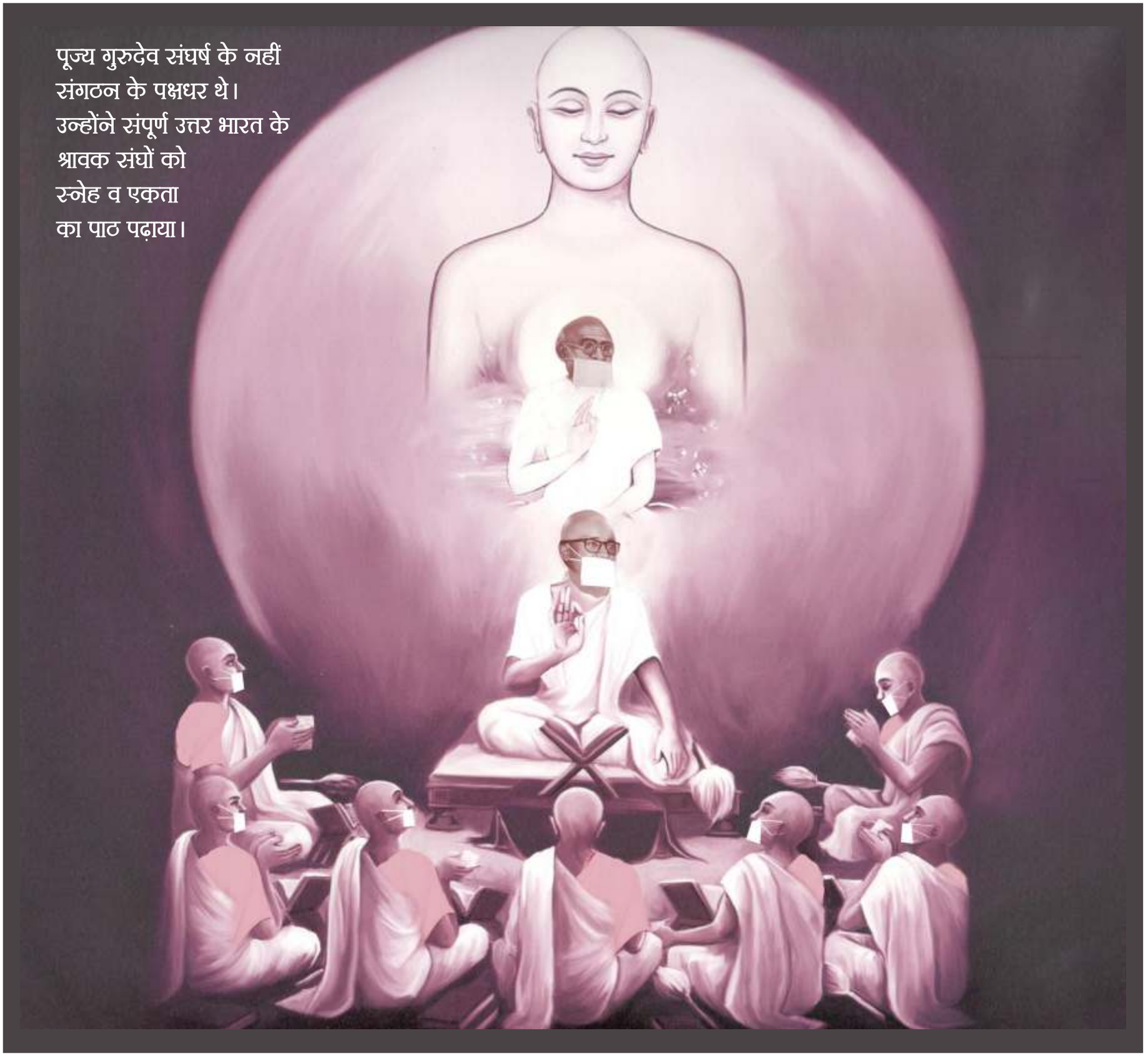
पूज्य गुरुदेव संघर्ष के नहीं
संगठन के पक्षधर थे।
उन्होंने संपूर्ण उत्तर भारत के
श्रावक संघों को
स्नेह व एकता
का पाठ पढ़ाया।

# 70 | संगठन प्रियता और गुरुदेव

**संगठन** एक सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें मनुष्य स्वयं तथा समाज के व्यवहारिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की रक्षा कर सकता है। एक स्वस्थ संगठन पारस्परिक समन्वय को सुविधाजनक बनाता है। संगठित परिवार, समाज या देश ही उन्नति कर सकता है। संघर्ष जहाँ विद्रोह और विषमताओं को जन्म देता है वहीं संगठन प्रेम व समन्वय की भावना का सिंचन करता है।

पूज्य गुरुदेव संघर्ष के नहीं संगठन के पक्षधर थे। उन्होंने संपूर्ण उत्तर भारत के श्रावक संघों को स्नेह व एकता का पाठ पढ़ाया। यदि किसी समय किसी समाज में कोई दरार उभरी तो उसे भी स्नेह व शांति से भरने का साहस दिखाया। कभी भी जैन संघों में विभाजन की रेखा नहीं खींची। सभी परम्पराओं के सम्मान व सत्कार की भावना का बीजारोपण किया।



गुरुदेव को अपनी गुरु परम्परा से ही यह सुसंस्कार प्राप्त हुए थे। यदि हम अतीत के झरोखे में झांककर देखें तो पूज्य आचार्य श्री अमर सिंह जी महाराज के समय में ही पंजाब एक संगठित संघ बन चुका था। यद्यपि पूज्य आचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज के समय समाज में तिथि पत्र व परम्पराओं को लेकर कुछ मतभेद उभरे तो पूज्य गणावच्छेदक परदादा गुरुदेव श्री छोटेलाल जी महाराज की सूझबूझ के कारण संघ अक्षुण्ण बना रहा। पूज्य आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज की ताजपोशी के समय पूज्य वाचस्पति गुरुदेव ने संघ की सुरक्षा व एकता के लिए जो त्याग व बलिदान का उदाहरण प्रस्तुत किया। उसे युगों-युगों तक स्मरण किया जाएगा।

वाचस्पति गुरुदेव ने पंजाब को सुरक्षित एवं विभाजन से बचाने के लिए सहजतापूर्वक अपनी महत्वाकांक्षाओं का त्याग कर दिया। जैन संघों को सर्वोपरि मान्यता देते हुए कभी ऐसा कदम नहीं उठाया, जिससे समाज संघर्ष की राह पर चल पड़े। श्रमण संघीय व्यवस्थाओं से पृथक होते समय भी गुरुदेव ने एक व्यवस्था पत्र लिखा कि यदि पंजाब परम्परा में पूज्य आचार्यश्री कांशीराम जी महाराज की समाचारी का पालन सुनिश्चित बने, श्रमण संघ की स्थिति भी अनुकूल रहे तथा संयम की सुरक्षा एवं वृद्धि स्पष्ट दिखाई दे तो हमें श्रमण संघ में आने में कोई आपत्ति नहीं है।

उस अवसर पर श्रमण संघ से पृथक होकर गुरुदेव ने कोई नवीन संघ की संरचना नहीं की। संघ प्रमुख तो बनें परन्तु कभी स्वयं को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित नहीं किया। गुरुदेव चाहते तो स्वयं आचार्य भी बन सकते थे। परन्तु उन्होंने कभी पंजाब में दो आचार्यों की परम्परा का प्रचलन नहीं होने दिया। गुरुदेव कहते थे कि मेरा लक्ष्य संयम पालन है न कि संघों को विभाजित करने का। गुरुदेव को राजस्थान से साधु मार्गी परम्परा के आचार्य बनने का ऑफर भी मिला। परन्तु गुरुदेव के मन में कभी पद-प्रतिष्ठा की महत्वाकांक्षा ने जन्म नहीं लिया।

गुरुदेव ने भी अपने पूर्वजों की परम्परा का आजीवन निर्वहन किया। जीवन यात्रा में श्रावकों एवं संतों की ओर से कई ऐसे प्रस्ताव भी आए कि अब आपके पास चतुर्विध संघ है। आप आचार्य बन जाए

परन्तु गुरुदेव की यह भावना थी कि पंजाब संघ संगठित रहे। राजस्थान और मध्य प्रदेश की भाँति यहाँ के श्रावक भी संघर्षों में अपनी ऊर्जा व्यर्थ न गंवा दें। उत्तर भारत का क्षेत्र बहुत छोटा है। अगर पृथक-पृथक व्यवस्थाएं बन गईं तो 40 घरों में चार टुकड़े हो जाएंगे।

अगर आज पूरे भारतवर्ष में उत्तर भारत को संगठन के रूप में देखा जाता है तो यह सब गुरुदेव की उदार वृत्ति व महानता है। गुरुदेव ने समाज के विकास में व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा को आड़े नहीं आने दिया।

स्थानकवासी परम्पराओं के अतिरिक्त अगर कभी तेरापंथी या दिगंबर भी गुरु चरणों में आता तो गुरुदेव उसे भी अपनी परम्परा में ही रहकर आत्म कल्याण की प्रेरणा देते। गुरुदेव की मान्यता थी कि परम्परा पृथक हो सकती है परन्तु हम सब महावीर के अनुयायी हैं।

गुरुदेव विषमता के नहीं समरसता के समर्थक थे। वर्तमान में कई अदूरदर्शी संत निजी स्वार्थ के लिए अन्य परम्परा के श्रावकों को अपने समर्थन में कर समाज के टुकड़े कर रहे हैं। सेवा व सम्मान के स्थान पर विरोध व वैमनस्य की भावना भर रहे हैं परन्तु बिखराव सदैव विनाशकारी होता है। इससे समाज का या धर्म का कोई विकास नहीं होने वाला। इससे दूरियां फैलेंगी। संघर्ष एवं साम्प्रदायिक विद्वेष की दुर्गंध से समाज विषाक्त हो जाएगा।

उत्तर भारत के उत्थान के लिए गुरुदेव ने श्रावकों को कई संदेश दिए हैं। उनमें एक महत्वपूर्ण संदेश यहाँ प्रस्तुत करना चाहता हूँ- गुरुदेव ने लिखा-

समाज को विघटित करना एक सामाजिक अपराध है। आज कुछ साम्प्रदायिक लोग संगठन को छिन्न-भिन्न करना चाहते हैं। हमें कभी उत्तर भारत में सम्प्रदायवाद को बढ़ावा नहीं देना है। हम ऐसे विघटनप्रिय लोगों को कभी सफल नहीं होने देंगे। मेरा सच्चा श्रावक वही है जो संगठन प्रिय है।

सन् 1983 में बरनाला चातुर्मास हेतु जाते समय गुरुदेव का रामपुरा फूल में पधारना हुआ। वहाँ पर तेरापंथ समाज का ही जैन भवन था। तात्कालिक तेरापंथ समाज के प्रतिनिधियों ने साम्प्रदायिक व्यामोह के कारण गुरुदेव को ठहरने के लिए मना कर दिया। गुरुदेव सनातन मंदिर में ठहर गए। जैन तेरापंथ समाज के कुछ सदस्यों को जब ये पता लगा कि हमारी समाज के प्रमुख प्रतिनिधियों ने संतों को भवन में ठहरने को मना कर दिया तो उन्हें नागवारा लगा। उससे समाज में दोफाड़ हो गई। तेरापंथ के कुछ व्यक्ति गुरुदेव के पास आए। उन्होंने कहा कि हमें तेरापंथ में नहीं रहना। ये संकीर्ण समाज है। हमारी दृष्टि में शहर में आए हर संत का सम्मान होना चाहिए। इसलिए आज से आप हमारे गुरु है। हम तेरापंथ छोड़कर 22 पंथ में सम्मिलित होना चाहते हैं। यह सुनकर गुरुदेव बोले-मैं 22 पंथ समाज का विस्तार करना चाहता हूं परन्तु तेरापंथ में फूट डालकर नहीं। अगर मेरे यहाँ ठहरने से समाज की भावनाएं आहत होती हैं। तो मुझे यह कतई स्वीकार नहीं।

जब तेरापंथ के प्रतिनिधियों को गुरुदेव की महानता का ज्ञान हुआ तो वे गुरुदेव के चरणों में आकर क्षमा याचना करने लगे और तेरापंथ भवन में एक रात्रि विश्राम की प्रार्थना भी की। गुरुदेव ने बिना किसी भेदभाव के उनकी भावनाओं का भी सम्मान करते हुए एक रात्रि तेरापंथ भवन में व्यतीत की। गुरुदेव की इस उदारता को देखकर मेरा मन गुरु चरणों में अतिशय श्रद्धा से भर गया।

यही कारण है कि गुरुदेव आज भी भक्तों के हृदयहार बने हुए हैं। उन जैसा व्यक्तित्व मिलना अत्यंत कठिन है। उन्होंने सदैव समाज को संभाला। किसी संघ को बिखरने नहीं दिया।

**ऐसे संगठन प्रिय गुरुदेव को शत्-शत् प्रणाम।**

**गुरुदेव** एक सुलझे हुए नीतिकार थे।
परन्तु उनका जीवन राजनीति से कोसों दूर था।

# 71 | राजनेता और गुरुदेव

**राजनीति** और धर्मनीति दोनों का परस्पर विरोधात्मक संबंध है। परन्तु राजनीति यदि धर्म का आश्रय ग्रहण करती है तो समाज के हित में कई प्रकार के विधेयात्मक कार्य संभव है। परन्तु यदि यही राजनीति धर्म पर हावी हो जाए तो समाज व धर्म में विकृतियां पनपने लगती हैं। धर्म संघ क्षतिग्रस्त हो जाता है। अत: कल्याण इसी में है कि धर्म प्रमुख राजनीतिक मूल्यों को स्वयं पर हावी न होने दे।

**गुरुदेव एक सुलझे हुए नीतिकार थे। परन्तु उनका जीवन राजनीति से कोसों दूर था। गुरुदेव त्रियोग से संत वृत्ति के धारक थे।**

गुरुदेव वर्षों तक पूज्य बाबा श्री जग्गूमल जी महाराज की सेवा में दिल्ली चांदनी चौक में रहे। राजधानी दिल्ली राजनेताओं की संगम स्थली है। परन्तु गुरुदेव के हृदय में कभी ऐसा आकर्षण नहीं रहा कि मैं राजनेताओं को सभा में बुलाकर उन्हें सन्मानित करूँ। उनके साथ तस्वीर खिंचवाकर प्रसिद्धि प्राप्त करूँ।

यद्यपि उस युग में कई बड़े-बड़े संत राजनेताओं को सभाओं में बुलाकर अपने राजनीतिक प्रभाव का प्रदर्शन करते थे। लाल किले पर आयोजित आडम्बरपूर्ण कार्यक्रमों में भाग लेते थे। राजनेताओं के साथ तस्वीर खिंचवाकर अपने व्यक्तित्व को ऊँचा मानते थे। परन्तु गुरुदेव की मान्यता थी कि संत की शोभा संयम से है। सादगी ही उसका आभूषण है।

गुरुदेव ने बड़े-बड़े दीक्षा समारोह पर भी किसी राजनेता को मुख्य अतिथि नहीं बनाया। अपितु जिन परिवारों ने अपने हृदय हार (पुत्र) को समाज की सेवा व संयम पालन के लिए समर्पित किया है उन्हें ही यह गौरव दिया जाता था। हमारी परम्परा में आज भी यही क्रम गतिमान है।

गुरुदेव की मान्यता थी कि धर्म सभा में राजनीति नहीं होनी चाहिए। यहाँ तो धर्मनीति ही सर्वोपरि है। हाँ,अगर कोई राजनेता स्वेच्छापूर्वक, बिना किसी आडम्बर के श्रद्धा सहित श्रोता के रूप में आना चाहे तो उसमें मेरा कोई विरोध नहीं है। गुरुदेव उससे भी सामान्य श्रावकों की भाँति सद्व्यवहार करते।

सन् 1985 में जब गुरुदेव रोहतक में विराजमान थे। मैंने देखा कि संभवत: सुरेन्द्र जैन, राजमाता सिंधिया को गुरुदेव के दर्शन हेतु लेकर आए। गुरुदेव का प्रथम प्रश्न था कि आप शाकाहारी हैं? राजमाता बोलीं-गुरुदेव! हमें बचपन से ही शाकाहार के संस्कार मिले हैं। धर्म ध्यान में क्या करती हो? गायत्री मंत्र का प्रतिदिन जाप करती हूँ। गौ-सेवा के विषय में आपके क्या विचार हैं? गुरुदेव! हमारे घर में तीन गाय हैं। गुरुदेव ने एक भी प्रश्न राजनैतिक स्वार्थ से प्रेरित होकर नहीं पूछा। अपितु देश के उत्थान के लिए कई महत्त्वपूर्ण टिप्स भी दिए। जाते समय राजमाता ने हाथ जोड़कर पूछा-मेरे योग्य कोई भी सेवा कार्य हों तो अवश्य कृपा करें। तब गुरुदेव ने कहा-देश की सेवा ही मेरी सेवा है। तभी किसी ने कैमरे में तस्वीर खींचनी चाही परन्तु गुरुदेव ने स्पष्ट इंकार कर दिया।

यद्यपि गुरुदेव की पारिवारिक पृष्ठभूमि आर.एस.एस. से संबंधित थी। विश्व हिन्दू परिषद के कई नेता उनके घर पर आते थे परन्तु गुरुदेव का स्नेह अपने धर्म नेता अरिहंत के प्रति था। वे सदैव उन्हीं के गुण अपने जीवन में आमंत्रित करना चाहते थे।

जब कभी लोकसभा या राज्यसभा के चुनावों के समय राजनेता गुरुदेव से आशीर्वाद मांगने आते तो गुरुदेव के मुख से मात्र यही वाक्य निकलता मैं तो सदैव अच्छे कार्य करने वालों का पक्षक्षर हूँ।

सन् 1965 में पंजाब सरकार की स्वास्थ्य मंत्री श्रीमती ओम प्रभा जैन गुरुदेव की अनन्य भक्त थीं। गुरुदेव एक श्राविका की भाँति उनसे वार्तालाप करते थे।

सन् 1996 में श्रीमान् उज्ज्वल जी जैन गुरुदेव से किसी राजनेता के घर दर्शन दिलवाने ले गए। गुरुदेव ने उस नेता से कहा कि मैं आपसे कुछ मांगना चाहता हूँ। वह नेता समझा कि ये संत भी गाड़ी, वाहन या आश्रम के लिए भूमि मांगना चाहते होंगे। उसने आश्वासन देते हुए स्वीकृति में सिर हिलाया। गुरुदेव बोले–अगर संत चरणों में तुम कुछ भेंट करना चाहते हो तो यह प्रण लो कि मैं पूर्णत: शाकाहारी बनूँगा। गुरुदेव की परोपकार वृत्ति देखकर नेता बहुत प्रभावित हुआ। उसने तत्क्षण दोनों हाथ जोड़कर शाकाहार का संकल्प लिया।

सन् 1992 में दिल्ली के एक भाई ने भाव प्रकट किए कि गुरुदेव! मैं राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा को आपके दर्शनार्थ लाना चाहता हूँ परन्तु गुरुदेव ने इंकार करते हुए कहा कि मैं इन व्यर्थ के झंझटों में उलझना नहीं चाहता।

सन् 1995 में सुंदर नगर लुधियाना चातुर्मास में एक नेता ने प्रवचन में आकर सुझाव दिया कि आप लाऊड स्पीकर का उपयोग करें तो अधिक लोगों को लाभ मिलेगा। गुरुदेव ने हाजिर जवाब देते हुए कहा कि मैं आपकी बात से पूर्णत: सहमत हूँ। अगर आप बैटरी या लाइट के दोष से रहित स्पीकर का प्रबंध कर दें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। वह नेता गुरुदेव के वचन सुनकर नतमस्तक हो गया। गुरुदेव सदैव अपने नियमों पर अडिग रहते थे।

हां, गुरुदेव इन बाह्य प्रपंचों से सर्वथा निर्लिप्त थे।

लुधियाना चातुर्मास में ही तत्कालिक एम.एल.ए. सुरेन्द्र डाबर जी ने गुरुदेव से कई बार प्रार्थना की कि मुख्यमंत्री बेअंत सिंह जी को दर्शन करवाने हेतु लाना चाहता हूँ। जब उन्होंने कई बार अनुमति मांगी तो गुरुदेव मौन हो गए। क्योंकि गुरुदेव जानते थे कि मुख्यमंत्री आएंगे तो पुलिस के बहुत आडंबर होंगे। परन्तु डाबर जी श्रद्धापूर्वक मुख्यमंत्री को ले आए। गुरुदेव गर्मी के कारण ऊपर छत पर विराजमान थे। मुख्यमंत्री ने दर्शन किए और परस्पर वार्तालाप भी हुआ। गुरुदेव की सादगी व गर्मी में भी सुविधा विहीन शांत जीवन शैली को देखकर मुख्यमंत्री बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा कि मैं पुन: आपके दर्शन करने आऊँगा। परन्तु गुरुदेव ने टालते हुए कहा कि साधु का कोई ठिकाना नहीं होता। हम आज यहाँ है, कल मिलें न मिलें।

गुरुदेव को राजनेता या राजनीति में कोई रुचि नहीं थी। उनका एकमात्र लक्ष्य था आत्म शुद्धि।

**ऐसी महान आत्मा को शत्-शत् प्रणाम।**

गुरुदेव प्रकाशन के एकांत विरोधी नहीं थे।
गुरुदेव की लेखन व भाषण कला अद्भुत थी
परन्तु गुरुदेव ने अपना कोई व्यक्तिगत साहित्य नहीं छपवाया।

# 72 | साहित्य प्रकाशन और गुरुदेव

**चतुर्थ** आरे में भगवान महावीर के समय श्रुतज्ञान की परम्परा थी। अर्थात् गुरु का मुख एवं शिष्य का श्रवण (कान) ही ज्ञान परम्परा को आगे बढ़ा रहे थे। परन्तु समय-समय पर दुर्भिक्ष एवं स्मरण-शक्ति की क्षीणता के कारण आगमों को लिपिबद्ध करने का कार्य प्रारंभ हुआ ताकि भगवान महावीर के मौलिक ज्ञान एवं श्रुत का संरक्षण किया जा सके। वैसे तो यह कार्य भगवान महावीर के निर्वाण के लगभग 160 वर्ष पश्चात आंशिक रूप से प्रारंभ हो गया था। परन्तु भगवान के निर्वाण के लगभग 980 वर्ष पश्चात आगमों का अंतिम बार सुव्यवस्थित ढंग से लेखन देवर्धिगणि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इससे ज्ञात होता है कि आगम लेखन की परम्परा अत्यंत प्राचीन है।



पूज्य श्री अमर सिंह जी महाराज के युग से पंजाब परम्परा में प्रकाशन का कार्य गतिमान है। न ही पंजाब परम्परा में कभी भी प्रकाशन को प्रतिबंधित समझा गया। सन् 1895 में महासाध्वी पार्वती जी की पुस्तक का प्रकाशन भी हुआ। उसी अंतराल में पूज्य आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज का आगम साहित्य भी समय-समय पर प्रकाशित होता रहा है। पंजाब परम्परा में मुख्यत: चार ग्रुपों का प्रभाव रहा है। पूज्य सोहनलाल जी महाराज, पूज्य लाल चंद जी महाराज, पूज्य मोतीराम जी महाराज एवं पूज्य श्री मयाराम जी महाराज। इनमें पूज्य मयाराम जी महाराज की परम्परा, प्रकाशन के विषय में उदासीन रहती थी। परन्तु कालान्तर में उन्हीं की परम्परा में पूज्य वाचस्पति गुरुदेव का एवं पंजाब केसरी पूज्य श्री प्रेमचंद जी महाराज का प्रवचन साहित्य भी प्रकाशित हुआ। परन्तु आगे जाकर वाचस्पति गुरुदेव के संघ में साहित्य-प्रकाशन में कुछ विशेष रुचि नहीं रही। गुरुदेव भी इसी परम्परा के निर्वाहक बने।

यद्यपि संघ में धर्मबोध इत्यादि कुछ पुस्तकों का प्रकाशन भी हुआ। परन्तु वे पुस्तकें प्रत्यक्ष रूप से संतों से संबंधित नहीं थी। परन्तु गुरुदेव के समय में ही आणुपूर्वी आदि कुछ-कुछ साहित्य सामग्री का प्रकाशन भी हुआ। धर्मबोध पुस्तक का भी निरन्तर प्रकाशन चलता रहा। इससे प्रतीत होता है कि गुरुदेव प्रकाशन के एकांत विरोधी नहीं थे।

जब हम राजस्थान का विचरण कर पुन: उत्तर भारत आए तो मैंने पूज्य गुरुदेव के समक्ष जिज्ञासा रखी। गुरुदेव! राजस्थान में प्रत्येक संयमी व सुविधावादी परम्परा में साहित्य का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्पादन हो रहा है। प्रत्येक परम्परा में मासिक पत्रिका का भी प्रचलन है। हमारा संघ इस विषय में पीछे क्यों है? मेरी बात सुनकर गुरुदेव मौन रहे। मैंने पुन: निवेदन किया। गुरुदेव! यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो मैं इस विषय में आपके विचार जानना चाहता हूं। गुरुदेव बोले- अरुण! वर्तमान में तो हमारी परम्परा में प्रकाशन का प्रचलन नहीं है। परन्तु यह समाचारी पूज्य काशीराम जी महाराज की नहीं है। पंजाब परम्परा की समाचरी में पुस्तक प्रकाशन के सिस्टम का समर्थन है। परन्तु अपनी सांघिक परिस्थितियों के कारण प्रकाशन बंद प्राय: है। सन् 1971 में सोनीपत में लुधियाना से 'आत्म रश्मि परिवार' गुरुचरणों में

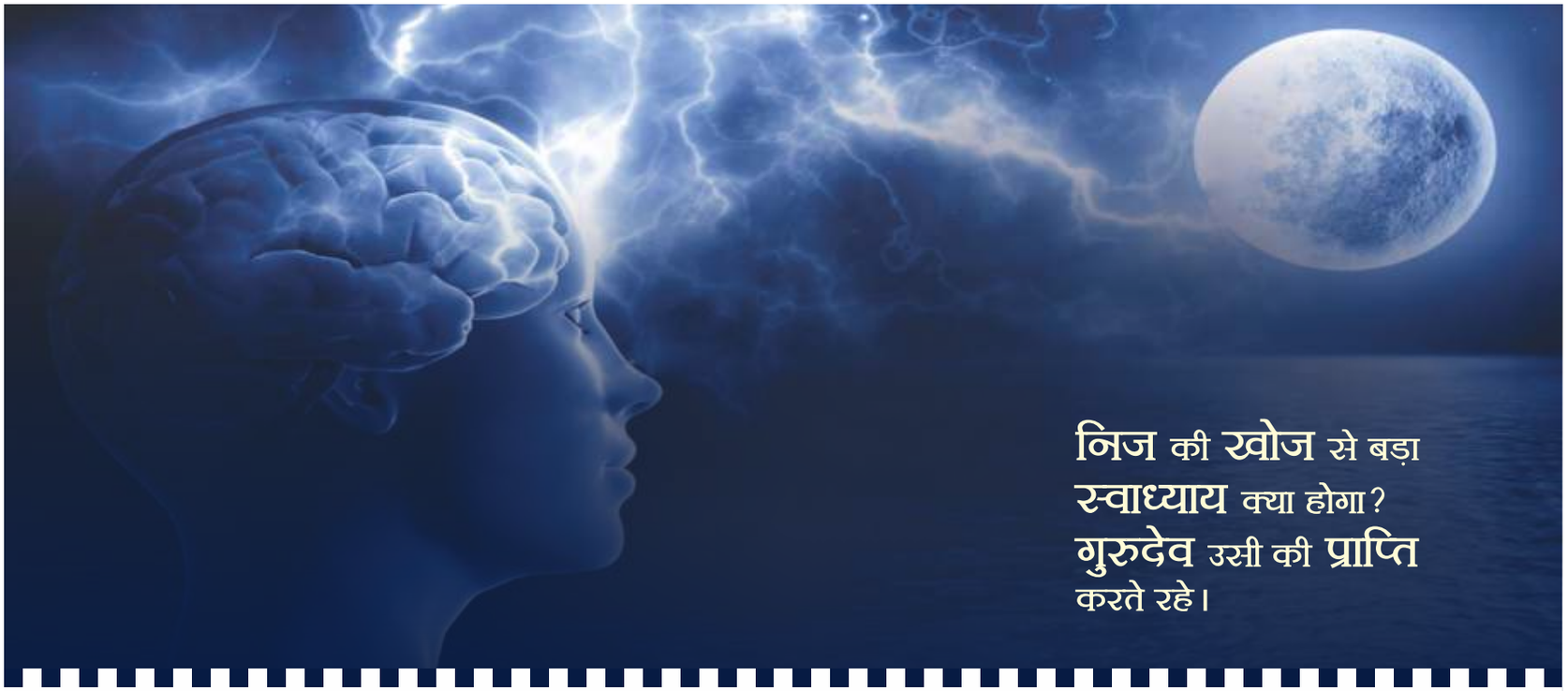




आया था, पत्रिका में लेख प्रकाशित करने की मदद माँगी। पूज्य गुरुदेव ने प्रकाशन के विषय में अपनी सांघिक स्थिति समझाई तथा लेख आदि भेजने में अपनी असमर्थता प्रकट की पर मैंने गुरुदेव को अर्ज करी, वर्तमान में प्रकाशन जरुरी है इतना सुनकर गुरुदेव मौन हो गए, नहि गुरुदेव ने हां कही, नहि ना कही।

संघ में एक समय ऐसा भी आया जब गुरुदेव ने शिक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत श्रावकों के पेपर छपवाने पर भी प्रतिबंध लगाया। गुरुदेव ने आज्ञा दी कि श्रावकों को मौखिक रूप से पेपर लिखवाएं, प्रिंटिंग नहीं होगी।

मुझे जहां तक स्मरण है गुरुदेव ने कभी व्यक्तिगत रूप से किसी पुस्तक का प्रकाशन नहीं करवाया। यद्यपि गुरुदेव की लेखन व भाषण कला अद्‌भुत थी परन्तु गुरुदेव ने अपना कोई व्यक्तिगत साहित्य नहीं छपवाया। अगर संघ में प्रकाशन का प्रचलन होता तो अतीत के महापुरुषों की अनुभूतियों का संचय साक्ष्य रूप में हमारे पास अवश्य होता। आज उस युग के ऐतिहासिक तथ्यों से हम अनभिज्ञ हैं। हमारे आराध्य पूज्य गुरुदेव श्री मयाराम जी महाराज के चातुर्मासों की सूची क्रमिक दृष्टि से हमारे पास उपलब्ध नहीं है।

परन्तु वर्तमान में गुरु परम्परा के संत साहित्य की उपयोगिता के विषय में जागरूक हुए हैं। प्रचुर मात्रा में साहित्य का प्रकाशन भी हो रहा है। जिसमें प्रवचन साहित्य, भजन साहित्य, तात्विक साहित्य व इतिहास से संबंधित महापुरुषों के जीवन का साहित्य भी सम्मिलित है।

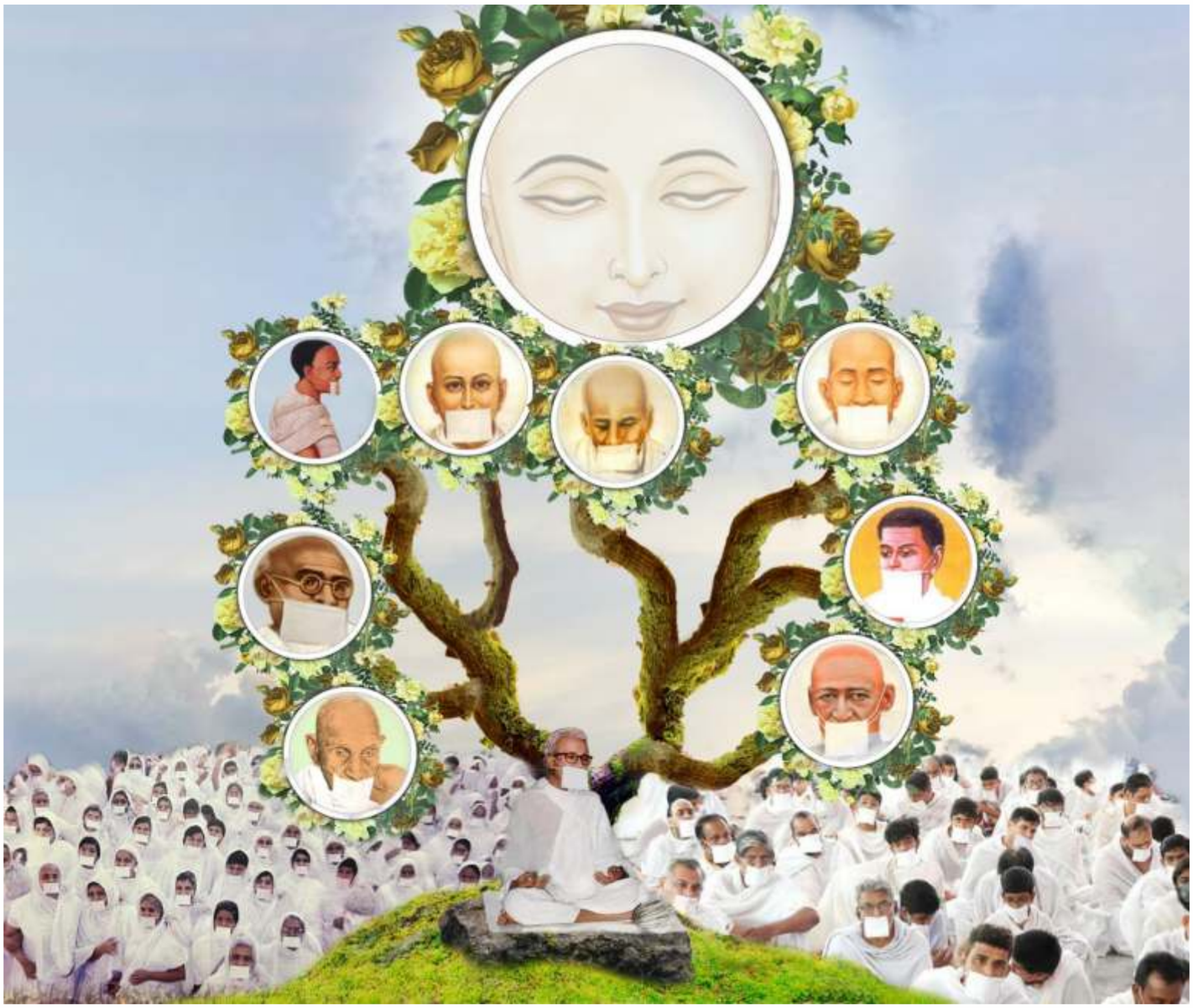

गुरुदेव ने अपने विनम्र स्वभाव के कारण अपने पूर्वज महापुरुषों का कृपा प्रसाद प्राप्त किया।

# 73 | गुरु परंपरा के पूर्वज तथा गुरुदेव

**जिस** प्रकार शरीर के मूल भाग में स्थित मूलाधार चक्र शारीरिक स्वास्थ्य एवं दृढ़ता का प्रतीक है। उसी प्रकार किसी संघ, समाज या परिवार की पूर्वज परंपरा उसके संस्कारों की द्योतक है। यदि किसी वृक्ष का मूल गहरा व सुदृढ़ होगा तभी वह स्वस्थ शाखाओं को जन्म देगा। गुरुदेव श्री की पूर्वज परंपरा पूज्य आचार्यश्री अमर सिंह जी महाराज एवं संयम सुमेरू पूज्य श्री मयाराम जी महाराज द्वारा सिंचित उज्ज्वल परंपरा रही है। गुरुदेव को अपने जीवन काल में अपनी पूर्वज परंपरा के अनेक महापुरुषों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुरुदेव ने अपने विनम्र स्वभाव के कारण उन महापुरुषों का कृपा प्रसाद भी प्राप्त किया।

गुरुदेव का सन् 1948 का चातुर्मास पूज्य तपस्वी श्री नेकचंद जी महाराज आदि ठाणा के सान्निध्य में सुनाम में हुआ। उनमें एक महापुरुष श्री अमीलाल जी महाराज (जो श्री सुखीराम जी महाराज के सुशिष्य थे) भी विराजित थे। जिन्होंने गुरुदेव के बाल्यकाल में धार्मिक कथाओं के माध्यम से उनके पूर्वभव के शुभ संस्कारों को जागृत किया था। सन् 1949 के चातुर्मास में भी गुरुदेव को अपनी संघ परंपरा के वयोवृद्ध संत पूज्य अमीलाल जी महाराज एवं तपस्वी श्री नेकचंद जी महाराज के चरणों में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन महापुरुषों से गुरुदेव ने आध्यात्मिक विकास के सूत्रों का शिक्षण प्राप्त किया। उसी चातुर्मास में गुरुदेव ने जीवन में प्रथम व अंतिम बार नौ दिवस उपवास की तपस्या की आराधना की थी।

इससे पूर्व सन् 1943 में भी गुरुदेव का चांदनी चौंक का चातुर्मास पूज्य अमीलाल जी महाराज की सेवा में हुआ।

पूर्वज परंपरा के महापुरुषों की इस रत्नमाला के एक दिव्य रत्न थे पूज्य तपस्वी श्री फकीरचंद जी महाराज। इस महान आत्मा से भी गुरुदेव ने विनय एवं सेवा भाव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त किया। पूज्य श्री फकीरचंद जी महाराज गुरुदेव से हार्दिक आत्मीय भाव रखते थे। सन् 1947 के मूनक चातुर्मास में पूज्य तपस्वी श्री फकीरचंद जी महाराज ने गुरुदेव पर इतना अनुग्रह किया कि वे गुरुदेव के गुणगान भरे प्रवचन में करते हुए कहते। 'सुदर्शन मुनि तो गुणों के भंडार है। इनके आदर्श इतने उच्च है कि ये किसी संयमी संघ के आचार्य बनने की योग्यता रखते हैं। ये जिनशासन के शिव शंकर है। पूज्य तपस्वी जी महाराज के ये शब्द मूनक के वयोवृद्ध श्रावक आज भी दोहराते हैं।'

एक दिन का प्रसंग है। पूज्य श्री फकीरचंद जी महाराज एवं गुरुदेव आहार हेतु जा रहे थे। मार्ग में एक श्रावक श्रीमान जगदीश जैन ने वंदन किया परन्तु गुरुदेव वंदन स्वीकार न करते हुए मौन पूर्वक आगे निकल गए। स्थानक में आकर जब पूज्यश्री ने पूछा–सुदर्शन! तुमने जगदीश की वंदना स्वीकार क्यों नहीं की। गुरुदेव ने निवेदन किया कि उस समय श्रावक जी के हाथ में कच्ची सब्जी थी। यह सुनकर तपस्वी जी महाराज गद्‌गद् हो गए बोले–सुदर्शन तू कितना विवेकशील है। भला मेरा ध्यान इस ओर क्यों नहीं गया? पूज्य फकीरचंद जी महाराज एक महान सरल आत्मा थे।

पूर्वज परंपरा की शृंखला में पूज्य गुरुदेव ने गणावच्छेदक पूज्य श्री बनवारी लाल जी महाराज के भी दर्शन किए। सन् 1947 में पूज्य वाचस्पति गुरुदेव ने गुरुदेव को अपने समीप आमंत्रित कर सस्नेह कहा-सुदर्शन! इस वर्ष तो तेरी लॉटरी निकल पड़ी। तुम्हें स्वयं धर्म के कल्पवृक्ष श्री बनवारीलाल जी महाराज ने अपनी सेवा का अवसर प्रदान किया है। तुम्हें हृदय से उनकी सेवा-विनय करनी है। आजीवन सुखी रहोगे। यह समाचार सुनकर गुरुदेव की प्रसन्नता का पार नहीं रहा। वे इतने खुश थे कि जैसे उन्हें कोई अमूल्य उपहार मिला हो।

गुरुदेव कई बार स्वयं अपने मुख से कृपा करते कि मुझे 17 वर्ष की अल्पायु में यह स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ था। यद्यपि गुरुदेव तन-मन से भक्ति पूर्वक पूज्यश्री की सेवा में संलग्न थे। फिर भी एक बार स्वयं को आश्वस्त करने हेतु उन्होंने पूज्यश्री को पूछा-क्या आप मेरी सेवा से प्रसन्न हैं। उस अवसर पर पूज्यश्री ने फरमाया-तुम निश्चिंत रहो। तुम्हारी सेवा ने तो मेरी अंतरात्मा को शीतल बना दिया है।

पूज्य बनवारी लाल जी महाराज एक जागृत आत्मा थे। भविष्य में होने वाली शुभाशुभ घटना का अंदेशा वे स्वप्न व स्वभाविक प्राकृतिक चिन्हों से लगा लेते थे। एक बार उन्होंने निवेदन किया कि मैंने स्वप्न देखा कि पश्चिम दिशा में अग्नि प्रज्जलित है और आकाश सिंदुर के समान लाल है। इससे प्रतीत होता है कि देश में दंगों व कोलाहल का वातावरण निर्मित होगा। उसी वर्ष भारत को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अपने ही देश के नागरिकों के कलह की कीमत रक्तपात से चुकानी पड़ी। बहुत भयावह दृश्य था वह।

पूर्वज महापुरुषों की परंपरा में पूज्य श्री रणसिंह जी महाराज का नाम भी उल्लेखनीय है। जो पूज्यश्री रामजीलाल जी महाराज के शिष्य थे। गुरुदेव ने 1964 में श्री रणसिंह जी महाराज के दर्शन मूनक में किए थे। 1967 में पूज्य रणसिंह जी महाराज ने घोषणा की थी कि आज से हम पूज्य संघशास्ता श्री सुदर्शन लाल जी महाराज के आज्ञानुवर्ती है। गुरुदेव ने श्री विजय मुनि जी को पूज्य रणसिंह जी महाराज का शिष्य घोषित किया था। कालांतर में सन् 1979 में पूज्य रणसिंह जी महाराज ने श्री विजय मुनि के दबाव के चलते चातुर्मासिक आज्ञा नहीं ली और स्वेच्छा से चातुर्मास करने लगे। जिससे यह संयोग वियोग में परिवर्तित हो गया। परन्तु गुरुदेवश्री का कभी किसी संत से किसी विषय को लेकर विवाद नहीं था।

गुरुदेव समत्व, सेवा व संयम के उपासक थे। उन्होंने हृदय से अपनी पूर्वज परंपरा के प्रति सम्मान व सेवा के दायित्व को निभाया।

**ऐसे महान परोपकारी संतरत्न की जय हो।**

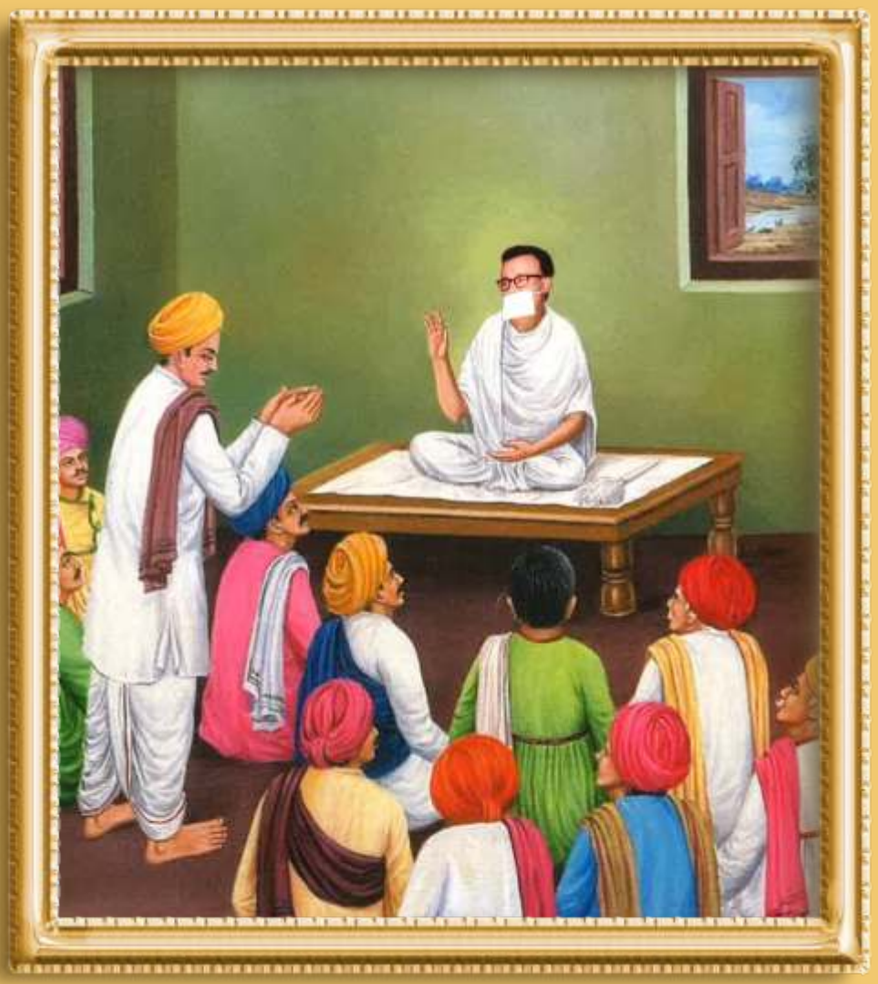

**गुरुदेव** ने संयम की मर्यादाओं का पालन
करते हुए जिनशासन की,
स्थानकवासी परम्परा की,
मयाराम संघ की एवं
गुरु मदन के कुल की
महान प्रभावना की।
गुरुदेव का प्रत्येक उपदेश
संघ सेवा एवं प्रभावना के महान
उद्देश्य से प्रेरित था।

# 74 | शासन प्रभावना और गुरुदेव

**जिनशासन** की प्रभावना कर्म निर्जरा का महान हेतु है। जब हम इतिहास के स्वर्णिम पृष्टों का अवलोकन करते हैं तो ज्ञात होता है कि श्री कृष्ण महाराज ने जिनशासन की महती प्रभावना कर तीर्थंकर नामकर्म का पुण्योपार्जन किया था। जन-जन को संयम की महानता एवं व्रत नियमों के महत्त्व से परिचित करवाया। यह स्पष्ट है कि हलुकर्मी आत्माओं (निकटभव में मोक्षगामी) के द्वारा ही शासन प्रभावना का महान कार्य संपन्न होता है।

इतिहास साक्षी है कि जैन परम्परा के अनेक महापुरुषों ने आचार के साथ-साथ प्रचार के माध्यम से भी जिनशासन की महान प्रभावना की है। पूज्य गुरुदेव भी उन्हीं महापुरुषों की श्रृंखला में एक देदीप्यमान संत रत्न थे। गुरुदेव ने संयम की मर्यादाओं का पालन करते हुए जिनशासन की, स्थानकवासी परम्परा की, मयाराम संघ की एवं गुरु मदन के कुल की महान प्रभावना की। गुरुदेव का प्रत्येक उपदेश संघ सेवा एवं प्रभावना के महान उद्देश्य से प्रेरित था।

गुरुदेव ने सन् 1947 का मूनक चातुर्मास पूज्य श्री बनवारी लाल जी महाराज की सेवा में मूनक में किया। मूनक में एक बड़ा जैन समाज था परन्तु जैन स्थानक का अभाव था। समाज में मीटिंगों का दौर भी चला। कई संतों ने भी प्रयास किया। परन्तु किसी न किसी कारण स्थानक बनने का निर्णय अधर में ही लटका रहा। बड़ों की आज्ञा प्राप्त कर गुरुदेव ने भरे प्रवचन में ऐसी प्रभावशाली प्रेरणा दी कि वर्षों से लम्बित कार्य एक ही पल में सुलझ गया। मात्र पाँच वर्ष की दीक्षा पर्याय में गुरुदेव ने यह चमत्कार कर दिखाया। मूनक में जैन स्थानक गुरुदेव की प्रेरणा का ही परिणाम है।

सन् 1960 में गुरुदेव का रोहतक में एतिहासिक चातुर्मास हुआ। गुरुदेव के प्रवचनों से लोगों में धार्मिक लहर पूर्ण उफान पर थी। भक्ति की तरंगे जैसे जन-आंदोलन में परिवर्तित हो गई हो। यह अद्‌भुत दृश्य रोहतक वासियों ने प्रथम बार देखा था। संभवत: हजारों श्रद्धालु अपने धरती पुत्र की प्रवचन में सिंह गर्जना श्रवण करने आते थे।

1961 में गुरुदेव के एक मास के जालंधर प्रवास के अंतर्गत मंडी फैंटनगंज में प्रवचन आयोजित हुआ। 15 दिसंबर 1963 में गुरुदेव की प्रेरणा से लुधियाना देवकी देवी हाल में 1300 सामायिकों का भव्य आयोजन हुआ। इस विशाल सामायिक यज्ञ से स्थानकवासी परंपरा की अविश्वसनीय प्रभावना हुई।

सन् 1968 में जयपुर में पूज्य गुरुदेव श्री शांतिचंद्र जी महाराज के मासखमण पर गुरुदेव ने पाँच सौ तेले करवाने का लक्ष्य रखा। परन्तु गुरुदेव की प्रेरणा से जयपुर वालो ने आठ सौ तेले का कीर्तिमान स्थापित किया।

गुरुदेव की यश: कीर्ति जनसाधारण तक ही सीमित नहीं रही। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ भी बिना किसी आमत्रंण के गुरुदेव के दर्शनों के लिए लालायित रहते थे। सन् 1972 में गुरुदेव जींद में विराजमान थे। उस समय तत्कालिक वित्तमंत्री मांगेराम जी गुरुदेव के दर्शनों के लिए आते थे। इसी चातुर्मास में कई श्रावकों ने एक आसन पर 31 सामायिकों

का संकल्प भी पूर्ण किया। यू.पी. के शामली क्षेत्र का जीर्णोद्धार भी गुरुदेव की कृपा से संभव हो पाया।

गुरुदेव ने 29 सुयोग्य शिष्यों का निर्माण कर जिनशासन की महान प्रभावना की। गुरुदेव द्वारा प्रज्ज्वलित ये 29 दीपक आज भी अपनी अलौकिक ज्योति से समाज का पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। आज उत्तर भारत से अधिकतर समायिक करने वाले श्रावक गुरुदेव के ही कृपा पात्र है।

सन् 1992 में जब गुरुदेव दिल्ली पधारे। गुरुदेव का आगमन सुनकर दिल्ली वासियों में धर्म की लहर व्याप्त हो गई। बहादुरगढ़ में स्वागतार्थ दो हजार श्रद्धालु बिना किसी आमंत्रण के एकत्रित हो गए। सर्वत्र धर्म व भक्ति का ज्वार उमड़ने लगा। गुरुदेव के वात्सल्य ने जैसे दिल्ली पर जादु की छड़ी घुमा दी हो। दिल्ली के सभी क्षेत्रों में धर्म की खूब प्रभावना हुई। उस अवसर पर विशेष रूप से सुलेख जी, सुरेश जी, शांति जी, सतपाल जी, फतेहचंद जी आदि श्रावक गुरुदेव की विहार यात्रा में साथ रहकर इन ऐतिहासिक क्षणों के साक्षी बने।



धर्म प्रभावना के क्षेत्र में गुरुदेव का दिल्ली प्रवास एक मील का पत्थर सिद्ध हुआ। छः महीने के दीर्घ प्रवास में गुरुदेव 90 स्थानों पर गए। सभी तरफ समवसरण का वातावरण था। बड़े-बड़े धर्मस्थल भी जैन सैलाब के समक्ष बौने होने लगे। गुरुदेव ने अपने जीवन में अद्‌भुत धर्म प्रभावना की।

**ऐसे धर्म प्रभावक गुरुदेव सदा जयंवत रहे।**

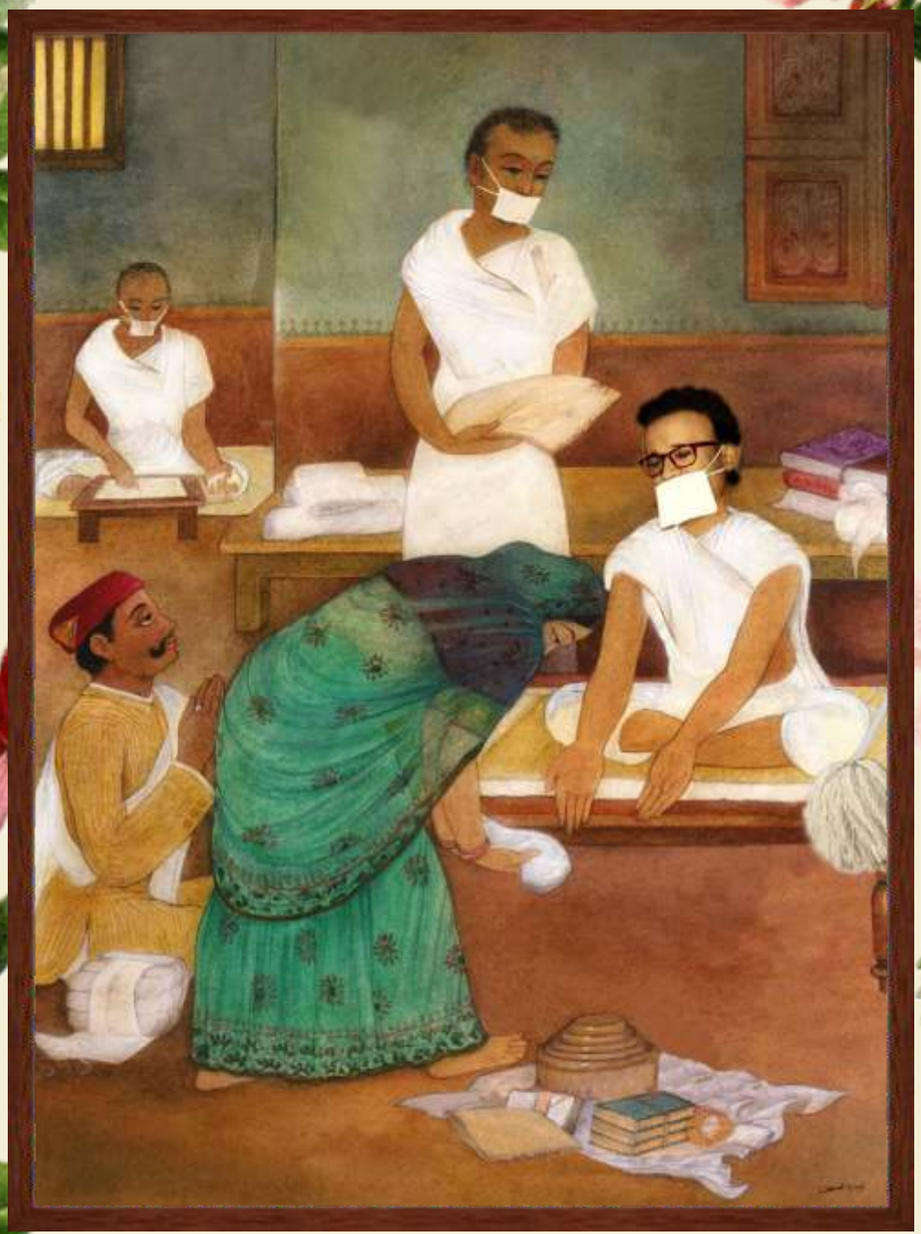

गुरुदेव ने भी तीर्थंकरों की उज्ज्वल परम्परा का निर्वाह
करते हुए नारी को सम्मान दिया।
गुरुदेव प्रत्येक नारी को सम्मानजनक शब्दों
से सम्बोधित करते थे।

# 75 | नारी सम्मान और गुरुदेव

**मनुस्मति** में नारी सम्मान विषयक एक सुंदर श्लोक है। *'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।* अर्थात्–जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं।

अनादिकाल से जैन धर्म में स्त्रियों को जितना सम्मान प्राप्त हुआ। संभवत: अन्य किसी परंपरा में ऐसा उदाहरण नहीं है। 'नारी गुणवती धृते सृष्टौ अग्रिम् पदम्।' गुणवान नारी सृष्टि में अग्रिम पद को धारण करती है। तीर्थंकर भगवान ने नारियों को दीक्षित कर समवसरण में उच्च स्थान दिया। भगवान ऋषभदेव ने राज्य व्यवस्था में अक्षर व अंक गणित का ज्ञान सर्वप्रथम नारी जाति की ब्राह्मी व सुन्दरी को प्रदान किया। तत्पश्चात् भरत व बाहुबली को शिक्षित किया। आज भी ब्राह्मी लिपि विश्व में विख्यात है। भगवान महावीर ने आर्याचंदना को आर्या प्रमुखा बनाकर संघ में समानता का अधिकार दिया।

गुरुदेव ने भी तीर्थंकरों की इस उज्ज्वल परम्परा का निर्वाह करते हुए नारी को सम्मान दिया। यद्यपि उस युग में पुरुष वर्ग स्त्री पर प्रत्येक क्षेत्र में हावी था। परन्तु फिर भी गुरुदेव ने नारी को गरिमापूर्ण स्थान देने का भरकस प्रयास किया।

गुरुदेव ने जब से प्रवचन देना प्रारंभ किया। कभी भी स्त्री जाति के लिए हल्के शब्दों का प्रयोग नहीं किया। गुरुदेव जब भी किसी स्त्री को संबोधित करते तो बहन जी, माताजी, शेरनी बहन, तपस्विनी बहन इत्यादि सम्मान जनक शब्द ही गुरुदेव के मुख से निकलते थे।

सन् 1969 में जब गुरुदेव का चातुर्मास बड़ौत में हुआ। उस चातुर्मास में भी सुश्रावक श्री इलमचंद जी की सपुत्री कु. सुदर्शना ने गुरुदेव के चरणों में सम्यक दर्शन की आराधना की। कई प्रकार के व्रत-नियमादि की अलौकिक पूँजी भी अर्जित की। जो उनके समग्र जीवन का शृंगार बन गई। उन संस्कारों को प्राप्त कर उस श्राविका ने अपनी आत्मा का तो उत्थान किया ही, साथ ही साथ संपूर्ण उत्तर भारत के लिए वह श्राविका एक प्रेरणास्तंभ बनी। दिल्ली के सुश्रावक श्री अरिदमन जी के सुपुत्र श्री सुकुमालचंद जी की धर्मपत्नी बनकर कुल व समाज को भी गौरन्वित किया। इस व्रतधारी श्राविका के जीवन का कण-कण गुरुदेव के अनन्त उपकारों का ऋणी है।

मुझे स्मरण है कि मेरी दीक्षा के अवसर पर इसी बहन ने मेरे हाथों पर संयम की मेहंदी लगाई थी। उस श्राविका के हृदय में जिनशासन व गुरुदेव के प्रति श्रद्धा का निर्झर प्रवाहित था। जिन प्रतिमाओं का निर्माण गुरुदेव ने धर्म संस्कारों से किया वही बहनें मेरे संयम में भी सहयोगी बनी।

पानीपत में संघ सम्मेलन था। एक बहन ने वर्षीतप की आराधना की। जब वह बहन गुरुदेव के दर्शनार्थ आई तो गुरुदेव ने उस बहन को संबोधित करते हुए कहा-ए शेरनी बहन! तुम्हारे तपस्या में सुखसाता है? यह सुनकर उस बहन का हृदय बाग-बाग हो गया। उसने कहा-गुरुदेव ने मेरे तप के प्रति विशेष मंगल कामना की है। अब मैं पारणा न कर के तप को ओर दीर्घ बनाऊँगी।

गुरुदेव के संघ में कुछ श्रावक सलाहकार थे। तो गुरुदेव ने कई विशिष्ट श्राविकाओं को भी जैसे दरियागंज दिल्ली से सुदर्शना जी,

जालंधर से विमला जी (धागेवाली), मुज्जफरनगर से तपस्विनी चंचल जी, शालीमार बाग से चाणनदेवी जी (झंडेजी के माता जी), रोहतक से शांति जी, गोहाना से इलायची देवी जी, भंठिडा से पटवारन जी, इत्यादि कई प्रमुख श्राविकाएं भी गुरुदेव की सलाहकार थी।

गुरुदेव प्रत्येक नारी का मातृवत् सम्मान करते थे। परंतु कभी स्त्रियों से अत्याधिक संपर्क नहीं बढ़ाया। कभी एकाकी में नारी से वार्तालाप नहीं किया। अगर कोई श्रावक उपस्थित हो तभी स्त्री से वार्तालाप संभव था। गुरुदेव ने भावनाओं के साथ-साथ कभी नियमों को विस्मृत नहीं किया।

गुरुदेव वैरागियों की वीर माताओं का भी सम्मान करते थे। जब श्री अचल मुनि जी के पैतृक गाँव गांगोली में गुरुदेव पधारे। उस समय हम दोनों वैराग्यावस्था में गुरुदेव के साथ थे। गुरुदेव ने भरी सभा में अचलमुनि जी की माता को विशेष रूप से कहा-तुमने अपना लाल जिनशासन की सेवा में समर्पित किया है। यह तेरा शासन पर उपकार है। प्रवचन सभा में गुरुदेव ने उस वीर माता का सम्मान भी किया।

अगर कोई बहन मासखमण करती तो गुरुदेव स्वयं उसके लिए भजन गाते थे। स्वयं जाकर पारणे पर मंगलपाठ की कृपा करते थे। 1993 के त्रिनगर चातुर्मास में हमने यह दृश्य अपनी आंखों से देखा है। गुरुदेव अपने प्रवचनों में कई बार भ्रूणहत्या की कठोर शब्दों में भर्त्सना करते थे। अगर घर में बेटियां ही न रही तो तुम्हारे घर व कुल परंपरा को आगे कौन बढ़ाएगा? गुरुदेव बेटियों के रक्षण एवं शिक्षण की प्रेरणा देते थे।

यद्यपि उस समय गुरुदेव के संघ में आज्ञानुवर्ती कोई साध्वी वर्ग नहीं था। परन्तु गुरुदेव के प्रति कई प्रतिष्ठित साध्वियाँ आस्थावान थी और गुरुदेव ने भी उन साध्वी मंडल को शिक्षाएँ एवं प्रोत्साहन दिया।

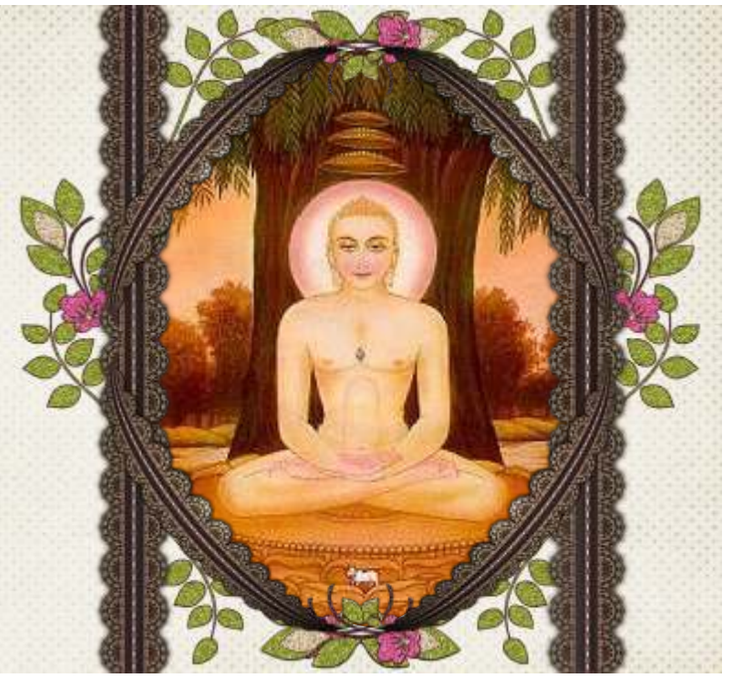

जैसे महासाध्वी सुंदरी जी महाराज, श्री शांति जी महाराज, भागवंती जी महाराज, श्री स्वर्णा जी महाराज, श्री सुमित्रा जी महाराज, संतोष जी महाराज एवं महासाध्वी सुलक्षणा जी महाराज इत्यादि।

कई साध्वियों ने शिक्षा व संयम की दृष्टि से गुरुदेव के साथ संयुक्त चातुर्मास भी किए। गुरुदेव महिला दिवस का भी आयोजन करते थे। उस दिन नारी के गौरव की महिमा के विषय में फरमाते। त्रिनगर में गुरुदेव ने नारियों के भाषण भी करवाए। गुरुदेव के मन में नारी जाति के प्रति गहरा सम्मान था।

गुरुदेव का मन्तव्य था कि नारी को पुरुष के समान ही प्रगति के समान अवसर प्राप्त हो परन्तु नारी स्वयं स्वच्छंद व उद्दंड प्रकृति की न बने। मर्यादाओं में रहकर समाज व देश के विकास में योगदान दें।

**ऐसे नारी उद्धारक गुरुदेव को कोटि प्रणाम!**

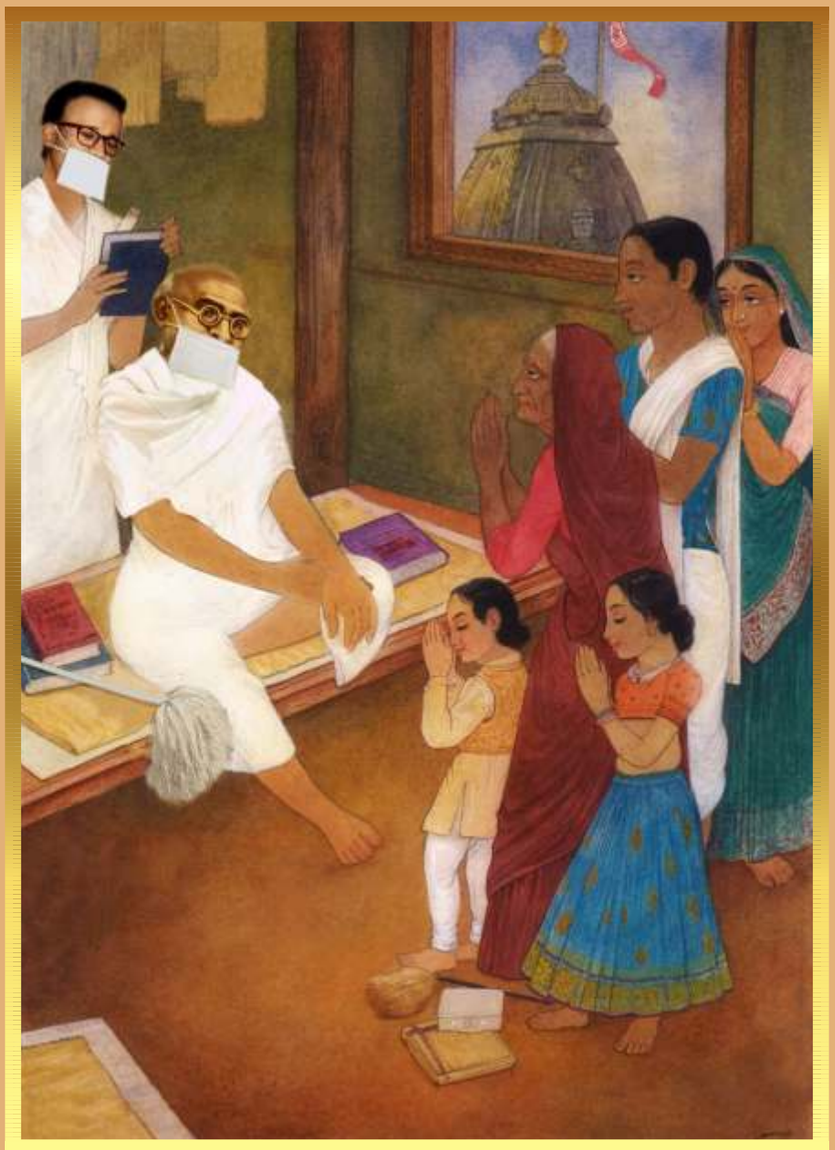

गुरुदेव ने बालकों में ज्ञान की प्यास जागृत करने के लिए ज्ञानशालाओं का शुभारंभ किया।
उन पाठशालाओं में गुरुदेव स्वयं बच्चों को जैनत्व की शिक्षा प्रदान करते थे।

# 76 | बालक और गुरुदेव

**बालक** का हृदय सरल, पवित्र व छल-प्रपंच से रहित होता है। किसी ने सत्य कहा है यदि हमें भगवान के दर्शन करने हो, तो उसका एकमात्र उपाय है भोले-भाले शिशु का मुखमंडल निहार ले। क्योंकि बच्चे के मन में भी प्रभु की भाँति कोई विकृति नहीं होती। जैसा बालक भीतर होता है। उसका प्रतिबिम्ब वैसा ही बाहर झलकता है। हम श्री अंतकृत सूत्र में प्रतिवर्ष श्रवण करते हैं कि गणधर गौतम स्वामी जैसे महान् साधक कैसे एक नन्हें बालक के आग्रह पर उसके भवन में आहार के लिए पधारते हैं। फिर वही बालक अंगुलि पकड़कर गौतम स्वामी जी के साथ भगवान महावीर के दर्शन के लिए जाता है। जब चार ज्ञान के धारक गौतम स्वामी को नन्हा बालक अंगुलि पकड़कर घर ले जा सकता है तो अन्य साधक बालक के निश्छल स्वभाव से कैसे आकर्षित न हो? क्योंकि ऐसे बालक ही धर्म रथ को आगे बढ़ाने वाले नन्हें सिपाही होते हैं।



गुरुदेव के मन में भी बालकों के प्रति विशेष स्नेह था वे सदैव बालकों को देव, गुरु व धर्म से जुड़कर रहने की प्रेरणा देते। दीक्षा के उपरांत गुरुदेव ने बाल संस्कारों पर ध्यान केन्द्रित किया। उनमें संस्कारों का बीजारोपण कर जीवन को एक नई दिशा दी।

गुरुदेव ने उस युग में बालकों में ज्ञान की प्यास जागृत करने के लिए ज्ञानशालाओं का शुभारंभ किया। उन पाठशालओं में गुरुदेव स्वयं बच्चों को जैनत्व की शिक्षा प्रदान करते थे। उत्तर भारत के बालकों का जीवन धर्म की सुगंध से महकने लगा। जब भी कोई बच्चा गुरुदेव के दर्शनार्थ आता तो गुरुदेव उससे सर्वप्रथम पूछते-तुम्हें नवकार मंत्र आता है? 24 तीर्थंकरों के 16 सतियों के नाम स्मरण हैं? माता-पिता के चरण-स्पर्श करते हों? गुरु धारणा की है? सामायिक करते हो? बालक के सिर पर हाथ फेरते हुए उसे भरपूर स्नेह देते हुए समझाते जीवन में कभी बुरी संगति नहीं करना। इन छोटे-छोटे सूत्रों के माध्यम से बालकों का आध्यात्मिक निर्माण करते थे।

भक्तों का अपार जन-समूह गुरुदेव के दर्शनों के लिए उमड़ता तो गुरुदेव यदि किसी नन्हें बालक को देखते तो उसके सिर पर हाथ रखकर अवश्य स्नेह देते थे। गुरुदेव समय-समय पर दस्ती-पत्र के माध्यम से बच्चों को प्रेरणा देते थे। जिन बालकों ने गुरुदेव के स्नेह स्पर्श को अनुभव किया है वे पुण्यात्मा आज भी गुरुदेव का स्मरण करते हैं। गुरुदेव ने उन्हें संस्कारों की पूँजी से समृद्ध किया था। गुरुदेव सदैव उनके हृदय में विराजमान रहेंगें।

1983 बरनाला चातुर्मास में गुरुदेव ने बाल दिवस आयोजित करवाया जिसमें बच्चों की भाषण प्रतियोगिता भी थी। एक भाषण गुरुदेव ने अपने हाथ से लिखा। उसी भाषण को चयनकर्त्ताओं ने प्रथम स्थान दिया था। परन्तु गुरुदेव ने अपने प्रवचन में फरमाया मेरे लिए तो सभी बालक प्रथम स्थान पर है। गुरुदेव ने चातुर्मास में मुझे बच्चों की पाठशाला संभालने का उत्तरदायित्व सौंपा। बरनाला में मैंने लगभग एक महीने तक बीस बच्चों को ज्ञान-ध्यान सीखाया। गुरुदेव कक्षा में आकर स्वयं बच्चों से सामायिक के पाठ सुनते थे।

अंबाला चातुर्मास में कोई भाई दो बालकों को गुरुदेव के पास लेकर आया। गुरुदेव ने गैलरी के बराबर वाले कक्ष में बुलाकर मुझे कहा-'ये दोनों बालक प्रज्ञा चक्षु (अंधे) है। परन्तु इनमें अद्वितीय प्रतिभा है।' गुरुदेव ने उन बच्चों को घंटो धर्म का उपदेश दिया। उन्हें सकारात्मक जीवन जीने का प्रोत्साहन भी दिया।

मैं आपको यहाँ एक विशेष बात बताना चाहता हूँ। ऐसा नहीं था कि गुरुदेव को मात्र युवाओं व वृद्धों का ही ध्यान रहता था। केवल उनका ही नाम से संबोधित करते थे। गुरुदेव बच्चों को भी उनके नाम से ही पुकारते थे।

यह गुरुदेव के वात्सल्य का ही परिणाम था कि गुरुदेव के सान्निध्य में अधिकतर वैरागी बच्चे ही थे। गुरुदेव के अधिकतर शिष्य बाल ब्रह्मचारी थे। गुरुदेव जानते थे कि एक उज्ज्वल बालक ही धर्म की कसौटी पर खरा उतर सकता है। जब मैं सर्वप्रथम वैरागी बनकर सन् 1981 में बुटाना में गुरुचरणों में आया तो गुरुदेव ने बाल सुलभ क्रीड़ा करते हुए एक छोटे से कंकर को हाथ में उठाया। दोनों बंद मुट्ठियां मेरे आगे करते हुए पूछा कि अरुण! बताओ मेरी कौन-सी मुट्ठी में कंकर है। अगर तुमने सही बताया तो आज तुम्हें मेरा विशेष आशीर्वाद मिलेगा। मैं गुरुदेव की एक मुट्ठी का स्पर्श किया। कंकर उसी मुट्ठी में था। गुरुदेव मुझ पर स्नेह वर्षण करते हुए बोले-अरुण! तू एक दिन बहुत महान बनेगा।

गुरुदेव अधिकतर बच्चों को सामायिक करने की प्रेरणा देते थे। क्योंकि सामायिक ही स्थानकवासी धर्म का मूल आधार है। बड़ों का सम्मान, माता-पिता का सत्कार व घर में मधुर भाषण करना। यही गुरुदेव के मूल शिक्षा-सूत्र थे। गुरुदेव चाहते थे कि प्रत्येक घर में श्रवण कुमार जैसे संस्कारी बालक हो।

गर्भवती बहनों को गुरुदेव विशेष दीर्घ मंगल पाठ सुनाते थे। जिससे जन्म लेने वाला बालक-बालिका संस्कार-युक्त बने। धर्म में आस्थावान बने। बच्चों को भी श्वेत वस्त्र पहनकर सामायिक करने की प्रेरणा देते थे। इस प्रकार गुरुदेव ने लाखों बालकों का जीवन-निर्माण किया।

**ऐसे जीवन निर्माता गुरुदेव को शत-शत प्रणाम!**

गुरुदेव फरमाते थे कि सच्चा नवयुवक वही है
जो अपने अभिभावकों व बुजुर्गों का हृदय से सम्मान करता है।
उनकी आज्ञा शिरोधार्य करता है।
गुरुदेव ने अपने जीवन में संघ के बुजुर्ग संतों की तन-मन से सेवा-सुश्रूषा की है।

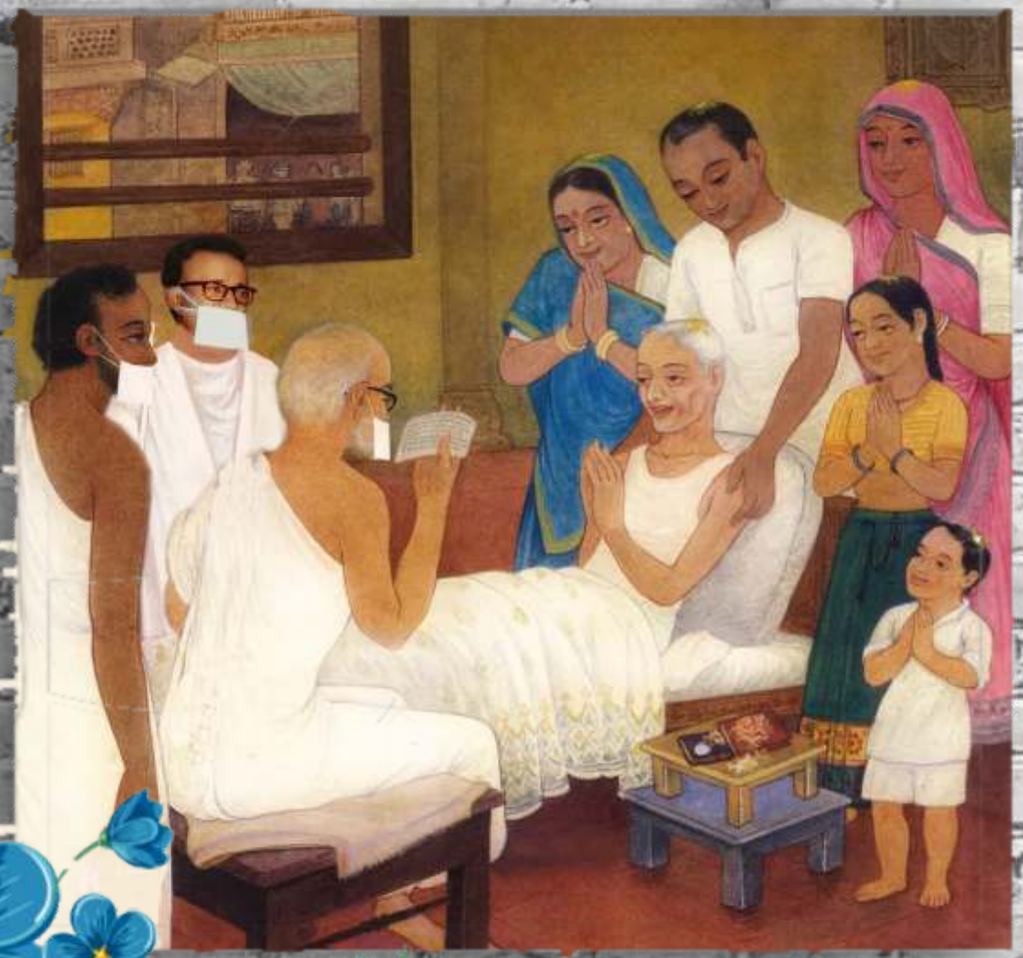

# 77 | वृद्ध और गुरुदेव

**बुजुर्ग** समाज व परिवार की धरोहर होते हैं। अपनी अनुभव रूपी आँख से वह हमें सत्य का साक्षात्कार करवाते हैं। प्राचीनकाल में एक कहावत प्रचलित थी कि विशाल वटवृक्ष के मूल में कुबेर (धन का देवता) का निवास होता है। इस प्रतीकात्मक वाक्य की सत्यता कितनी प्रमाणिक है। मैं इस विषय चर्चा नहीं करना चाहता परन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि घर-परिवार के बुजुर्ग ही वह वटवृक्ष है जिनके चरणों में सुख-समृद्धि का निवास है। वयोवृद्ध हमारे लिए चलता-फिरता शिक्षालय है। युवा अगर परिवार का स्तंभ है तो वृद्ध परिवार के ऊपर छत्र के समान प्रतिष्ठित होते हैं।

गुरुदेव ने अपने जीवन में संघ के बुजुर्ग संतों की तन-मन से सेवा-सुश्रूषा की है। गुरुदेव ने दीक्षा के उपरांत बाबा श्री जग्गुमल जी, पूज्य श्री बनवारीलाल जी महाराज, पूज्य श्री फकीरचंद जी महाराज, पूज्य श्री अमीचंद जी महाराज, पूज्य श्री नेकचंद जी महाराज आदि संतों की सेवा कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

जब-जब बाल दिवस एवं युवा दिवस का कार्यक्रम आयोजित होता, तो गुरुदेव प्रवचन में ही बच्चों व युवाओं द्वारा बुजुर्गों के चरण स्पर्श करवाते। गुरुदेव की यह स्पष्ट धारणा थी कि समाज में युवा शक्ति का विकास हो परन्तु वृद्धों को अपमानित या इग्नोर करके नहीं। गुरुदेव फरमाते थे कि सच्चा नवयुवक वही है जो अपने अभिभावकों व बुजुर्गों का हृदय से सम्मान करता है। उनकी आज्ञा शिरोधार्य करता है। एक बार गुरुदेव ने एक बालक को प्रवचन सभा में खड़े होकर बोलने को कहा कि बोलों अपने बुजुर्गों की सेवा करना मेरे जीवन का परम लक्ष्य है। जब उस बालक ने यह वक्तव्य दिया तो घर के बुजुर्गों ने भावुक होकर बच्चे को बहुत आशीर्वाद दिया। इस दृश्य को देखकर मैं भी भाव-विभोर हो गया। गुरुदेव कितने दीर्घदृष्टि थे। ऐसे छोटे-छोटे प्रसंगों के द्वारा समाज में क्राँति घटित कर रहे थे। संस्कारों का बीज वपन कर रहे थे। अगर उन्हें समाज में कहीं कुरीतियाँ दृष्टिगोचर होती तो वे उनका डटकर विरोध करते थे।

गुरुदेव एक घर पर किसी को दर्शन देने के लिए गए। मैं भी गुरुदेव के साथ था। वहाँ पुत्र आराम से कुर्सी पर बैठा था और बुजुर्ग नीचे जमीन पर बैठा था। यह दृश्य गुरुदेव को समीचीन नहीं लगा, गुरुदेव ने तत्काल टोकते हुए कहा बाबू! घर में पिता से ऊंचे आसन पर बैठना, अच्छे खानदान के संस्कार नहीं है। तुम्हारा व्यवहार ऐसा होना चाहिए जिससे परिवार के बड़ों का गौरव बढ़े।

गुरुदेव के जीवन में कई चातुर्मास बड़े संतों की निश्राय में हुए। यद्यपि स्वयं गुरुदेव का आकर्षण इतना प्रभावशाली था कि प्रत्येक स्थान पर भक्तों का सैलाब उमड़ पड़ता था। परन्तु गुरुदेव के मुख से सदैव यही बात निकलती। इस क्षेत्र में जो भी धर्म का रंग जमा है यह सब बड़े संतों की व पूज्य गुरुदेव की कृपा का फल है। सन् 1968 में पूज्य फूलचंद जी महाराज के साथ जयपुर में एवं पूज्य श्री अमीचंद जी महाराज के साथ 1949 जींद में चातुर्मास किया। गुरुदेव प्रवचन में भी यही फरमाते कि इन्हीं महापुरुषों की कृपा से यह बहारें लगी है। अपनी

सफलता का श्रेय बड़ों के चरणों में समर्पित कर देते थे। गुरुदेव ने आजीवन बड़ों का सम्मान किया और करवाया भी। अपने शिष्यों को एक ही प्रेरणा देते कि मेरे गुरु भाईयों का सम्मान गुरु तुल्य ही करते रहना। गुरुदेव संघ के संतों के साथ-साथ वयोवृद्ध श्रावकों को भी सम्मान देते थे।

सन् 1983 में बरनाला चातुर्मास में होशियारपुर से लाला मगनलाल जी व लाला शम्भूनाथ जी दो वयोवृद्ध श्रावक गुरुदेव के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। गुरुदेव ने मेरा परिचय करवाते हुए कहा- ये हमारे संघ के प्रमुख श्रावक है। उन श्रावकों की संबोधित करते हुए बोले-बाऊ जी! ये हमारे नवदीक्षित अरुण मुनि जी है।

आप देखिए! इतने महान संत होकर भी गुरुदेव श्रावकों को बाऊ जी कह कर संबोधित करते थे। जालंधर से केसरदास जी, लुधियाना से रामप्रसाद जी, जींद से पारसदास जी, रिण्ढाणा व गुड़गाँव से जो श्रावक आते गुरुदेव सभी वृद्ध श्रावकों को बाऊ जी शब्द का प्रिय संबोधन करते थे। अगर कोई वयोवृद्ध श्रावक स्थानक की सीढ़ियां नहीं चढ़ पाते तो गुरुदेव घुटनों में दर्द होने के बावजूद स्वयं दर्शन देने नीचे पधार जाते। यह गुरुदेव का बड़प्पन था।

**ऐसे महान् गुरु को कोटि-कोटि नमनः।**

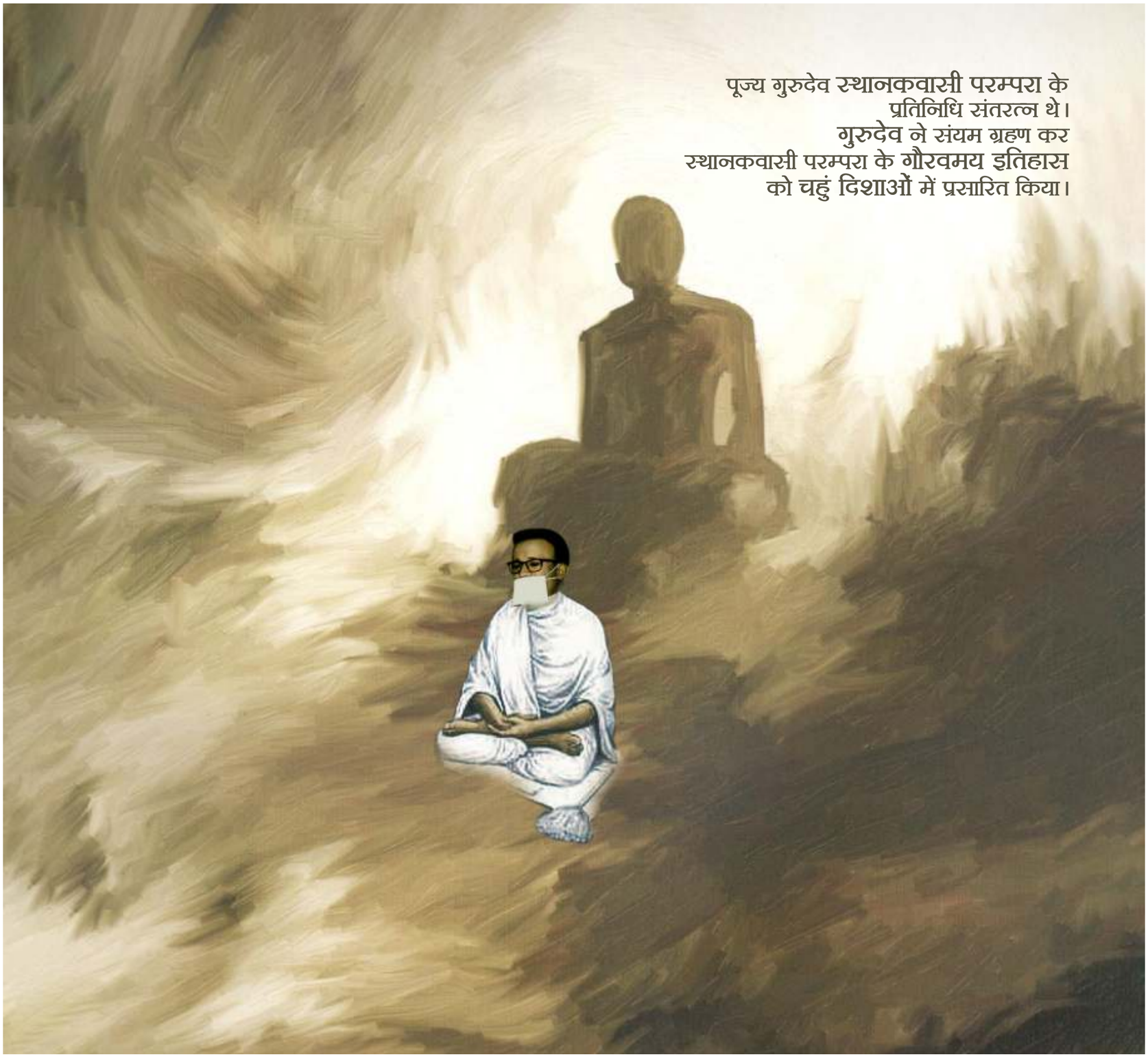
पूज्य गुरुदेव स्थानकवासी परम्परा के
प्रतिनिधि संतरत्न थे।
गुरुदेव ने संयम ग्रहण कर
स्थानकवासी परम्परा के गौरवमय इतिहास
को चहुं दिशाओं में प्रसारित किया।

# 78 | स्थानकवासी परम्परा और गुरुदेव

**जैन** धर्म एक जीवित धर्म है। जैन स्थानकवासी परंपरा क्रियाकांड एवं साकार परमात्मा का समर्थन नहीं करती। स्थानकवासी परम्परा अवतारवाद में विश्वास नहीं रखती। कोई भी भव्य आत्मा कर्म मल से मुक्त होकर परम अवस्था (परमात्मा) को प्राप्त करने में समर्थ है। स्थानकवासी परम्परा निराकार की उपासक है। अहिंसा, संयम व अनेकांतवाद के महामार्ग पर अग्रसर होकर आत्मगुणों को प्रकट करना ही साधना का मुख्य ध्येय है। संयमित एवं त्यागप्रधान जीवन शैली ही स्थानकवासी परम्परा का आधार स्तंभ है।



पूज्य गुरुदेव स्थानकवासी परम्परा के प्रतिनिधि संतरत्न थे। गुरुदेव ने संयम ग्रहण कर स्थानकवासी परम्परा के गौरवमय इतिहास को चहुं दिशाओं में प्रसारित किया। गुरुदेव ने अपने उपदेशों, आचरण व व्यवहार द्वारा स्थानकवासी परम्परा को पुष्ट किया। गुरुदेव का प्रत्येक विजन व डिसीजन स्थानकवासी परम्परा के विकास का माईलस्टोन बना। गुरुदेव ने अपनी विलक्षण प्रतिभा, गमन व शिक्षण के माध्यम से इस परम्परा को नवीन आयाम दिया।

गुरुदेव का जन्म स्थानकवासी मान्यताओं की अनुमोदना करने वाले समृद्ध कुल में हुआ। जिस परिवार पर स्थानकवासी संतों की अपार कृपा थी। उसी परिवार में जन्म लेकर स्थानकवासी परम्परा का कर्णधार बनने का सौभाग्य गुरुदेव को प्राप्त हुआ। गुरुदेव ने आजीवन कभी अनजानते हुए भी ऐसा कार्य नहीं किया जिससे इस परम्परा के गौरव का ह्रास हुआ हो।

गुरुदेव अपने प्रवचनों में सदैव यही फरमाते कि यदि मेरे पास आपको देने योग्य कोई सर्वोत्तम वस्तु है तो वह है समायिक। मेरी भावना है कि प्रत्येक श्रावक स्थानक में मुख वस्त्रिका धारण कर सामायिक की आराधना करें। किसी श्रावक को सामायिक की वेशभूषा में देखकर गुरुदेव की आत्मा खिल उठती थी। आज उत्तर भारत में यदि सामायिक का प्रचलन है तो इसमें गुरुदेव का सबसे उत्कृष्ट योगदान रहा है।

सन् 1993 में जब हम मुनित्रय राजस्थान आदि कई प्रदेशों का विचरण कर पुनः गुरुदेव के चरणों में आए तो मैंने गुरुदेवश्री को निवेदन किया कि गुरुदेव! हमें भी पंजाब में वीर लोकाशाह जयंति बनानी चाहिए। मेरी प्रार्थना सुनकर गुरुदेव प्रसन्न हुए और उसी वर्ष वीर लोकाशाह दिवस मनया गया। जब गुरुदेव वीर लोकाशाह के क्रांतिकारी जीवन का बखान कर रहे थे तो ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे वर्तमान युग में वीर लोकाशाह ने गुरुदेव के रूप में पंजाब परम्परा में अवतार लिया हो।

गुरुदेव ने कभी भी जैन-अजैन तीर्थस्थलों पर जाने की प्रेरणा नहीं दी। गुरुदेव की मान्यता थी कि भगवान द्वारा स्थापित चतुर्विध संघ ही सबसे महान तीर्थ है। '**तीर्थभूता हि साधवः।**' वर्तमान में संयमी संत ही तीर्थ स्वरूप है। गुरुदेव स्थानकवासी परम्परा के नियम उपनियमों की पालना हेतु प्रतिबद्ध थे।

सन् 1998 में मैंने पटियाला चातुर्मास में स्थानकवासी नियमों एवं

मान्यताओं को प्रकाशित करने वाला एक बैनर लगवाया। जब गुरुदेव अंबाला चातुर्मास के पश्चात् पटियाला स्थानक में पधारे। बैनर पर लिखे स्थानकवासी सिद्धांतों को पढ़कर गुरुदेव का मन बाग-बाग हो गया। उन्होंने मुझे प्रोत्साहित करते हुए फरमाया। भविष्य में भी इसी प्रकार आडंबरहीन एवं भगवान की मूल परम्परा के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार करते रहना।

गुरुदेव निराकार के परम उपासक थे। गुरुदेव ने अपने जीवनकाल में ही संतों को निषेध किया था कि मेरे नाम से कभी समाधि या स्मारक का निर्माण मत करवाना। गुरुदेव स्थानकवासी परम्परा के संरक्षक थे। परम्परा के सिद्धांतों के प्रति उनके मन में दृढ़ आस्था थी। उनके शिष्यों ने भी गुरुदेव की द्रव्य समाधि बनाने का प्रयत्न नहीं किया।

मयाराम गण में सदैव संयम को ही सर्वोपरि स्थान दिया गया। समाधि स्थल का निर्माण करना स्थानकवासी परम्परा के साथ अन्याय है। जंडियालागुरु में श्री सुमनमुनि जी द्वारा निर्मित पूज्य गुरुदेव श्री मदनलाल जी महाराज की समाधि को गुरुदेव कभी देखने नहीं गए।

समाधि निर्माण आगम मर्यादाओं का उल्लंघन है। गुरुदेव ने कभी मूर्ति पूजा का समर्थन नहीं किया। गुरुदेव की यही मनोभावना थी कि चतुर्विध संघ स्थानकवासी परम्परा के सिद्धांतों की सुरक्षा को प्राथमिकता दे। सामायिक साधना के द्वारा अध्यात्म के पथ पर विकास करें।

**ऐसे दृढ़ संयमी गुरुदेव को शतशः नमन!**

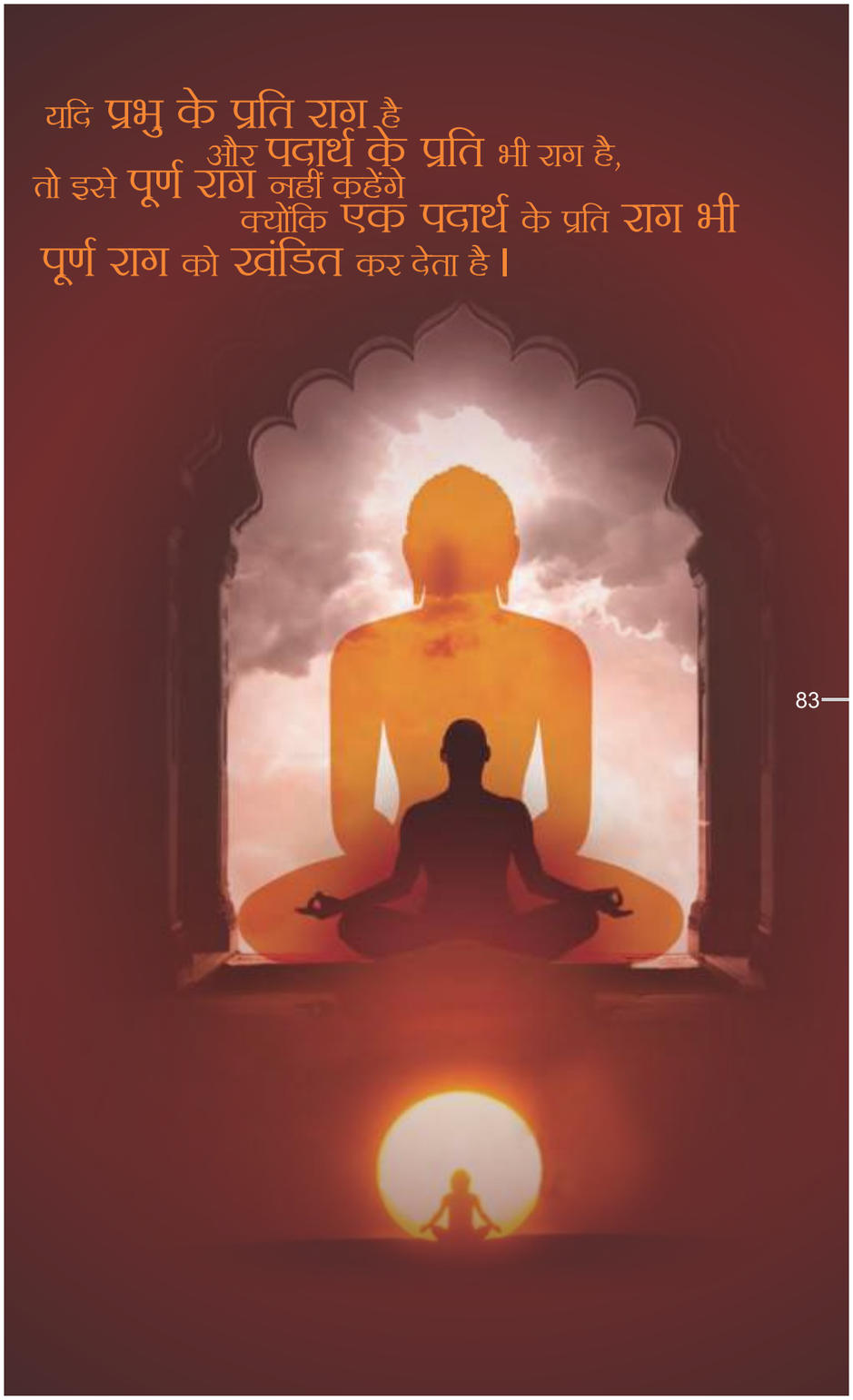

गुरुदेव ने गुरु परंम्परा की आज्ञा को ध्यान में रखते हुए संयम की सुरक्षा व प्राचीन गरिमा को बनाए रखने के लिए कुछ समाजोपयोगी नवीन गतिविधियों का संचालन किया।

# 79 क्रांतिकारी कदम और गुरुदेव

## ( गुरुदेव द्वारा नव शुरुआती कार्य )

**एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है-**

**लीको लीक गाड़ी चले, लीक ही चले कपूत।**
**यो तीनों लीके न चले, शायर, सिंह, सपूत।।**

**संसार** में अधिकांशत: लोग लकीर के फकीर होते हैं। बिना सोचे-समझे जड़ परंपराओं का निर्वहन करते रहते हैं। युगानुरूप समाज में नवीन सोच व समझ का निर्माण करने वाला व्यक्तित्व ही युगपुरुष कहलाता है। तीर्थंकर भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार परिस्थितियों को देखते हुए धर्म क्रियाओं के नियम, उपनियमों में परिवर्तन करते हैं। इस परिवर्तन से अभिप्राय यह नहीं कि वे प्राचीन परंपराओं के विरोधी है। अपितु वर्तमान काल में मानव जाति किस प्रकार निश्रेयस के पथ पर अग्रसर हो सके। इस दृष्टि से परिवर्तन आवश्यक भी है। जिससे अनादि कालीन मूल सिद्धांतों की रक्षा हो सके।

गुरुदेव एक आविष्कारिक सोच के स्वामी थे। उन्होंने भी संयम की सुरक्षा व प्राचीन गरिमा को बनाए रखने के लिए कुछ समाजोपयोगी नवीन गतिविधियों का संचालन किया। जिससे श्रावक वर्ग में ज्ञान व अध्यात्म के प्रति रुचि जागृत हो।

गुरुदेव देश काल की परिस्थितियों के प्रति सजग रहने वाले साधक थे। अपने पूर्व गुरु-परंपरा की आज्ञा को ध्यान में रखकर ही वे किसी कार्य को क्रियान्वित करते थे। गुरुदेव ने अपने युग में धर्म के क्षेत्र में ऐसे कई नये आयाम प्रारंभ किए। जिससे गुरु आज्ञा एवं संयम की मर्यादा का उल्लंघन न हो। गुरुदेव द्वारा संचालित किए गए कई नूतन कार्यक्रम, ज्ञान प्रचारक प्रणालियां व नवीन पद्धतियां आज भी अपटुडेट हैं।

दीक्षा ग्रहण करने के उपरांत गुरुदेव ने कई नवीन शिक्षण पद्धतियों का आविष्कार किया। जैसे तत्त्वज्ञान की सामग्री का संकलन, प्रकाशन, फिर शिक्षण, पेपर, पारितोषिक व प्रमाण-पत्र ये मयाराम गण में सर्वथा एक नये अध्याय का प्रारंभ था।

अनाग्रह एवं विनयशीलता गुरुदेव के जीवन की विशेषता थी। अगर उन्हें कोई कार्य उचित एवं युगानुरूप प्रतीत होता, परंतु यदि उस कार्य में वयोवृद्धों एवं गुरुदेव की सहमति नहीं है तो गुरुदेव विनयपूर्वक उस आग्रह का त्याग कर देते। साथ ही साथ अपनी त्रुटि के लिए क्षमायाचना भी कर लेते। गुरुदेव स्वयं इतने अनुशासित थे कि उन्होंने कभी मर्यादा की सीमाओं से बाहर निकलकर नहीं सोचा।

सन् 1975 में भगवान महावीर का 2600वां शताब्दी वर्ष गतिमान था। गुरुदेव ने उस वर्ष अपने संघ में एक स्थायी स्तंभ स्थापित किया। दीपावली के दिन मध्याह्न में समाज की बहनों एवं रात्रि में समाज के भाईयों के लिए जाप, शास्त्र-वाचन एवं मांगलिक की परंपरा का विधान किया। उस अवसर पर त्याग प्रत्याख्यान का महत्त्व भी बताया। यह उज्ज्वल परंपरा आज भी जीवित है।

शताब्दी वर्ष की संपूर्ति पर गुरुदेव ने एक सभा एवं विद्वत गोष्ठी का आयोजन करवाया। जिसमें विद्वानों ने भगवान महावीर के व्यक्तित्व

यदि **द्रष्टा दर्शन** में खो गया
तो वह **मोक्षमार्ग**
पर चल रहा है और
यदि वह **दृष्य** में खोकर
**राग-द्वेष** में चला गया
तो यह उसका **संसार** है

व कृतित्व का गुणगान किया। उस समय शासन प्रभावना के संदर्भ में यह नवीन शुरुआत थी। संघ में सक्रांति सुनाने की परंपरा का श्री गणेश भी गुरुदेव ने किया था।

आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के प्रथम पारणे के उपलक्ष में आयोजित होने वाला अक्षय तृतीया का कार्यक्रम भी गुरुदेव की सोच का ही परिणाम है। तब से संघ में वर्षीतप के पारणे भव्य रूप से आयोजित किए जाने लगे। इस आयोजन के फलस्वरूप लोगों में भगवान के पारणे की अनुमोदना एवं तप के प्रति आकर्षण में अभूत पूर्व अभिवृद्धि हुई। इस आयोजन से समस्त परिवार व सगे-संबंधियों में वर्षभर तप की नव चेतना का संचार होता है।

संघ में दीक्षार्थ आने वाले वैरागियों का ड्रेस कोड भी गुरुदेव ने निर्धारित किया। यह गुरुदेव की दूरदर्शिता पूर्ण सोच थी कि दीक्षा के पूर्वाभ्यास में वैरागी को सादगीपूर्ण वस्त्र, नंगे पैर व सादे आहार का अभ्यास होगा। तभी वह दृढ़ संयम का पालन कर पाएगा।

दीक्षाओं के अवसर पर साधु परिवार के सदस्यों को अध्यक्ष बनाने की परिपाटी भी गुरुदेव की विशाल सोच की देन है। दीक्षा से दो चार दिन पूर्व वैरागी को घर पर भेजना भी गुरुदेव के दिमाग की उपज थी। जिससे विरक्तात्म के मोह की परीक्षा हो सके। गुरुदेव परीक्षा की कसौटी पर कसकर ही किसी आत्मा को संयम प्रदान करते थे।

गुरुदेव ने व्यसनों पर अंकुश लगाने की दिशा में अनेकों गतिविधियों का आयोजन किया। शाकाहार एवं व्यसनमुक्त समाज का निर्माण गुरुदेव के जीवन का उद्देश्य था।

इस प्रकार गुरुदेव कई नवीन क्राँतियों के जन्मदाता थे। जो आज भी समाज के उत्थान में कार्यरत है। वे क्रांतियां सदैव जयवंत रहेगी।

**ऐसे प्रतिभाशाली गुरुदेव को वंदन!**

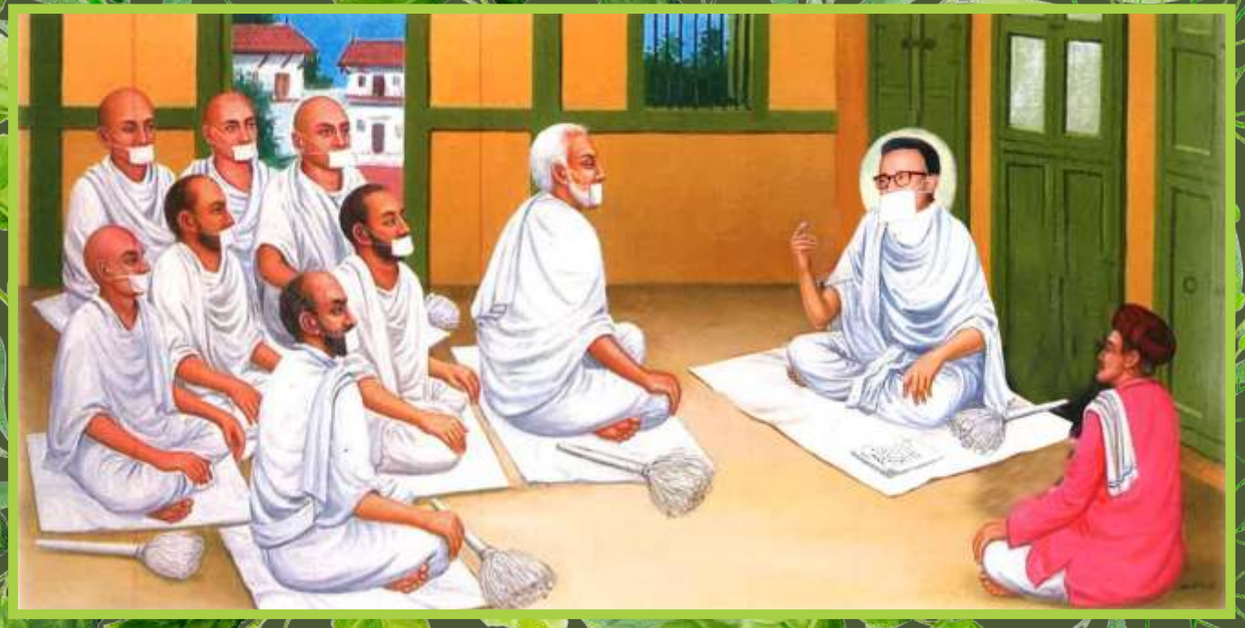

गुरुदेव के प्रत्येक परम्परा के साथ मैत्री संबंध थे।
एक परम्परा का निर्वाह करते हुए अन्य परम्पराओं के प्रति सद्भाव रखना भी
साधक की उदारता व सरलता का परिचायक है।

# 80 | इतर सम्प्रदाय और गुरुदेव

**जिनशासन** रूपी वटवृक्ष से उद्धृत समस्त शाखाएं-प्रशाखाएं वीतरागता की उपासक हैं। कषायों की अल्पता एवं आत्मिक गुणों का विकास ही सबका उद्देश्य है। मोक्ष प्राप्ति ही साधना का एकमात्र उद्देश्य है। इस विषय पर भी समस्त परंपराएं एकमत है। लक्ष्य प्राप्ति एक होने पर भी जिनशासन समय-समय पर काल के प्रभाव से विभाजित होता रहा है।

एक समय था जब भगवान महावीर के युग में जैन शासन एक अखंड संगठन था। विभिन्न विचार धारा के साधक भी अनेकांतवाद के सिद्धांत से अभिमंत्रित होकर एक छत्र शासन में स्नेह के बंधन से बंधकर रहते थे। परन्तु वीर निर्वाण के कुछ समय पश्चात् ही संगठन में मतभेद उभरने लगे। जब मानसिक मतभेद आग्रह का रूप धारण कर लेते हैं तो वह संघ अधिक समय तक संगठित नहीं रह सकता।



जिनशासन में भी इसी प्रकार की विकृतियां उभरने लगी। कुछ साधक जिनकल्प की साधना पद्धति स्थविर कल्पियों पर आरोपित करना चाहते थे। क्योंकि काल के प्रभाव के कारण जिनकल्प की साधना लुप्त प्राय हो रही थी। आचार-व्यवहार को लेकर संघर्ष उत्पन्न होने लगे। दोनों पक्षों के आग्रह के कारण संबंधों की डोर टूट गई। भगवान महावीर के निर्वाण के 600 वर्ष पश्चात् जिनशासन दिगंबर व श्वेताम्बर के रूप में दो खंडों में विभाजित हो गया। सर्वप्रथम दुराग्रह की खाई पड़ी। फिर नियम-उपनियमों को लेकर हुए विवाद ने दोनों पक्षों के मध्य न टूटने वाली दीवार खड़ी कर दी।

पन्द्रहवीं शताब्दी में स्थानकवासी समाज के उद्धारक के रूप में लोकाशाह का जन्म हुआ। वीर लोकाशाह ने शास्त्रों की स्वाध्याय का साहस भरा सराहनीय कार्य किया। उन्होंने देखा कि प्रभु की वाणी में संयम के त्याग-प्रधान स्वरूप का विवेचन है। परन्तु आज साधक निवृति-मार्ग से भटककर प्रवृत्ति मार्ग की ओर बढ़ रहे हैं। वीर लोकाशाह ने जिनशासन के सिद्धांतों की पुर्नस्थापना के लिए महान् क्राँति का बिगुल बजाया। तात्कालिक तथा-कथित मुनियों की सिद्धांतविहीन असंयमित साधना प्रणाली के विरुद्ध बगावत का परचम बुलंद किया। विद्रोह की यह प्रचंड आंधी पूरे भारतवर्ष में फैल गई। जिसके फलस्वरूप वीतराग पद्धति की संयमी, निराकार आराधना के नाम पर स्थानकवासी परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ।

उसके पश्चात् वि. संवत् 1817 में स्थानकवासी संत भीखण जी महाराज ने दया धर्म की मान्यता के सिद्धांत को लेकर स्वयं को स्थानकवासी परम्परा से पृथक् कर लिया। उन्होंने स्वयं को आचार्य घोषित कर तेरापंथ समाज की स्थापना की।

वर्तमान में जैनधर्म में मुख्यत: चार संप्रदाय है जिनमें श्वेताम्बर स्थानकवासी, श्वेताम्बर मंदिरमार्गी, श्वेताम्बर तेरापंथी तथा दिगम्बर के रूप में माना जाता है। इन चारों परंपराओं में सिद्धांत की दृष्टि से मतभेद अल्प है। परन्तु आचार-व्यवहार में महान् अंतर उत्पन्न हो गया

है। यह प्रकृति का शाश्वत नियम है कि कोई भी संगठन कभी न कभी व्यक्तियों के आग्रह या अहंग्रसित बुद्धि के कारण विभाजित हो जाता है। परन्तु एक परम्परा का निर्वाह करते हुए अन्य परम्पराओं के प्रति सद्भाव रखना भी साधक की उदारता व सरलता का परिचायक है।

पूज्य गुरुदेव स्थानकवासी परम्परा के संयमी संत-रत्न थे। स्थानकवासी परम्परा का पालन-पोषण करना उनका उत्तरदायित्व था। परन्तु उनके मन में किसी अन्य परम्परा के प्रति दुराग्रह या घृणा का भाव नहीं था। गुरुदेव का अभिमत था कि प्रत्येक परम्परा में कुछ न कुछ गुण अथवा दोष अवश्य होते हैं। परन्तु किसी भी परम्परा के गुण दर्शन करना व ग्रहण करने के भाव रखना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिए।

गुरुदेव के प्रत्येक परम्परा के साथ मैत्री संबंध थे। सहभाव व सहयोग की भावना थी। गुरुदेव ने अपनी संयम मर्यादा के मध्य रहते हुए सभी परम्पराओं के मुनियों के साथ प्रवचन भी किए।

गुरुदेव अपनी विहार-यात्रा के अंतर्गत अथवा निवेदन पर अन्य परम्पराओं के धर्मस्थलों पर भी विराजमान रहे। जैसे गुरुदेव का दिल्ली में आत्मवल्लभ स्मारक पर भी रुकना हुआ। वहाँ पर गुरुदेव ने जिनवाणी के सिद्धांतों का विवेचन किया। परन्तु कभी किसी परम्परा का खंड़न मंड़न नहीं किया। गुरुदेव ने हांसी में दिगम्बर मंदिर एवं तेरापंथ भवन में रुककर अपनी उदारता का परिचय किया।

सन् 1983 में जब गुरुदेव रामपुराफूल पधारें। तो वहां तेरापंथ समाज के प्रतिनिधि गुरुदेव को तेरापंथ भवन में ठहराने के इच्छुक नहीं थे। परन्तु जब उन्होंने गुरुदेव की महानता व समन्वयवृत्ति की भावना को समझा, तो नतमस्तक होकर तेरापंथ भवन में रूकने की विनती करने लगे।

गुरुदेव की गुणग्राही दृष्टि एवं सभी के प्रति सम्मान के भाव ने उन्हें सर्वजनप्रिय बनाया। गुरुदेव का प्रवास जब 1952 से लेकर 1958 तक दिल्ली चांदनी चौंक में था। वहाँ पर भी गुरुदेव का मूर्तिपूजक समाज के आचार्यों के साथ समागम हुआ। गुरुदेव ने कई मूर्तिपूजक संतों के लोच भी किए। गुरुदेव के मधुर व्यवहार एवं मितभाषिता ने उन्हें जन-जन का हृदयहार बना दिया। गुरुदेव अपने सिद्धांतों के प्रति अड़िग थे। परन्तु कट्टरवाद का एक अंश भी उनके मन में नहीं था।

**ऐसे संप्रदायातीत व्यक्तित्व को कोटिशः वंदन!**

संघशास्ता शासन प्रभावक
पूज्य गुरुदेव
श्री सुदर्शनलाल जी महाराज ने
लोगों को शारीरिक गुलामी
से ही नहीं,
अपितु मानसिक दासत्व से
मुक्त होने की राह दिखाई।

# 81 | तात्कालिक परिस्थितियां और गुरुदेव

**मनुष्य** एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य के स्वभाव एवं विकार निर्माण में तात्कालिक परिस्थितियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। गुरुदेव के जन्म के समय देशभर में स्वतंत्रता के संघर्ष की लहर थी। एक ओर साम्राज्य की नींव हिला दी थी तो दूसरी ओर महात्मा गांधी के अहिंसा महायज्ञ को मिल रहे देशव्यापी समर्थन ने अंग्रेजों के पैरों तले जमीन खींच ली। देश भर में अहिंसा के लिए हजारों लोगों ने अपनी कुर्बानियां दी। जहाँ अत्याचार दमन की नीतियों के विरोध में आजादी के परवाने जन्म ले रहे थे वहीं आत्मा को अनन्तकाल से कर्मों की परम्परा से मुक्त करवाने व अज्ञानाधंकार को नष्ट करने, रोहतक की एतिहासिक धरा पर एक अध्यात्म का सूर्योदय हुआ।

उस महापुरुष ने लोगों को शारीरिक गुलामी से ही नहीं, अपितु मानसिक दासत्व से मुक्त होने की राह दिखाई। वे महापुरुष थे हमारे संघशास्ता शासन प्रभावक पूज्य गुरुदेव श्री सुदर्शनलाल जी महाराज जिन्होंने जैन स्थानकवासी परम्परा में दीक्षित होकर अपने आध्यात्मिक जीवन का शुभारंभ किया।

उस समय स्थानकवासी समाज व संघों में भी परिवर्तन का दौर था। संपूर्ण भारतवर्ष के हिन्दी भाषी स्थानकवासी परम्परा को एक सूत्र में पिरोने के लिए संत एवं श्रावक वर्ग प्रयासरत था। पंजाब प्रांत के आचार्य पूज्य श्री कांशीराम जी महाराज परिस्थितिवश उस समय पंजाब से बाहर विचरण कर रहे थे। क्योंकि राजस्थान के अजमेर शहर में भारतवर्ष के स्थानकवासी संतों का सम्मेलन आयोजित हुआ था। अब आगे जैन समाज को संगठित करने का प्रारूप तैयार हो रहा था।

पंजाब परंपरा के संघों में संयम के प्रति दृढ़ता का प्रभाव था। परन्तु मयाराम गण के संत आगमानुसार समाचारी पालन में विशेष रूप से विख्यात थे। उस अवसर पर मयाराम गण के प्रमुख गणावच्छेक श्री बनवारीलाल जी महाराज के नेतृत्व में संघ सामूहिक रूप से उत्तरोत्तर विकास कर रहा था।

उस अवसर पर पूज्य कांशीराम जी महाराज, पूज्य भागमल जी महाराज, पूज्य उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज, पूज्य रघुवर दयाल जी महाराज, पूज्य श्री योगीराज रामजीलाल जी महाराज, पूज्य श्रमण श्री फूलचंद जी महाराज, कविरत्न पूज्य श्री अमरचंद जी महाराज, पूज्य श्री बनवारी लाल जी महाराज, पूज्य श्री प्रेमचंद जी महाराज आदि महापुरुष पंजाब परंपरा के कर्णधार संतरत्न थे। पंजाब में समृद्ध साध्वी वर्ग की उज्ज्वल परम्परा भी विकसित थी।

महासाध्वी श्री राजीमति जी महाराज विशेष रूप में लुधियाना व मूनक के साथ-साथ संपूर्ण उत्तर भारत में श्रद्धा का केन्द्र बिंदू थी। लुधियाना शहर में पूज्य उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज के संतों ने वर्षों तक प्रवास किया। पूज्य मयाराम जी महाराज के संघ के मुनियों का मूनक में स्थिरवास रहा। महासाध्वी श्री राजमति जी महाराज जालंधर में विराजमान रही।

तात्कालिक परिस्थितियों के अनुसार क्षेत्रफल की दृष्टि से पंजाब की स्थानकवासी परम्परा का संपूर्ण भारत में अग्रणीय स्थान था। पूरा पंजाब पूज्य आचार्य श्री काशीराम जी महाराज के नेतृत्व में एकजुट होकर विकास कर रहा था। परम्परावाद व कट्टरवाद की दीवारें प्राय: गिर चुकी थी।

उस युग में पूज्य श्री मयाराम गण के संतों का बाहुल्य था। जो अधिकांशत: हरियाणा के क्षेत्रों में धर्म श्रद्धा का विकास कर रहे थे। वाचस्पति गुरुदेव श्री मदनलालजी महाराज की पंजाब पर विशेष कृपा थी।

पंजाब में उस समय पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज, पूज्य श्री रूपचंद जी महाराज, पूज्य श्री जीवनराम जी महाराज एवं पूज्य मनोहर मुनि जी महाराज की परम्परा के संतों का निरंतर विचरण होता था। समस्त परम्पराओं में सौहार्द का वातावरण था। परस्पर सम्मान की भावना थी। यही कारण था कि गुरुदेव के संगरूर में हुए दीक्षा समारोह में सभी संतों का पदार्पण हुआ था।

उस मौके श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा से सैद्धान्तिक मर्यादाओं को लेकर मतभेद अवश्य थे परन्तु परस्पर आग्रह, तर्क-वितर्क का वितण्डावाद नहीं था। वह युग टेक्नोलॉजी के विकास का प्रारंभिक था। ध्वनि विस्तार यंत्रों का आविष्कार हो चुका था। अत: कही कहीं माईक पर बोलने के मंद-मंद स्वर समाज में उठने लगे थे। परन्तु सभी परम्पराओं में संयम के प्रति जागृतियां थी।

संक्षिप्त में गुरुदेव का युग संयम व अनुशासन का स्वर्णिम युग था। पंजाब के श्रावक संघ संगठित थे। यद्यपि कुछ शुद्ध स्थानकवासी परिवार मूर्तिपूजक परम्परा के प्रभाव में आकर श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परिवार बन गए। फिर भी उत्तर भारत में लगभग 75 प्रतिशत परिवार स्थानकवासी परम्परा व सिद्धांतों पर स्थिर थे। इस प्रकार पंजाब परंपरा का इतिहास सदैव जयंवत रहा है। और भविष्य में भी रहेगा।

**ऐसे संयमी पुरुष को बार-बार नमन!**

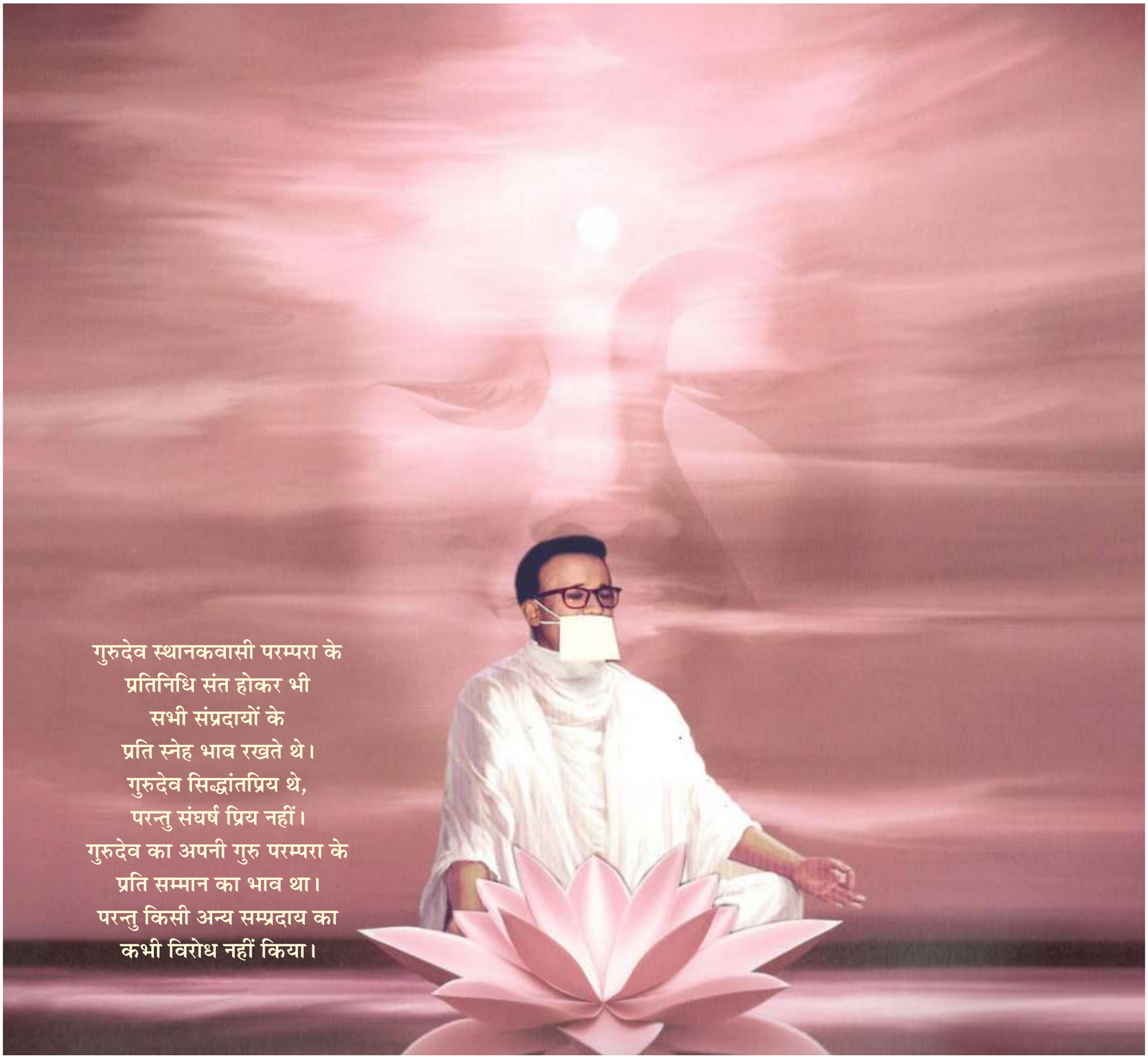
गुरुदेव स्थानकवासी परम्परा के
प्रतिनिधि संत होकर भी
सभी संप्रदायों के
प्रति स्नेह भाव रखते थे।
गुरुदेव सिद्धांतप्रिय थे,
परन्तु संघर्ष प्रिय नहीं।
गुरुदेव का अपनी गुरु परम्परा के
प्रति सम्मान का भाव था।
परन्तु किसी अन्य सम्प्रदाय का
कभी विरोध नहीं किया।

# 82 | सम्प्रदायवाद और गुरुदेव

**संप्रदाय** धर्म को पोषण एवं संरक्षण देने वाली संस्था विशेष है परन्तु धर्म नहीं है। एक ही धर्म को विभिन्न परम्परा या विचारधारा से मानने वाले वर्ग को संप्रदाय कहा जाता है। संप्रदाय किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा निर्मित नहीं किया जाता। जैसे अग्नि का धर्म उष्णता है। जल का धर्म शीतलता है। वैसे ही मनुष्य का धर्म आनंद की खोज है। परन्तु प्रारंभ में प्रत्येक साधक को अंतर सम्प्रदाय की शरण ग्रहण करनी पड़ती है।

पूज्य गुरुदेव भी लौंकाशाह परम्परा से संबद्ध स्थानकवासी परम्परा में दीक्षित हुए। आचार्य अमर सिंह की सम्प्रदाय के मुनि बने। यह गुरुदेव का व्यवहारिक परिचय था। परन्तु गुरुदेव स्थानकवासी परम्परा के प्रतिनिधि संत होकर भी सभी संप्रदायों के प्रति स्नेह भाव रखते थे। गुरुदेव सिद्धांतप्रिय थे, परन्तु संघर्ष प्रिय नहीं। गुरुदेव का अपनी गुरु परम्परा के प्रति सम्मान का भाव था। परन्तु किसी अन्य सम्प्रदाय का कभी विरोध नहीं किया।



गुरुदेव के इसी अलौकिक गुण के कारण प्रत्येक वर्ग व सम्प्रदाय के लोग गुरुदेव की भगवान की भांति पूजा करते थे। ऐसे युगपुरुष के गुण सदैव अपटूडेट रहेंगे। मेरे नेत्र धन्य हो गए, जिन्होंने ऐसे गुरुदेव के चरणों का स्पर्श किया। इन हाथों से गुरुदेव को आहार करवाया। पग-पग विहार किया तथा रात्रि में भी उनके बराबर आसन बिछाकर शयन का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

गुरुदेव फरमाते थे कि सम्प्रदाय से जुड़ना प्रत्येक साधक के लिए अनिवार्य है। परन्तु सम्प्रदाय में रहकर कट्टर नहीं, पवित्र बनो। सम्प्रदायवादी नहीं, संयमी बनो। संप्रदाय का आलंबन हमें धर्म व अध्यात्म में प्रगति के लिए प्राप्त हुआ है न कि नफरत के बीज बोने के लिए। अगर गुरुदेव संप्रदायवाद की संकीर्ण मर्यादा में रहकर सोचते तो आज उत्तर भारत में स्थानकवासी समाज का परिदृश्य कुछ और ही होता। श्रावक वर्ग दो टुकड़ों में बंट चुका होता। स्थान-स्थान पर एस.एस. जैन सभा नहीं, बल्कि सम्प्रदाय के नाम से एक शहर में कई स्थानक होती हैं पर गुरुदेव संयम के साथ-साथ संगठन प्रिय थे।

गुरुदेव ने उत्तर भारत के क्षेत्रों को मध्य प्रदेश व राजस्थान की भांति संप्रदाय का गढ़ नहीं बनने दिया। धर्म की सुंदर वादियों में कलह-क्लेश की आंधियां नहीं चलने दीं। गुरुदेव सरीखा असंप्रदायिक व्यक्तित्व मिलना दुर्लभ है।

संप्रदाय का कार्य समाज को धर्म के साथ जोड़ने का है। परन्तु सम्प्रदायवादी विघटनकारी बन जाता है। कुछ संप्रदाय मदांध साधक लोगों को तोड़ने का कार्य करते हैं। अगर गुरुदेव ने ऐसा कार्य किया होता तो आज उत्तर भारत में जैन धर्म सम्प्रदायवाद की घृणा से भर जाता। बाहर के संत उत्तर भारत में कैसे विचरण करते?

गुरुदेव की उदार वृत्ति एवं समन्वयात्मक मन: स्थिति के कारण ही आज उत्तर भारत में जन मानस संयम के प्रति आस्थावान है। यहां मैत्री

भाव का बोलबाला है। सभी साधकों के प्रति विनय का भाव है।

सन् 1986 में गुरुदेव का हांसी में पदार्पण हुआ। वहां स्थानकवासी, तेरापंथ, दिगम्बर व सनातनी सभी सम्प्रदाय के हजारों लोग प्रवचन में आते। गुरुदेव सभी की विनती को सम्मान देते हुए उनके धर्मस्थलों पर भी गए। प्रवचन इत्यादि का आयोजन हुआ। गुरुदेव ने अपने मत का मंडन तो किया, परन्तु किसी दूसरे मत का जरा भी खंडन नहीं किया।

गुरुदेव अपने प्रवचनों में सभी संप्रदाय के श्रावकों को आत्मोन्नति के मार्ग की शिक्षा देते। गुरुदेव ने किसी भी स्थान पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी भी मत का विरोध नहीं किया। सभी आगन्तुक महानुभाव गुरुदेव की वाणी श्रवण कर गद्‌गद् भाव से यही कहते नजर आए कि संत हो तो सुदर्शन मुनि जैसे। अगर ये हांसी में कुछ दिन रूक जाएं तो यहाँ सभी परम्पराएं एक हो जाए। गुरुदेव का व्यक्तित्व ही इतना उदार था कि गुरुदेव ने जन-जन को जोड़ने का कार्य किया न कि तोड़ने का।

एक दिन कुछ तेरापंथी भाइयों ने गुरुदेव के चरणों में आकर निवेदन किया कि हमें गुरु धारणा दीजिए। परन्तु गुरुदेव ने स्पष्ट इंकार करते हुए फरमाया कि जिस परम्परा में आप हैं, वही रहकर आत्म कल्याण के पथ पर आगे बढ़ें। मेरा कार्य समाज को तोड़ने का नहीं है, मैं तो सबके भीतर मुक्ति की प्यास जागृत करना चाहता हूं।

गुरुदेव ने कभी यह आग्रह नहीं किया कि मेरी परम्परा ही सर्वश्रेष्ठ है। उनका दृष्टिकोण अनेकांतवाद से अभिमंत्रित था। मेरा मार्ग सत्य है तो किसी दृष्टि से दूसरे को मार्ग भी सत्य हो सकता है।

गुरुदेव का मंतव्य था कि किसी भी परम्परा, संत या श्रावकवर्ग में कितना ही विचार भेद क्यों न हो परन्तु फिर भी किसी समाज के संगठन को तोड़ना एक सामाजिक अपराध है। भले ही आप कितनी ही सामायिक, संवर या प्रतिक्रमण कर रहे हों। यदि आप समाज को विभाजित करने का कार्य कर रहे हैं, तो आप वीतराग देव के अनुयायी नहीं बन सकते। महावीर का शासन आपको प्राप्त नहीं हो सकता।

वाचस्पति गुरुदेव विचार भेद के कारण श्रमण-संघ से पृथक हुए, अपनी शिष्य परम्परा में संघनायक भी बने। परन्तु कभी समाज में सम्प्रदायवाद फैलाने का घृणित कार्य नहीं किया। समाज को संयमित, संगठित व संस्कारित रखना ही गुरुदेव के जीवन का लक्ष्य था। गुरुदेव यदि महत्वाकांक्षी होते तो उत्तर भारत आज दो टुकड़ों में विभाजित हो जाता।

सन् 1989 में जब हम तीन मुनि राजस्थान की यात्रा हेतु प्रस्थान करने लगे तो गुरुदेव ने हमें निर्देश दिए कि आप वहां पर प्रत्येक संयमी परम्परा का सम्मान व सत्कार करें। उनकी कृपा लें। गुरुदेव की शिक्षाओं पर हमने लगभग पूरे भारत की संत परम्पराओं के साथ प्रवचन किए। सौहार्दपूर्ण मेल-मिलाप किया। यह सब गुरुदेव की उदार वृत्ति का ही परिणाम था।

धन्य हैं ऐसे महान व्यक्तित्व के धनी गुरुदेव, जिन्होंने स्वार्थ एवं सम्प्रदायवाद से ऊपर उठकर जिनशासन एवं मानव-कल्याण को प्राथमिकता दी। वर्षों पश्चात ही ऐसी विरल विभूति इस धरातल पर जन्म लेती है। जिनका सान्निध्य प्राप्त कर संत व समाज गौरवान्वित हो जाती है।

**ऐसे असंप्रदायिक व सुलझे हुए व्यक्तित्व को कोटि-कोटि नमन।**

भारतवर्ष में
**हरियाणा** के स्थानकवासी समाज को
विशेष रुप से प्रतिष्ठित करने वाले
**गुरुदेव** ही थे।

# 83 | हरियाणा और गुरुदेव

**भारतीय** संस्कृति के संस्कारों से जुड़ा हरियाणा एक अत्यंत प्राचीन क्षेत्र है। प्राचीनकाल में यह क्षेत्र ब्रह्मवर्त और आर्यवर्त नाम से भी विख्यात था। हरियाणा शब्द हरित खाद्य आपूर्ति और वनस्पति की बहुतायत का भी सूचक है। हरियाणा के संबंध में एक प्रचलित कहावत है 'देशों में देश हरियाणा, जड़े दुध दही का खाना।'

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखे तो हरियाणा और उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक वातावरण में एकरूपता रही है। स्वतंत्रता की प्रथम लड़ाई में हरियाणा की अहम् भूमिका रही है। उसके पश्चात् राजनीतिक दंड स्वरूप ब्रिटिश शासकों ने इसे पंजाब के साथ जोड़ दिया और इस क्षेत्र को विकास के विषय में भी कोई महत्त्व नहीं दिया गया। अत: यह क्षेत्र पिछड़ा हुआ व असभ्य क्षेत्र माना जाने लगा। 1966 में इस क्षेत्र को पुन: राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ। यहाँ के निवासी सरल, सादगी पसंद, व शाकाहारी थे। यह क्षेत्र राजनीतिक विकास के साथ-साथ धार्मिक क्षेत्र में भी पिछड़ा हुआ था। जैन संतों का यहाँ विचरण नगण्य था। संतों के दर्शन भी दुर्लभ होते थे। पूरे हरियाणा में पाँच या सात संत ही विचरण करते थे। पूज्य कन्हीराम जी महाराज, पूज्य जीवनराम जी महाराज, पूज्य श्री गंगाराम जी महाराज एवं पूज्य श्री रूपचंद जी महाराज आदि संत ही यहाँ विचरते थे। लगभग दो वर्ष पश्चात् किसी क्षेत्र को संत दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता था। किसी-किसी क्षेत्र में जैन श्रावक शिव मंदिर में भी जाने लगे थे।

सर्वप्रथम हरियाणा के क्षेत्रों को विशेष रूप से पूज्य मयाराम जी महाराज ने संभाला। यह हरियाणा का सौभाग्य था कि इस क्षेत्र को पूज्य श्री मयाराम जी महाराज जैसे संत की कृपा प्राप्त हुई। उस समय अधिकतर लोग गाँव में रहते थे। आर्थिक स्थिति भी मध्यम थी। पूज्य गुरुदेव मयाराम जी महाराज ने गाँव-गाँव विचरण कर लोगों में जैनत्व की ज्योति जागृत की। पूज्य गुरुदेव श्री मयाराम जी महाराज के सहयोग से तथा पारिवारिक संतों ने हरियाणा को एक नवीन रूप दिया। लोगों में धर्म जागृति का शंखनाद किया। इस परम्परा में पूज्य जवाहर लाल जी महाराज, पूज्य छोटेलाल जी महाराज, पूज्य सुखीराम जी महाराज, पूज्य श्री जड़ावचंद जी महाराज, पूज्य श्री राम जी लाल जी महाराज, पूज्य श्री नाथूलाल जी महाराज इत्यादि संत निरन्तर गाँव-गाँव विचरण करते हुए इस क्षेत्रों में धर्म संस्कारों का जागरण करने लगे।

धीरे-धीरे लोग गांव से बाहर निकल कर शहरों में आने लगे। जब पूज्य गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी महाराज का युग आया उस समय लोग शहरों व मंडियों से निकलकर राजधानी दिल्ली में आकर व्यापार करने लगे और वहीं अपने निवास स्थान भी बना लिए। उस अवसर पर पूज्य गुरुदेव ने हरियाणा की मंड़ियों व शहरों में चातुर्मास कर सभी क्षेत्रों का नवनिर्माण किया। सभी स्थानों पर जैन-स्थानकों का कार्य प्रारंभ हुआ। गुरुदेव ने एस. एस. जैन सभा के संगठन बनाकर हरियाणा का कायाकल्प कर दिया। यह हरियाणा में स्थानकवासी परम्परा का नया स्वरूप था। स्थानकवासी समाज की दृष्टि से हरियाणा को भारत के मानचित्र पर उभारने का श्रेय पूज्य गुरुदेव के नाम है। गुरुदेव की प्रबल भावना थी कि पंजाब महासंघ की भाँति हरियाणा में भी कोई जैन

संगठन बने। गुरुदेव के आशीर्वाद से हरियाणा महासंघ का गठन हुआ।

गुरु महाराज का जन्म हरियाणा प्रदेश में हुआ है। और गुरुदेव के अधिकतर गुरु-भाई भी हरियाणा से संबंधित थे। गुरुदेव ने अपने अधिकतर चातुर्मास भी हरियाणा की धरती पर किए। वाचस्पति गुरुदेव ने अपने अंतिम समय में गुरुदेव को निर्देश दिया था कि हरियाणा की ओर मुख करो। अर्थात् हरियाणा में विचरण करना। वहाँ तुम्हारी शिष्य-संपदा में अतिशय वृद्धि होगी। गुरुदेव की निश्राय में अधिकतर दीक्षाएं व सम्मेलन भी हरियाणा की धरती पर हुए। मैं भी सर्वप्रथम वैरागी बनकर गुरु चरणों में बुटाणा(हरियाणा) की भूमि पर ही आया था। यही कारण है कि आज भी हरियाणा के क्षेत्रों में धर्म-ध्यान व तप के प्रति अत्यधिक रूचि है। यह सब गुरुदेव की कृपा का फल है।

पंजाब प्रदेश प्रारंभ से ही धार्मिक दृष्टि से समृद्ध रहा है। तात्कालिक पंजाब में उस समय भी आचार्य, प्रवर्त्तक उपाध्याय आदि बड़े-बड़े संत विचरण करते थे। कई क्षेत्रों में तो वृद्धसंत स्थानापति भी थे। गुरुदेव ने विचार किया कि ऐसी स्थिति में यदि हरियाणा के श्रावकवर्ग को नहीं संभाला गया तो यह क्षेत्र संस्कारविहीन हो जाएगा। इसी उद्देश्य से हरियाणा के पानीपत, जींद, रोहतक, सोनीपत में गुरुदेव का विशेष विचरण रहा।

गुरुदेव को वहाँ अपने परिश्रम का फल भी प्राप्त हुआ। हरियाणा के अनेक जैन परिवारों के सुसंस्कारशील बालकों ने जैन दीक्षा अंगीकार की। पंजाब के जैन ओसवाल परिवारों में पूज्य काशीराम जी महाराज की दीक्षा के पश्चात् दीक्षार्थी बंधु की संख्या नगण्य हो गई। परन्तु हरियाणा में गुरुदेव द्वारा की गई जिनशासन की प्रभावना के फलस्वरूप अग्रवाल जैन परिवारों से अनेकों वीर व वीरांगनाए जैन भागवती दीक्षा के मार्ग पर अग्रसर हुई।

गुरुदेव अपने जीवन का अंतिम समय हरियाणा के क्षेत्रों में ही व्यतीत करना चाहते थे। किसी समय परिस्थिति वश गुरुदेव के मन में यह भाव भी बनें कि मैं जींद ही में ठाणापति हो जाऊँ। परन्तु कुछ स्थितियाँ ऐसी बन गई कि गुरुदेव को शालीमार बाग दिल्ली की ओर प्रस्थान करना पड़ा। वहाँ पर भी हरियाणा के श्रावकों की बहुलता थी।

यदि संक्षिप्त में कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हरियाणा के लाल व हरियाणा के ताज ही इसके संरक्षक, प्रबोधक, तारणहार, सर्वेसर्वा थे। भारतवर्ष में हरियाणा के स्थानकवासी समाज को विशेष रूप से प्रतिष्ठित करने वाले गुरुदेव ही थे।

**ऐसे महान धर्म प्रभावक के चरणों में प्रणाम!**

उत्तर प्रदेश के
स्थानकवासी श्रीसंघों की
गुरुदेव के प्रति आत्मीयता व श्रद्धा
सराहनीय व अतुलनीय थी।

# उत्तरप्रदेश

# 84 | उत्तरप्रदेश व गुरुदेव

**उत्तरप्रदेश** जनसंख्या व क्षेत्र की दृष्टि से भारत का दूसरा सबसे बड़ा व प्राचीन राज्य है। यदि हम इस क्षेत्र में स्थानकवासी समाज की बात करें, तो इस राज्य में सतरहवीं शताब्दी के इर्द-गिर्द विधिवत् रूप से स्थानकवासी समाज की संरचना हुई। परन्तु यहाँ दिगम्बर समाज का इतिहास इससे भी प्राचीन है। उत्तरप्रदेश में जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में विशेषत: मनोहर परंपरा का उपकार रहा है। इस परंपरा की प्रबल प्रेरणा से पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लगभग 50 गाँवों में विशेष धर्म-क्राँति हुई। जिसके फलस्वरूप यहाँ संघों व स्थानकों का निर्माण हुआ।



परन्तु समय-समय पर उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में पंजाब परंपरा में आचार्य पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज के पूर्वज व वंशज भी विचरण करते रहे हैं। जिस कारण यहाँ के कुछ क्षेत्रों पर पंजाब-परंपरा के संतों का भी उपकार रहा है। जैसे बामनौली के क्षेत्र पूज्य आचार्य श्री सोहन लाल जी की छत्रछाया में पोषित हुआ। अमीनगर सराए पर भी पंजाब-परंपरा के संतों का प्रभाव था।

यदि समय-समय पर माली उपवन का ध्यान न रखें तो उस बगिया की चमक भी मंद हो जाती है। यही स्थिति उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों की हो रही थी। ऐसे समय पर पूज्य वाचस्पति गुरुदेव व पूज्य श्री राम जी लाल जी महाराज ने इस क्षेत्र को सहारा दिया। लोगों में जैनत्व के प्रति श्रद्धा की लौ को पुन: प्रज्वलित किया।

सन् 1958 में पूज्य बाबा श्री जग्गुमल जी महाराज के चांदनी चौंक में स्वर्गवास के उपरांत गुरुदेव ने भी उत्तर प्रदेश की ओर विहार किया या यूँ भी कह सकते हैं कि उत्तर प्रदेश के भाव भक्ति युक्त क्षेत्रों के प्रति गुरुदेव के मन में विशेष आकर्षण था। पंजाब हरियाणा की अपेक्षा उत्तर प्रदेश में स्थानकवासी समाज के विचरण क्षेत्र सीमित थे। फिर भी गुरुदेव ने उत्तर प्रदेश में अपने जीवन काल के पाँच वर्षावास व्यतीत किए। यदि हम क्षेत्रों की अपेक्षा से देखें तो गुरुदेव का विचरण उत्तर प्रदेश में पंजाब व हरियाणा से कम नहीं था। उत्तर प्रदेश के स्थानकवासी श्रीसंघों को गुरुदेव की आत्मीयता इतनी अधिक थी कि जब भी वहाँ के संघ गुरुचरणों में चातुर्मास की विनति लेकर आते तो गुरुदेव स्वयं का या अपने संतों का चातुर्मास देने की कृपा अवश्य करते थे।

यदि गुरुदेव का उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों के प्रति स्नेह भाव था तो उत्तर प्रदेश के श्रावक भी पीछे नहीं रहे। उन्होंने भी गुरुदेव की झोली में संयमी शिष्यों को उपहार स्वरूप भेंट किया। गुरुदेव के कई शिष्य इसी प्रदेश में दीक्षित भी हुए। यहाँ एक साधु-सम्मेलन का भी आयोजन हुआ।

उत्तर प्रदेश में किन्हीं परिस्थितियों के कारण वहाँ मनोहर परंपरा की पकड़ शिथिल हो गई। उस समय की नजाकत को समझते हुए गुरुदेव ने उन संघों व श्रावकों को संभाला और स्थानकवासी धर्म में उन्हें दृढ़ रखा। यदि गुरुदेव उस समय यह कदम न उठाते तो संभवत: उन क्षेत्रों का विलय किन्हीं अन्य परंपराओं में हो जाता। यदि उन क्षेत्रों

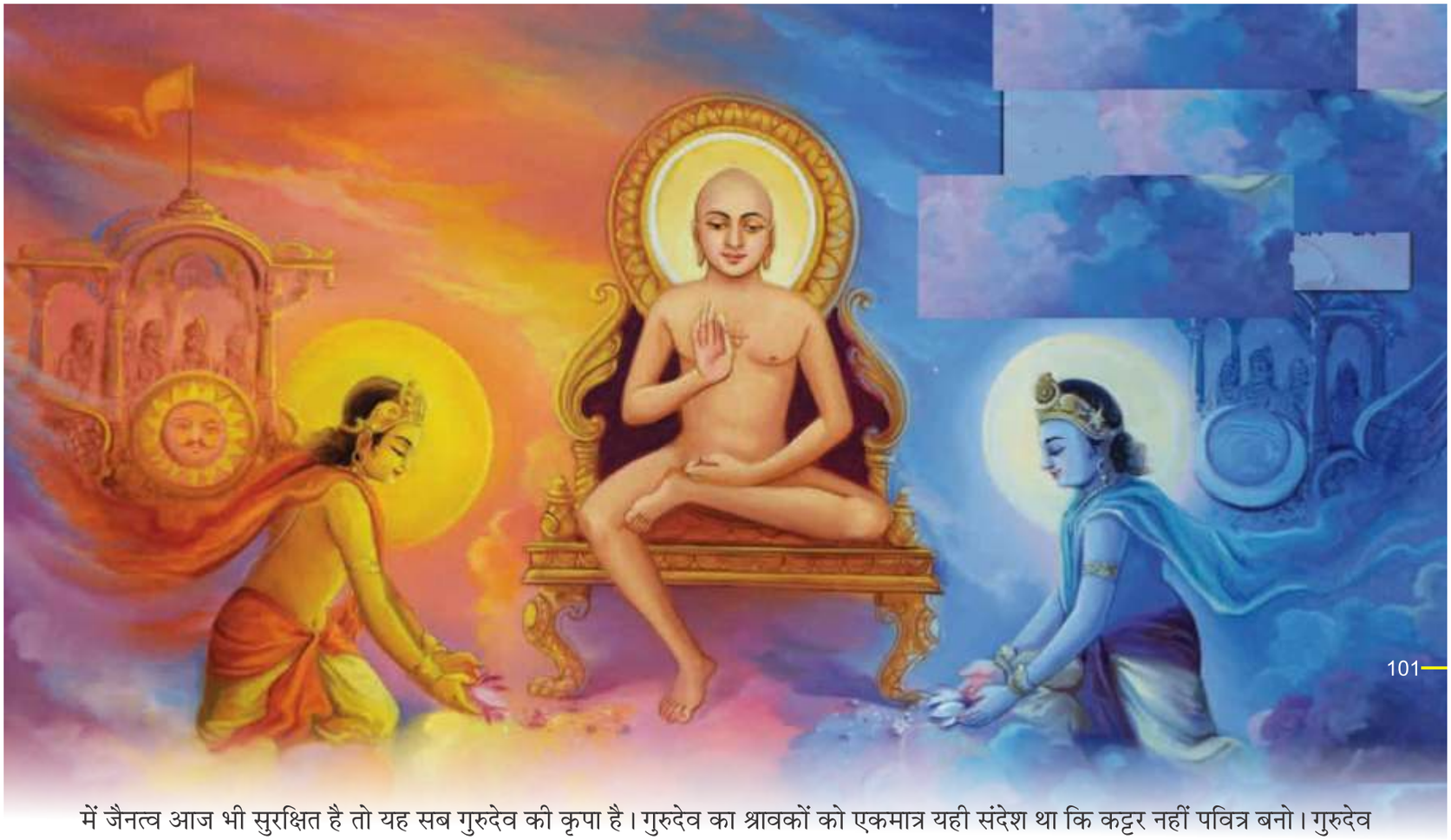



में जैनत्व आज भी सुरक्षित है तो यह सब गुरुदेव की कृपा है। गुरुदेव का श्रावकों को एकमात्र यही संदेश था कि कट्टर नहीं पवित्र बनो। गुरुदेव विघटन में नहीं संगठन में विश्वास रखते थे।

गुरुदेव ने अपने जीवन के संध्या काल का एक चातुर्मास बड़ौत श्रीसंघ को भी प्रदान किया। बड़ौत यू.पी. में स्थानकवासी समाज की राजधानी है। इस क्षेत्र को राजधानी के रूप में विकसित करने का श्रेय गुरुदेव को ही जाता है।

जब 1994 में गुरुदेव ने उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों की स्पर्शना का भाव बनाया तो पूरे यू.पी. में उत्साह की लहर दौड़ पड़ी। कई संघों ने बागपत में एकत्रित होकर गुरुदेव के स्वागत की रूप रेखा तैयार की। मेरठ में भी धर्म ध्यान का खूब रंग जमा। मुज्जफरनगर व शामली क्षेत्र पर भी गुरुदेव की विशेष कृपा रही। आज भी यू.पी. का श्रावक वर्ग गुरुदेव के प्रति आस्थावान है।

**जन-जन के उद्धारक गुरुदेव को कोटिशः वंदन!**

**गुरुदेव** का पंजाब के प्रति स्वाभाविक स्नेह इसलिए था क्योंकि गुरुदेव का संयम ग्रहण करने का मनोरथ **पंजाब के संगरूर** शहर में 18 जनवरी 1942 में पूर्ण हुआ था।

# 85 | पंजाब और गुरुदेव

**पंजाब** प्राचीनकाल से ही पूरे उत्तर भारत में आकर्षण का केन्द्र रहा है। धर्म व गुरु की रक्षा के लिए हँसते-हँसते प्राण-न्यौछावर करने वाली वीर भूमि का एक गौरवशाली इतिहास रहा है। जब भी देश या धर्म पर संकट के बादल मंडराए तो पंजाब के वीरों ने आगे आकर अपने शीश का बलिदान दिया। इस वीरधरा पर जैनत्व का परचम सदियों से लहराता आ रहा है। आज के 2500 वर्ष पूर्व वर्तमान में जैन धर्म के प्रणेता तीर्थंकर भगवान महावीर ने भी मौका (वर्तमान में मोगा) नगरी पधार कर इस धरा को पावन किया है। पंजाब परम्परा में जैन स्थानकवासी समाज का भी एक समृद्ध इतिहास है।

लोकाशाह के उपरांत गच्छ की प्रथम गादी पंजाब के लाहौर शहर में ही स्थापित हुई। वर्तमान में पाकिस्तान के शहर स्यालकोट व पसरूर में जैन धर्म के सैंकड़ों अनुयायी थे। पंजाब के ही यति श्री हरिदास जी ने संवत् 1700 में शुद्ध स्थानकवासी दीक्षा अंगीकार कर पंजाब का नेतृत्व संभाला। पूज्य आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज ने इस परम्परा को आगे बढ़ाने में अहम् भूमिका निभाई। आज भी पूरे भारत में पंजाब परम्परा को अमर गच्छ के रूप में जाना जाता है। फिर उन्हीं की वंश परम्परा में पूज्य श्री रामबख्श जी महाराज, क्रमशः नीलोपथ जी महाराज, श्री हरनामदास जी महाराज, श्री मयाराम जी महाराज, श्री छोटेलाल जी महाराज, श्री नाथूलाल जी महाराज व श्री मदनलाल जी महाराज ने क्रमशः जिनशासन का नेतृत्व किया। इन महापुरुषों ने अपने तप व संयम के द्वारा पंजाब में जैन-धर्म की प्रतिष्ठा की। 27 जून 1963 में पूज्य वाचस्पति गुरुदेव का देहावसान पंजाब की धरा पर ही हुआ।

पंजाब प्रांत का यह सौभाग्य रहा है कि उसे प्रत्येक कार्य में प्राथमिकता दी गई। संपूर्ण भारत में उत्तर भारत की संत-परंपरा भी पंजाब-परंपरा के नाम से विख्यात है। स्थानकवासी परंपरा की दृष्टि से देखा जाए तो पंजाब परंपरा का श्रावक एवं साधु बल अग्रणी रहा है। प्रत्येक सम्मेलन में पंजाब परंपरा के साधु-साध्वियों की संख्या का वर्चस्व रहा। जिस कारण श्रमण संघ के प्रथम आचार्य का चयन भी पंजाब से ही हुआ। पंजाब परंपरा को प्रारंभ से ही एक आचार्य का नेतृत्व प्राप्त हुआ। इस परंपरा के अधिकतर आचार्य पंजाब प्रांत से ही संबंधित थे और उन्होंने पंजाब से ही अपना विचरण क्षेत्र बनाया। पंजाब के अधिकतर जैन शहरों में ही रहते थे। जबकि हरियाणा में गांवों में जैनों का वर्चस्व था। पंजाब में ओसवाल जैन की बहुलता है पर हरियाणा में अग्रवाल जैन अधिक है। पंजाब में जैन-स्थानकों का निर्माण हरियाणा से बहुत पहले हो चुका था। पंजाब महासंघ की स्थापना हरियाणा से पहले हो चुकी थी। अर्थात् पंजाब को ये समस्त विशेषताएं अनायास ही प्राप्त हो गई थी। जबकि हरियाणा में संतों व श्रावकों के अथक परिश्रम के उपरांत ये विकास कार्य हुए।



यद्यपि गुरुदेव का अधिकतर विचरण हरियाणा क्षेत्र में हुआ परन्तु पंजाब में भी समय-समय पर चौदह चातुर्मास कर अपनी कृपा का मेघ बरसाते रहे। गुरुदेव का पंजाब के प्रति स्वाभाविक स्नेह इसलिए था क्योंकि गुरुदेव का संयम ग्रहण करने का मनोरथ पंजाब के संगरूर शहर में 18 जनवरी 1942 में पूर्ण हुआ था। पंजाब में ही गुरुदेव ने मुनिवेश धारण किया। पंजाब के अनेक शहरों में गुरुदेव ने कई ऐतिहासिक

चातुर्मास भी किए। जिनकी स्मृतियों से आज भी वहाँ के श्रावकों का हृदय श्रद्धा से सराबोर है।

24 अप्रैल 1983 में मुझे भी पंजाब में संयम अंगीकार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुरुदेव के चरणों में संपन्न हुए उस दीक्षा के भव्य आयोजन की गूँज आज भी दिग् दिगंत तक प्रसारित है। पंजाब प्रदेश से गुरुदेव के चरणों में दीक्षा ग्रहण करने वाला मैं प्रथम वैरागी था।

यद्यपि तपस्वी जी महाराज हरियाणा के क्षेत्रों में ही विचरण करने के इच्छुक थे। परन्तु गुरुदेव के विनम्र अनुरोध पर उन्होंने पंजाब आने की स्वीकृति 1961 में प्रदान कर दी। गुरुदेव के मनोभाव यह थे कि मैं वाचस्पति गुरुदेव की छत्र-छाया में रहकर पंजाब के क्षेत्रों का विचरण कर लूँ।



लुधियाना पंजाब में् देवकी देवी हॉल में गुरुदेव की प्रेरणा से हजारों सामायिकों का भव्य आयोजन हुआ। गुरुदेव की निश्राय में हुए इस समवसरण की स्मृतियां आज भी लोगों के दिलों में अंकित है।

जीवन के संध्याकाल में भले ही गुरुदेव ने हरियाणा व दिल्ली की ओर मुख किया। परन्तु समाज के उत्थान के लिए गुरुदेव समय-समय पर अपने शिष्यों को पंजाब की ओर प्रेषित करते रहे।

गुरुदेव का पंजाब के प्रति नैसर्गिक स्नेह था। वे समस्त संघों में एक ही बात फरमाते थे कि ऐसे किसी कार्य का समर्थन न करे जिससे संयमी जीवन में शिथिलता आए। समाज कट्टर व संप्रदायवादी न बनें। संयम व त्यागमय जीवन के उपासक बनें।

गुरुदेव ने जीवन के संध्याकाल में भी पंजाब को दो चातुर्मास घुटनों में दर्द के कारण दिए। उन दिनों गुरुदेव 4 कि.मी. से अधिक नहीं चल पाते थे। फिर भी बड़ौत से सीधा लुधियाना में चातुर्मास के लिए पधारे।

पंजाब की सेवा-भक्ति व श्रद्धा गुरुदेव के हृदय में थी। जैसे शरीर में सभी अंगों का अपना महत्त्व है ऐसे ही गुरुदेव को प्रत्येक क्षेत्र अपने अंगों की भाँति प्रिय था। जीवन के अंतिम क्षणों में पंजाब के लिए गुरुदेव का अंतिम संदेश था कि पंजाब का जैन समाज सदैव समृद्ध बना रहे।

**धन्य है ऐसे संप्रदायातीत महागुरु!**

गुरुदेव का अंतिम समय भी दिल्ली में ही गुजरा।
दिल्ली में ही गुरुदेव पंचत्व में विलीन हो गए।
भगवन् श्री रामप्रसाद जी महाराज का एक भावुक भजन है-
'गुरुदेव दिल्ली का दिल तुमसे जुड़ा था।'

# 86 | दिल्ली और गुरुदेव

**दिल्ली** भारतवर्ष का आकर्षण केन्द्र एवं सर्वाधिक प्राचीन शहर है। महाभारत काल में यही स्थान पांडवों का इन्द्रप्रस्थ था। कालान्तर में यही स्थान दिल्ली के नाम से विख्यात हुआ। प्रत्येक युग में दिल्ली को भारत का अहम् भाग माना गया। दिल्ली का इतिहास सागर की भाँति असीम है। लाखों-करोड़ों महापुरुषों के प्रेरक प्रसंग दिल्ली के इतिहास से जुड़े हुए हैं। दिल्ली भारत का दिल है। सभी कवियों ने दिल्ली की अजेय, अद्‌भुत व अनूठी दास्तान का यशोगान किया है।

दिल्ली जहाँ एक ओर प्रारंभ से ही भारतीय राजनीति का प्रमुख केन्द्र बिन्दु रहा है। वहीं दूसरी ओर यहाँ अध्यात्म के मंगलगान भी गाए गए।



दिल्ली व चाँदनी चौंक का परस्पर गहन संबंध है। दिल्ली चाँदनी चौंक में बारादरी (जैन स्थानक) का इतिहास लाल किले की भाँति प्राचीन एवं ऐतिहासिक है। चाँदनी चौंक का जैन श्री संघ संयमी एवं भक्ति प्रधान श्री संघ रहा है। यहाँ के आगम मंथन करने वाले श्रावकों एवं युग प्रधान आचार्यों के चातुर्मासों के कारण चाँदनी चौंक श्री संघ की ख्याति संपूर्ण भारत में प्रसारित हुई।

मूलत: यह श्री संघ पंजाब परंपरा का प्रमुखतम मूर्धन्य श्री संघ है। पूज्य आचार्यश्री अमर सिंह जी महाराज के पूर्वजों की भी कृपा इस संघ पर रही है। युगप्रधान आचार्यश्री अमर सिंह जी महाराज की दीक्षा का सौभाग्य भी इस श्री संघ को प्राप्त हुआ। जितने चातुर्मास, दीक्षाएं, संत की स्पर्शना का लाभ इस क्षेत्र को प्राप्त हुआ सम्भवत: संपूर्ण उत्तर भारत के किसी क्षेत्र को इतना बड़ा सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। यह श्री संघ पूरे भारत के जैन संत-समुदाय का प्रमुख विचरण स्थल रहा है। शायद अपने जीवनकाल में इस क्षेत्र में कम-से-कम एक चातुर्मास करना भी जैन संतों का स्वप्न रहा है।

पूज्य श्री मयाराम जी महाराज ने भी इस क्षेत्र को अपनी चरण रज से पावन किया है। पूज्य श्री छोटेलाल जी महाराज तो यहाँ के कण-कण में समाएं है। पूज्य श्री नाथूलाल जी महाराज को इसी स्थल पर पूज्य छोटेलाल जी महाराज की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्य गुरुदेव श्री मदनलाल जी महाराज की यह भूमि कर्मस्थली रही है। पूज्य गुरुदेव श्री सुदर्शनलाल जी महाराज ने भी इस क्षेत्र में सेवा के भगीरथ कार्य का उत्तरदायित्व संभाला था। अतीत काल से अनगिनत साधु-साध्वियों का आवागमन इस धरा पर हुआ है।

जब पूज्य बाबा श्री जग्गुमल जी महाराज विहार करने में अशक्त हो गए तो वाचस्पति गुरुदेव ने सुदर्शन मुनि को आदेश दिया कि तुम इसी क्षेत्र में रुककर बाबा जी महाराज की सेवा करोंगे। गुरुदेव सन् 1952 से 1958 तक बाबा जी महाराज की सेवा में इसी क्षेत्र में तैनात रहे। यूँ कह दे कि गुरुदेव श्री का बचपन चाँदनी चौंक के गलियारों से व्यतीत हुआ और वहीं विराजमान होकर गुरुदेव ने अपनी शिक्षा पूर्ण की। आगमों की स्वाध्याय की। पूरे दिल्ली प्रदेश में गुरुदेव ने चौदह चातुर्मास किए।

रोहतक से आकर गुरुदेव का सांसारिक परिवार दिल्ली में बस गया। ऐसा भी कह सकते हैं कि दिल्ली गुरुदेव का सांसारिक घर था।

यहाँ विशेष ज्ञातव्य है कि गुरुदेव का बाल्यकाल व युवावस्था के कुछ वर्ष दिल्ली में व्यतीत हुए। परन्तु गुरुदेव का अंतिम समय भी दिल्ली में ही गुजरा। दिल्ली में ही गुरुदेव पंचत्व में विलीन हो गए। भगवन् श्री रामप्रसाद जी महाराज का एक भावुक भजन है। '**गुरुदेव दिल्ली का दिल तुमसे जुड़ा था।**'

गुरुदेव के चरणों में प्रथम दीक्षा दिल्ली में ही संपन्न हुई। दिल्ली में ही गुरुदेव गुरुपद से सुशोभित हुए।

दिल्ली प्रवास के अंतर्गत गुरुदेव ने संपूर्ण भारत वर्ष में पधारे आचार्यों, उपाध्यायों व महान् वरिष्ठ संतों के दर्शन किए। परस्पर ज्ञान का आदान-प्रदान किया। गुरुदेव ने विनयभाव से उनके हृदय में सम्मानजनक स्थान पाया।

गुरुदेव का सन् 1992 व 1993 का दिल्ली प्रवास इतिहास में अवर्णनीय है। धर्म-ध्यान के कई लंबे आयाम स्थापित हुए जैसे दिल्ली वालों ने भगवान् के दर्शन कर लिए हो।

दिल्ली ने गुरुदेव को बहुत कुछ समर्पित किया तो गुरुदेव ने भी दिल्ली के इस उपकार को शतगुणित कर वापिस लौटाया है। दिल्ली के श्रावकवर्ग के मन में गुरुदेव के प्रति कृतज्ञता का भाव है।

**ऐसे ऐतिहासिक महापुरुष के चरणों में नमन्!**



**प्रभु** का दर्शन तो आप सुबह-शाम करते ही हैं।
उस समय यदि आपका **चित्त स्थिर** होगा
तो प्रभु के **निर्मल व मोहक स्वरूप** को देख पाएंगे।

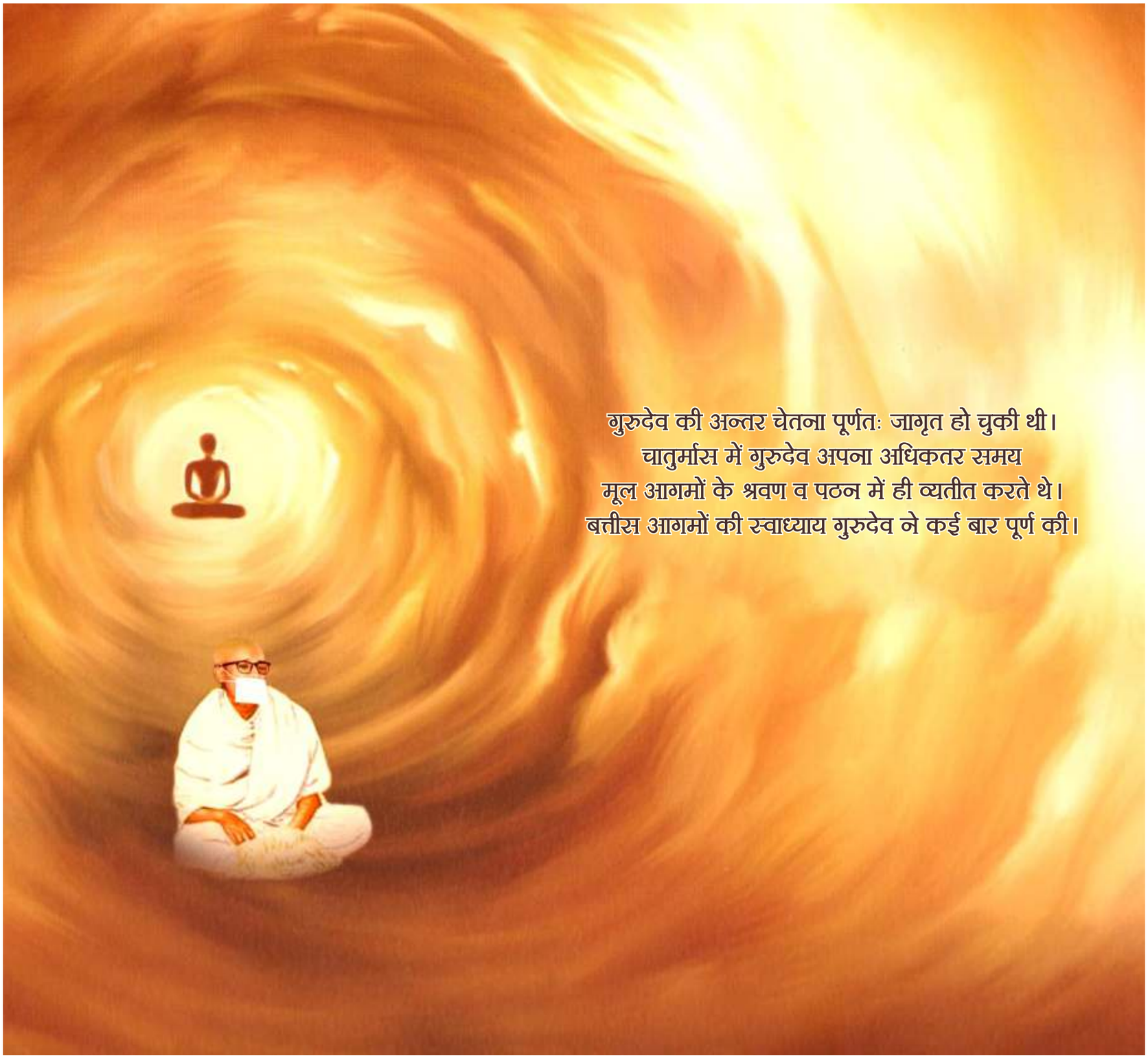
गुरुदेव की अन्तर चेतना पूर्णतः जागृत हो चुकी थी।
चातुर्मास में गुरुदेव अपना अधिकतर समय
मूल आगमों के श्रवण व पठन में ही व्यतीत करते थे।
बत्तीस आगमों की स्वाध्याय गुरुदेव ने कई बार पूर्ण की।

# 87 | जीवन की संध्यावेला और गुरुदेव

**कबीर जी का एक प्रसिद्ध दोहा है :**
**कबीरा तेरी सब सुधरी, एक रही दिल माय।**
**अंत समय जब आएगा, इज्जत रहेगी नाय।।**

**कबीर** जी के कहने का अभिप्राय यह है कि जीवन तो अच्छे ढंग से गुजर गया पर भय तो इस बात का है कि अंतिम समय में परमात्मा को मुख दिखाने योग्य रहूँगा या नहीं।

जीवन के अंतिम क्षण सर्वथा महत्त्वपूर्ण होते हैं। क्योंकि तभी जीवन रूपी नाटिका का पटाक्षेप होता है। तभी निर्णय होता है कि दर्शकों ने आपके अभिनय को देखकर तालियाँ बजाई या गालियाँ निकाली। जीवन की अंतिम घड़ी में आपके द्वारा किए गए सद् असद् कार्यों की पूरी रील आपके समक्ष उपस्थित हो जाती है। अगर जीवन के अंतिम पलों को आप यशस्वी व स्मरणीय बनाना चाहते हैं तो इसके प्रयास आपको युवावस्था से ही प्रारम्भ करने होंगे। हम अपनी जिन्दगी का पेपर बचपन व जवानी में ही कर चुके होते हैं। वृद्धावस्था तो मात्र उसका परिणाम है।

पूज्य गुरुदेव जी का बचपन, जवानी व वृद्धावस्था तीनों ही तेजस्वी मनस्वी व वर्चस्वी रहे। गुरुदेव को बाल्यावस्था से ही धर्म व अध्यात्म में गहन रुचि थी। शारीरिक दृष्टि से गुरुदेव बचपन से ही कृश थे। परन्तु उनका मनोबल अत्याधिक सुदृढ़ था। जीवन की संध्या बेला में शरीर भले ही कृशतर हो गया, पर मनोबल ज्यों का त्यों बना हुआ था।

संयम प्रियता, विवेक शीलता, विनम्रता, प्रज्ञा शीलता, पाप भीरूता, उदारता, मुक्ति की तीव्र पिपासा, जीवन के आदि से लेकर अंतिम क्षणों तक अखंड बनी हुई थी। गुरुदेव सदैव इन्हीं भावनाओं में श्वास लेते थे।

जीवन के संध्याकाल में गुरुदेव की आत्मरमणता अत्यधिक प्रगाढ़ हो चुकी थी। स्वाध्याय रुचि एवं अंतर्मुखी प्रवृत्तियां निरन्तर वर्द्धमान थी। बाह्य आयोजनों में किसी प्रकार का कोई रस नहीं था। श्रावक परिचय की रुचि भी क्षीण थी। स्व के प्रति सजगता के भाव थे। आत्म-आलोचना का क्रम गतिमान था गुरुदेव जीवन की अंतिम यात्रा के लिए पूर्णत: तैयार थे।



वृद्धावस्था में जब गुरुदेव का जंघाबल क्षीण हो गया तो उन्होंने व्हीलचेयर का उपयोग स्वीकार नहीं किया। विवशता के कारण उन्होंने सीमित समय के लिए उपचार के लिए डोली का आलंबन अवश्य लिया, वह भी इस शर्त पर कि मेरे विवेकशील साधु ही डोली को उठाएंगे।

उनके जीवन की संध्यावेला के चातुर्मास सन् 1993 में दिल्ली त्रिनगर, 1994 में बड़ौत, 1995 में सुंदर नगर लुधियाना, 1996 का चातुर्मास सुनाम, सन् 1997 का जींद, 1998 में अंबाला में ऐतिहासिक व स्वर्णिम चातुर्मास व्यतीत हुए।

गुरुदेव के मन के भाव थे कि मैं अपना अंतिम समय हरियाणा में जींद अथवा पंजाब में पटियाला या होशियारपुर में व्यतीत करूँ। किसी क्षेत्र की स्पर्शना बलवान होती है यह तो प्रकृति ने निश्चित कर रखा था। गुरुदेव की अंतिम श्वासें दिल्ली शालीमार बाग में ही पूर्ण हो। प्रकृति

**लिप्तता से**
**कर्म बंधन होगा,**
**देखते रहेंगे तो**
**निर्जरा होगी**
**क्या चाहिए.....आप सोचिए?**

को चुनौती देने का साहस किसी में नहीं है। तीर्थंकरों ने भी प्रकृति के निर्णय को स्वीकार किया है।

गुरुदेव ने जब सन् 1987 में पूज्य तपस्वी श्री बद्रीप्रसाद जी महाराज के संथारे की अनुमोदना की तभी से गुरुदेव ने समाधि मृत्यु मरण की तैयारियाँ प्रारंभ कर दी थी। संथारा साधक बनने का भाव गुरुदेव के मन में सदैव प्रबल रहा था।

सन् 1998 में अंबाला चातुर्मास में तो गुरुदेव की अन्तर चेतना पूर्णतः जागृत हो चुकी थी। चातुर्मास में गुरुदेव अपना अधिकतर समय मूल आगमों के श्रवण व पठन में ही व्यतीत करते थे। बत्तीस आगमों की स्वाध्याय गुरुदेव ने कई बार पूर्ण की।

जून 1998 में गुरुदेव ने मेरे समक्ष अंतिम आलोचना भी की थी। जब चातुर्मास के पश्चात् सन् 1999 में कैथल सम्मेलन के अंतर्गत मैंने गुरुदेव के दर्शन किए। उस समय गुरुदेव ने एक घंटा मेरे साथ अंतिम वार्तालाप किया। उस समय गुरुदेव ने संक्षेप में संकेत दे दिया था कि अब जीवन ज्योति बुझने वाली है। गुरुदेव के वार्तालाप से यह स्पष्ट था कि वे अपने अंतिम समय से तनिक भी भयभीत नहीं थे। शिष्यों के प्रति भी उन्होंने अपना ममत्व शिथिल कर लिया था। अब तो गुरुदेव का एक ही उद्देश्य था कि मैं अपना अंतिम मनोरथ पूर्ण करूँ।

गुरुदेव के आचार-व्यवहार से यह स्पष्ट झलकने लगा था कि वीतराग मार्ग पर उनकी भावानात्मक स्थिति और निर्मल हो गई है। आंतरिक इच्छाएं व अभीप्साएं समाप्त प्रायः थी। यहाँ तक कि खान-पान में भी कण मात्र भी आसक्ति नहीं थी और न ही हृदय में मृत्यु का भय था। बस एक ही अहोभाव था-

**जिस मरन से जग डरत है, मुझ मन बहुत आनंद।**
**कब मरूं कब पाऊँगा, पूरण परमानंद।।**

**ऐसे समाधिस्थ गुरुदेव को शतशः नमन!!**

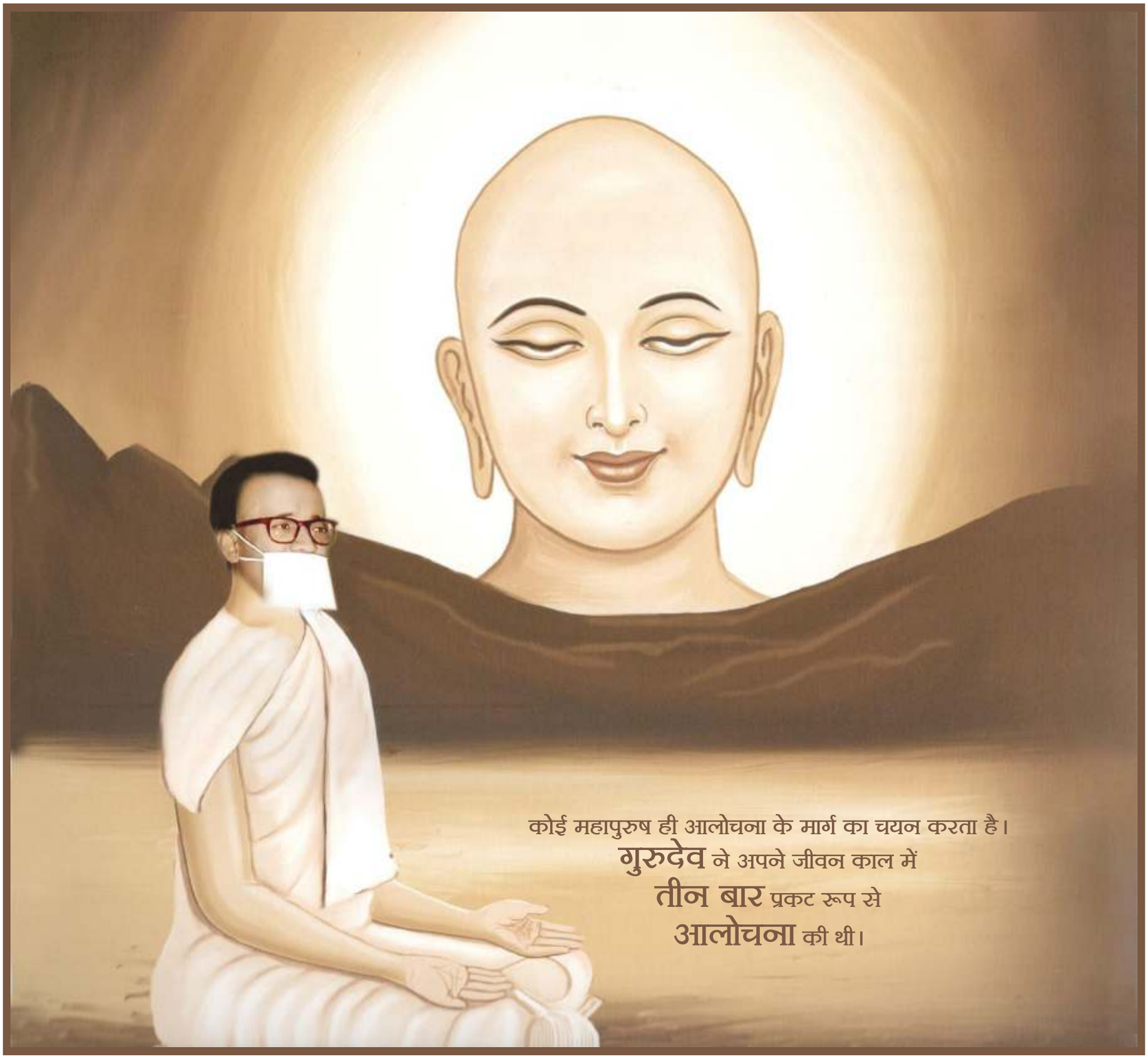
कोई महापुरुष ही आलोचना के मार्ग का चयन करता है।
गुरुदेव ने अपने जीवन काल में
तीन बार प्रकट रूप से
आलोचना की थी।

# 88 | आत्मालोचना और गुरुदेव

**आत्मालोचना** आत्मा को निशल्य बनाने का माध्यम है। हृदय की सरलता व बालक की भाँति निश्छल होकर की जाने वाली स्वयं की आलोचना साधक के जीवन में मुक्ति का द्वार खोल देती है। स्व आलोचना आत्मशुद्धि का विशेष उपक्रम है। वैसे तो साधक प्रतिक्रमण की साधना के माध्यम से प्रतिदिन पाप कर्मों की आलोचना करता है। परन्तु कुछ विशिष्ट साधक मोक्ष की तीव्र अभिलाषा से प्रेरित होकर किसी धीर गंभीर योग्य साधक के समक्ष सरल भाव से अपने जीवन की आलोचना करते हैं। जीवन में अगर प्रमादवश, प्रलोभनवश, भौतिक प्राप्ति की इच्छा के कारण यदि कोई स्खलना हुई हो व महाव्रतों में अतिचार लगा हो तो इन सब बातों की आलोचना करना भी एक साहसिक कार्य है। अन्यथा मिथ्याभ्रम में फंसे साधक स्वयं को ही सर्वोत्तम मानते हैं।



भूल हो जाना स्वभाविक है। परन्तु कोई महापुरुष ही आलोचना के मार्ग का चयन करता है। पापभीरू व मुक्ति पिपासु साधक ही इस मार्ग पर अनुगमन करता है। गुरुदेव ने अपने जीवन काल में तीन बार प्रकट रूप से आलोचना की थी।

सर्वप्रथम सन् 1979 में जब गुरुदेव का दिल्ली पदार्पण हुआ। उस समय गुरुदेव ने त्रिनगर में विराजित सागरवर गंभीर, पूज्यपाद तपस्वी श्री रोशनलाल जी महाराज के पावन दर्शन किए। गुरुदेव ने एकांत में उनके चरणों में बैठकर मनोयोग पूर्वक अपने जीवन की आलोचना की। क्योंकि गुरुदेव संयमी जीवन में आलोचना के महत्त्व से परिचित थे। संयमी जीवन का शिखर संथारा है। संथारे में आलोचना का विशेष महत्त्व है। गुरुदेव ने सन् 1999 में देह त्याग से 20 वर्ष पूर्व ही सन् 1979 में भाव-संथारा ग्रहण कर लिया था। गुरुदेव की आलोचना सुनकर पूज्य तपस्वी जी महाराज ने कहा-ऐसी सरल, स्पष्ट व विस्तृत आलोचना करने का साहस कोई महापुरुष ही कर सकता है। आलोचना के उपरांत गुरुदेव ने कहा-अब मैं हल्का हो गया हूँ। अब मैं निश्चिंत हूँ। अब मुझे मृत्यु का कोई भय नहीं है। *'कब मरसुँ कब पावसुं, पूरण परमानंद।* आप देखिए उस समय गुरुदेव की आयु लगभग 56 वर्ष की थी। उस अवस्था में ही गुरुदेव अपनी महायात्रा के लिए पूर्णत: तैयार थे।

उसके पश्चात् अंबाला में 4 जून 1998 में गुरुदेव ने सायंकाल लगभग पाँच बजे मुझे अपने कक्ष में बुलवाया। गुरुदेव ने मेरी आंखों में देखते हुए कहा-अरुण! मैंने सन् 1979 में तपस्वी श्री रोशनलाल जी महाराज के समक्ष जीवन की आलोचना की थी। अब शेष जीवन की आलोचना मैं तुम्हारे समक्ष करना चाहता हूँ। यह सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। मैंने कहा-गुरुदेव! मैं आपका एक तुच्छ शिष्य हूँ। गुरु की आलोचना सुनने की योग्यता मुझमें नहीं है। यह सुनकर गुरुदेव ने मुझे स्नेहवश छाती से लगा लिया व बोले-अरुण! मुझे तुझ पर पूर्ण विश्वास है कि तू हलुकर्मी आत्मा है। निकटभवी है। मैं गुरुचरणों में बैठा था। मेरे समक्ष बैठकर गुरुदेव ने आलोचना की। और बताया कि इस दोष के परिहार के लिए मैंने शास्त्रानुसार यह प्रायश्चित लिया है। पूज्य तपस्वी रोशनलाल जी महाराज के उपरांत मैं सबसे अधिक तुम्हारे प्रति

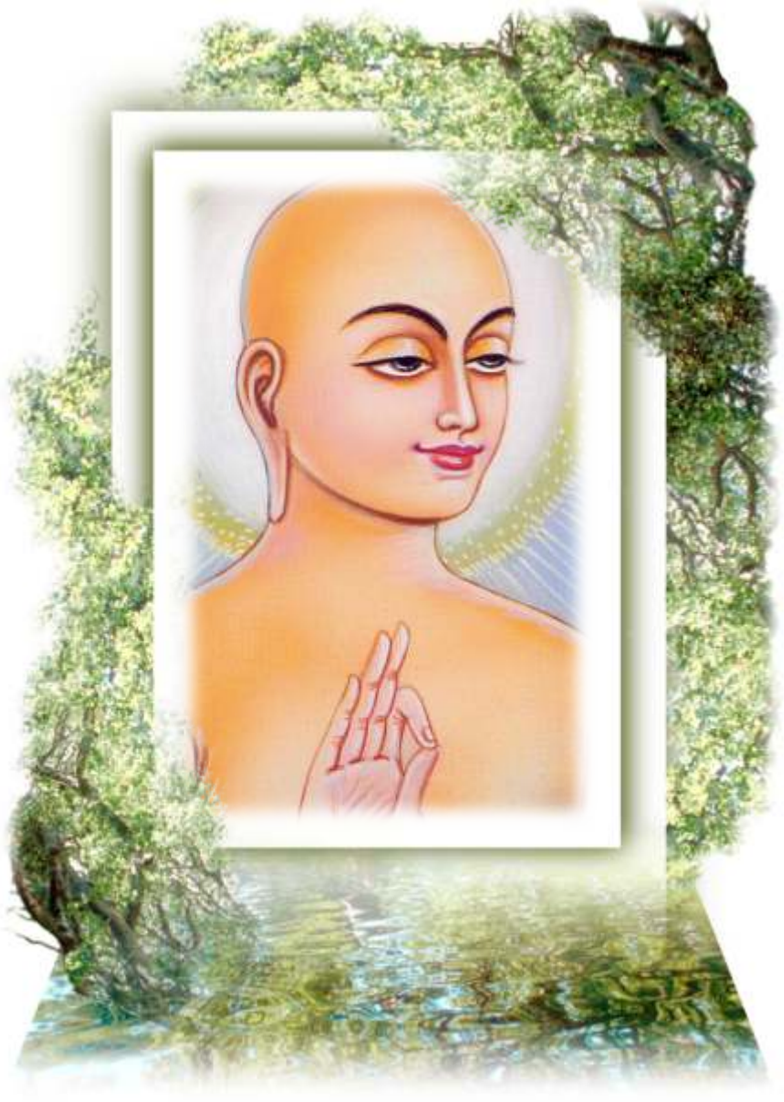

आशवस्त हूँ। तू पूर्णत: गंभीर है। यह सब तू अपने तक ही सीमित रखना। सत्य ही ऐसी आलोचना करने का साहस प्रत्येक महापुरुष में नहीं होता। मैं सौभाग्यशाली हूँ जो गुरुदेव ने मुझे इस महान कार्य के योग्य समझा।

देहावसान से एक माह पूर्व मार्च 1999 में गुरुदेव का घरौड़ा में पूज्य तपस्वी श्री रोशनलाल जी महाराज के लघुभ्राता एवं सुशिष्य श्री प्रेमचंद जी महाराज के साथ समागम हुआ। गुरुदेव स्वयं उनके कक्ष में जाकर नीचे आसन बिछाकर विराज गए। बोले-मैंने आपके गुरुदेव के समक्ष सर्वप्रथम आलोचना की थी। अब अंतिम आलोचना आपके समक्ष करने का भाव है। जीवन क्षणभंगुर है। श्वासों का कोई भरोसा नहीं। न जाने देह कब साथ छोड़ जाए? अत: इन अंतिम पलों में से शुद्ध होना चाहता हूँ। तब गुरुदेव ने पूज्य प्रेमचंद जी महाराज के समक्ष अपनी आलोचना की और प्रायश्चित स्वीकार किया।

गुरुदेव मृत्यु के लिए प्रतिपल सजग थे। उनके मन में यह प्रबल भाव था कि मैं जिनशासन का आराधक बनकर संसार को अलविदा कहूँ। उनका एकमात्र लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति था। धन्य है ऐसे पावन गुरुदेव को।



**ऐसी पवित्र आत्मा के चरणों में कोटिश: नमन!**

संथारा ही प्रत्येक संयमी साधक का अंतिम मनोरथ है।
जिसकी कसौटी पर गुरुदेव 100 प्रतिशत खरे उतरे।

# 89 संथारा व गुरुदेव

**संलेखना** मृत्यु को सन्निकट जानकर अपनाए जाने वाली उत्कृष्ट साधना पद्धति है जिसका अनुकरण स्वयं तीर्थंकर भगवान ने कर समाज के समक्ष आदर्श उपस्थित किया है। यह प्रत्येक श्रावक या संत का प्रिय मनोरथ है। संथारा जैन साधना का सर्वोच्च शिखर है। मृत्यु को सुनिश्चित जानकर स्वेच्छापूर्वक अन्न-जल का त्याग कर वीरतापूर्वक मृत्यु का वरण समाधिमरण कहलाता है। संथारा आत्मभावों की उत्कृष्ट प्रतीति है। वीतरागता के पथ पर अग्रसर होने की अलौकिक साधना है। संथारे के प्रति गुरुदेव के मन में विशेष अहोभाव था।

सन् 1987 में पूज्य तपोधनी जी महाराज की संथारा साधना पर गुरुदेव भाव-विभोर होकर पूज्यश्री का गुणगान व अनुमोदन करते थे। पूज्य तपस्वी जी महाराज के संथारे की पूर्णाहुति पर गुरुदेव के जीवन का एक ही लक्ष्य था कि मुझे भी जीवन के अंतिम क्षणों में संथारे की उपासना करनी है।

**मरन से जग डरत है, मुझ मन बहुत आनंद।**
**कब मरसु कब पावसुं, पूर्ण परमानंद।।**

यद्यपि गुरुदेव के मन में संथारे के प्रति अत्याधिक बहुमान था। परन्तु उनका हृदय उतना ही कोमल था। जब 1963 जंड़ियालागुरु में पूज्य गुरुदेव वाचस्पति जी महाराज ने अपने जीवन की अंतिम बेला पर गुरुदेव को संथारे का प्रत्याख्यान करवाने की आज्ञा दी। तब गुरुदेव अपने गुरु के प्रति प्रशस्त राग के कारण अथवा गुरु के अत्याधिक मोह के कारण संथारा करवाने का साहस नहीं जुटा पाएं। गुरुदेव स्वयं फरमाते थे कि उस अवसर पर वाचस्पति गुरुदेव ने तपस्वी जी महाराज को स्मरण करते हुए कहा था कि अगर तपस्वी जी महाराज यहां होते तो मुझे संलेखना अवश्य करवाते। उस समय वाचस्पति गुरुदेव ने स्वयं संथारे का प्रत्याख्यान किया।

1987 में मैं पूज्य गुरुदेव श्री के साथ पूज्य भंडारी श्री बलवंतरायजी महाराज की सेवा में संलग्न था। उस अवसर पर गुरुदेव ने पूज्य भंडारी जी महाराज को संथारे का प्रत्याख्यान दिया। और उनके जीवन की अंतिम यात्रा में उन्हें पूर्ण सहयोग दिया। इस दृश्य का मैं स्वयं साक्षी रहा हूं। जब पूज्य भंडारी जी महाराज के शरीर को मैंने अपने हाथों से संभाला हुआ था।

सन् 1998 में गुरुदेव ने मेरे समक्ष अपने जीवन की आलोचना की। आज भी जब मुझे वह प्रसंग स्मरण होता है, तो मेरी भाव-भंगिमा अश्रुपूरित होने लगती है कि एक गुरु के मन में एक शिष्य का कितना विशद् स्थान होगा कि उन्होंने मुझे आलोचना का अधिकारी समझा। अंत में जब गुरुदेव ने कहा कि अरूण मुनि! अब मेरे मन में मात्र यही अभिलाषा है कि मुझे समाधि-मरण आ जाए। यह सुनकर तो मेरा मुख रूआंसा हो गया। बामुश्किल मैं स्वयं को संभाल पाया। सन् 1999 का साधु सम्मेलन कैथल में आयोजित था। गुरुदेव ने उस समय भी मुझे बोला-अरुण! अब दीए में तेल कम है। तुम सब मेरे शरीर मोह में आसक्त मत होना। सब मिलकर अंतिम समय में मेरा साथ देना कि मैं अंतिम पलों में संथारे की साधना कर सकूं।

वैसे तो गुरुदेव ने अंबाला चातुर्मास में ही अघोषित संलेखना प्रारंभ कर दी थी। आहार की मात्रा अत्यंत सीमित थी। श्रावक वर्ग से संपर्क अल्प कर दिया था। अहर्निश आत्माचिंतन में तल्लीन रहते थे। उस चातुर्मास में 32 आगमों की स्वाध्याय कई बार की। प्रतिदिन आलोचना पाठ का पठन करते। संथारे का पाठ भी कभी-कभी दोहराते थे। जैसे गुरुदेव को ज्ञात था कि यह उनका अंतिम चातुर्मास है।

गुरुदेव के मन में संथारे का प्रबल भाव था। अंबाला में गुरुदेव ने संथारे की विधि से संबंधित मेरे साथ विचार-विमर्श भी किया। संथारा ही प्रत्येक संयमी साधक का अंतिम मनोरथ है। जिसकी कसौटी पर गुरुदेव 100 प्रतिशत खरे उतरे।

**ऐसे संथारा साधक को मेरा कोटि-कोटि प्रणाम!**

पंजाब परम्परा और गुरुदेव
पंजाब परंपरा
सदैव जयवंत रहे।

# 90 | पंजाब परम्परा और गुरुदेव

**पंजाब** परम्परा का नाम संपूर्ण भारत में वैभवशाली व संस्कारित संयमी परंपरा के रूप में विख्यात रहा है। यहाँ का इतिहास जैन संतों व श्रावकों की गौरव गाथाओं से भरा हुआ है। इस परंपरा के तेजस्वी आचार्य व संतों ने अपने तपस्तेज व संयम-साधना के द्वारा जन-जन के मन में धर्म-श्रद्धा व संयमनिष्ठा का दीप प्रज्जवलित किया। यहाँ के श्रावकों ने भी धर्म व देश की आन-बान-शान की सुरक्षा के लिए महान् बलिदान दिए हैं। पंजाब में स्थानकवासी परंपरा का गरिमापूर्ण इतिहास अत्यंत प्राचीन है।

स्थानकवासी परंपरा में गुरुदेव की गुरु परंपरा एक प्रतिष्ठित संयमी परंपरा के रूप में विश्रुत है। इसे गुरुदेव का सौभाग्य समझे कि गुरुदेव को इस महिमावंत परंपरा की शरण प्राप्त हुई या इसे परंपरा की खुशकिस्मती समझें कि इस परंपरा को गुरुदेव की दीक्षा के उपरांत इस परंपरा का स्वर्णिम अध्याय प्रारंभ हुआ।

गुरुदेव की परंपरा में पूज्य आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज एक प्रभावशाली आचार्य हुए हैं। इन्हीं के सद्प्रयासों से गुरु परंपरा व्यवस्थित व संयमित संवर्धित हुई। विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए पूज्य अमर सिंह जी महाराज ने संवत् 1913 में आचार्य पद ग्रहण किया। पूज्य श्री के जीवन में एक समय ऐसा भी आया कि उन्हें एकल विहारी बनकर विचरण करना पड़ा। दृढ़ संकल्प शक्ति व संयमी आचार-विचार के कारण पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज ने आध्यात्मिक वैभव की चरम ऊंचाईयों का स्पर्श किया। समय परिवर्तित हुआ तो उनके नेतृत्व में एक विशाल योग्य शिष्य संपदा का भी संगठन बना। जिन्होंने जिनशासन की सेवा कर समाज को एक नई दिशा प्रदान की। जिस परंपरा में आचार्यश्री रामबख्श जी महाराज सीमित समय तक जिनशासन की सेवा कर सकें। इसके पश्चात् पूज्य श्री मोतीलाल जी महाराज ने जन-जन में धर्म की अलख को जागृत किया। तत्पश्चात् पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने संघ की बागड़ोर अपने हाथों में ली। परन्तु प्रारम्भिक वर्षों में तिथि-पत्र व परंपरा को लेकर संघ में टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई। परन्तु संघर्ष की इस स्थिति में पूज्य श्री काशीराम जी महाराज समन्वय के सेतु बनकर उभरे। उनकी समन्वयात्मक नीतियों से संघ में पुनः सामंजस्य स्थापित हुआ। इसके बाद संघ ने पूज्य उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज को आचार्य पद पर सुशोभित किया। लगभग सौ वर्षों तक इन आचार्यों की गौरवशाली परम्परा ने पंजाब परंपरा को आध्यात्मिक व सामाजिक उन्नति का मार्ग दिखाया। गुरुदेव को पंजाब परंपरा का उज्जवल इतिहास विरासत में प्राप्त हुआ।

पूज्य वाचस्पति गुरुदेव भी पंजाब परंपरा के एक सुदृढ़ संयमी संतरत्न थे। गुरुदेव संयम व संगठन दोनों के पक्षधर थे। परन्तु वाचस्पति गुरुदेव का अभिमत यह भी था कि यदि संयम के ह्रास होने पर संगठन अपना उत्तरदायित्व नहीं निभाता तो ऐसे खोखले संगठन का क्या लाभ? संगठन का कार्य संयम का पोषण है न कि शिथिलता को बढ़ावा

देना है। पूज्य गुरुदेव भी अपने वाचस्पति गुरुदेव के विचारों से अक्षरश: सहमत थे। गुरुदेव का समर्पण भाव अतुलनीय था। पंजाब परंपरा में सगंठन के साथ-साथ संयम भी निर्मल बना रहे ऐसी गुरुदेव की भावना रहती थी।

भले ही गुरुदेव श्रमण संघ से पृथक् हो गए थे परन्तु उन्होंने कभी कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिससे संगठन को क्षति पहुँचे। यही कारण है कि पंजाब-परंपरा के इतिहास में कभी श्रावक संघों के संगठन में विघटन नहीं हुआ। परन्तु जब वाचस्पति गुरुदेव ने देखा कि श्रमण संघ में संयम के नियमों, उपनियमों की अपेक्षा हो रही है तो वे संयम के समर्थन में खड़े रहे। जिन भावों से वाचस्पति गुरुदेव ने संयम का समर्थन किया था उन्हीं भावों से वे संयम को अंतिम श्वास तक निभाते रहे।



वाचस्पति गुरुदेव के देवलोकगमन के पश्चात् भी गुरुदेव ने पंजाब परंपरा की संयम प्रणाली का कभी उल्लंघन नहीं किया। मुझे व्यक्तिगत रूप से कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि संयमी महापुरुष पूज्य श्री काशीराम जी महाराज के वास्तविक प्रतिनिधि बनने के अधिकारी गुरुदेव ही थे। क्योंकि उन्होंने पूज्य काशीराम जी महाराज की संयमी विचारधारा का आगे निर्वहन किया। इसी कारण गुरुदेव की छत्रछाया में पंजाब श्री संघ सदैव जयवंत रहा। गुरुदेव के कारण ही पंजाब परंपरा में संयम के प्रति जागरूकता बनी रही और पंजाब परंपरा के गौरव को अक्षुण्ण बनाए रखा। गुरुदेव पंजाब की संयमी परंपरा के महान नायक थे। गुरुदेव का आरंभ से यही संदेश था कि पंजाब परंपरा सदैव जयवंत रहे।

**शताब्दी के इस महानायक को कोटि-कोटि प्रणाम!**

गुरुदेव ने समाधिस्थल को
कभी महत्त्व नहीं दिया।
उनका पूरा ध्यान
अपनी आत्मा पर केन्द्रित था।

# 91 | समाधिस्थल और गुरुदेव

**मानसिक**, वाचिक व कायिक क्रियाओं का निरुंधन कर जीवन व मृत्यु की इच्छा से रहित होकर आभ्यंतर तल्लीनता को समाधि कहा जाता है। इस भाव समाधि में प्रवेश ही मोक्ष मार्ग का आधार है। श्रमण परम्परा निराकार की परम उपासक रही है। इस परम्परा ने कभी द्रव्य व साकार पूजा को महत्व नहीं दिया। गुरुदेव श्रमण स्थानकवासी परम्परा के मूर्धन्य प्रतिनिधि संत रत्न थे। उन्होंने समाज की विचारधारा, मर्यादा, नियम व सिद्धांतों की सुरक्षा के लिए आजीवन पराक्रम किया।

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात श्रमण परम्परा में द्रव्य, क्षेत्र व काल के अनुसार कई उतार-चढ़ाव आए। निराकार की उपासक कही जाने वाली इस परम्परा में साकार पूजा का भी प्रचलन हुआ। इसके मध्य कई क्राँतियां घटित हुईं।

इसके अंतर्गत पन्द्रहवीं शताब्दी के नायक क्राँतिकारी वीर लोकाशाह ने वीतराग मार्ग की मूल परम्परा को जीवित रखने के लिए अपने प्राणों की भी आहुति दे दी। उनके क्रांतिकारी प्रयासों से निराकार उपासना को विशेष बल मिला। स्थानकवासी परम्परा में चेतना का नवसंचार हुआ। भव्य जनमेदिनी ने अंधविश्वास व कुरीतियों पर

कुठाराघात करते हुए आगमों में उल्लिखित सामायिक व संवर की पद्धति को पुनर्जीवित किया। वीतराग साधना पद्धति में निराकार की उपासना का महत्त्व है परन्तु कुछ साधकों ने स्वार्थवश भोलीभाली जनता को चमत्कारों के बल पर अंधश्रद्धा का अनुगामी बना दिया। परन्तु 15वीं सदी में वीर लोकाशाह ने समाज में आई विकृतियों का डटकर विरोध किया और स्थानकवासी समाज की पुन: स्थापना में सहयोग दिया। खेद की बात है कि वीर लोकाशाह के देहावसान के पश्चात विकृतियाँ पुन: सिर उठाने लगीं।

फिर 17वीं सदी में छ: महापुरुषों ने इस मंद पड़ रही लौ को पुन: प्रज्वलित किया। उसी क्राँति के पश्चात लोकाशाह समाज स्थानकवासी परम्परा के रूप में प्रचलित हुई उस समय से लेकर आज तक यह परम्परा अक्षुण्ण जगमगा रही है। यद्यपि क्राँति की इस उज्ज्वल ज्योति को बुझाने के लिए कई झंझावात आए परन्तु समय-समय पर स्थानकवासी समाज में ऐसे महापुरुषों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने इस परम्परा व सिद्धांतों की सुरक्षा की।



इसी परम्परा के सजग प्रहरी मेरे गुरुदेव संघशास्ता श्री सुदर्शन मुनि जी महाराज का नाम स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है।

पूज्य वाचस्पति गुरुदेव ने अपने अंतिम समय में यह निर्देश दिया था कि मृत्योपरांत मेरा कोई स्मारक (समाधिस्थल) निर्मित न किया जाए। गुरुदेव व उनके सहयोगी संतों ने गुरुदेव की इस भावना का आजीवन सम्मान किया। यद्यपि पूज्य श्री सुमन मुनि जी महाराज ने वाचस्पति गुरुदेव का स्मारक (समाधिस्थल) जंडियालागुरु में निर्मित करवाया। परन्तु गुरुदेव ने इसका कभी समर्थन नहीं किया और न ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इसकी कोई अनुमोदना की। गुरुदेव स्थानकवासी परम्परा के सच्चे साधक थे। उन्होंने कभी अपने प्रवचनों में भी समाधिस्थल का समर्थन नहीं किया। गुरुदेव की यही एक मंगल कामना थी कि भव्य जनता अरिहंत परमात्मा की मूल साधना की उपासक बने।

गुरुदेव सदैव श्रावक वर्ग को सामायिक, संवर व प्रतक्रिमण की साधना से जोड़ते। उन्होंने कभी समाधि स्थलों पर जाकर माथा टेकने का समर्थन नहीं किया। हमें स्थानकवासी परम्परा पर गौरव है पर इसी परम्परा के कुछ स्वार्थप्रिय लोग इस वट वृक्ष की जड़ें उखाड़ने का प्रयास करते हैं। वे गुरुदेव का गुणगान तो करते हैं परन्तु उनके उपदेशों व आदर्शों को जीवन में आत्मसात नहीं करते।

मैंने सन् 1999 में पूज्य गुरुदेव से प्रश्न किया कि आपका समाधि के विषय में क्या विचार है ? गुरुदेव ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहा कि मैं समाधि स्थलों का पक्षधर नहीं हूँ। मैं एक स्थानकवासी संत हूँ। इस संस्कृति का संरक्षण करना मेरा कर्त्तव्य है। समाधि स्थल का निर्माण करवाना अपने पूर्वजों की भावना व परम्परा के साथ खिलवाड़ करना है। समाधि बनाने से माथा टेकने वाले लोग की संख्या भले ही बढ़ जाएगी लेकिन उनके जीवन में से श्रावकत्व समाप्त हो जाएगा।

गुरुदेव ने भिवानी स्थित पूज्य मयाराम जी महाराज की समाधि, जंडियाला में निर्मित पूज्य वाचस्पति गुरुदेव की समाधि व खरड़ में स्थित पूज्य श्री नाथूलाल जी महाराज की समाधि को कभी अधिक महत्त्व नहीं दिया। उनका पूरा ध्यान अपनी आत्मा पर केन्द्रित था। आत्म गुणों का विकास एवं आभ्यंतर साधना ही उनके जीवन का उद्देश्य था। वे समाज को महावीर की मूल साधना से जोड़ना चाहते थे। तभी गुरुदेव श्री की शिष्य परम्परा ने उनके देवलोक गमन के पश्चात कभी उनका समाधि स्थल बनाने की प्रेरणा नहीं दी। इसी कारण गुरुदेव आज भी जन-जन के मन में जीवित हैं।

**ऐसे निराकार के महान उपासक गुरुदेव को वंदन।**

गुरुदेव को शरीर की नश्वरता
व आत्मा की अमरता का
बोध प्राप्त हो चुका था।
वह भेद-विज्ञान को
उपलब्ध हो चुके थे

# 92 | भेदविज्ञान व गुरुदेव

**भेदविज्ञान** का अर्थ है आत्मा व शरीर की भिन्न-भिन्न प्रतीति। मोक्षमार्ग पर अग्रसर होने वाले साधक के लिए यह साधना आदर्श स्वरूप है। यह क्षपक श्रेणी की गहन साधना है। जिस पर आरूढ़ साधक पुन: कभी मिथ्यात्व के गर्त में नहीं गिरता। भव-भ्रमण को सीमित कर लेता है। देह व आत्मा के विज्ञान को समझने वाला साधक ही आत्मिक आनंद की अनुभूति कर सकता है। भेद-विज्ञान कोई बाह्य क्रियाकांड नहीं, अपितु आत्मा की सहज अप्रतिम संवेदना (अनुभव) है। गुरुदेव का जीवन भेद-विज्ञान की साधना का जीवंत उदाहरण था।



गुरुदेव की जीवन शैली को निहारने वाला कोई भी आत्म-प्रिय साधक सहज अनुमान लगा सकता था कि गुरुदेव का आध्यात्मिक जीवन किस उच्च स्तर का है। गुरुदेव शरीर व आत्मा के पृथकत्व के मर्मज्ञ थे।

युवावस्था से ही गुरुदेव का जीवन रोगों से आक्रांत था। परन्तु व्याधियां कभी गुरुदेव की आंतरिक समाधि को विचलित नहीं कर पाई। वे कभी भी आर्त ध्यान में नहीं गए क्योंकि वे देह व देही के मध्य भेद-विज्ञान को उपलब्ध हो चुके थे। गुरुदेव को शरीर की नश्वरता व आत्मा की अमरता का बोध प्राप्त हो चुका था।

एक दिन मैंने उत्सुकतावश गुरुदेव से प्रश्न किया-गुरुदेव! क्या आप आत्मज्ञान को उपलब्ध हो चुके हैं? यह सुनकर गुरुदेव मंद-मंद मुस्कुराए। फिर उपदेशात्मक स्वर में बोले-संयम जीवन का हार्द आत्म-कल्याण है। शरीर एक पौद्गलिक पर्याय है। अनंत बार इस जीवात्मा ने शरीर धारण किया है। परन्तु आत्मा अटल सत्य है। आज असाता वेदनीय कर्म के कारण मेरे शरीर के अनेकों रोग उदय में हैं। परन्तु भीतर आत्मा की प्रतीति यथार्थ बनी हुई है। संयम पालन हेतु शरीर की सुरक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। परन्तु मुझे शरीर के प्रति ममत्व-भाव नहीं है। यह भावना मुझे वीतराग देव द्वारा प्रदत्त भेद-विज्ञान की साधना से उपलब्ध हुई है।

गुरुदेव कई बार अपने प्रवचनों के माध्यम से आत्म-तत्त्व की गहन विवेचना करते। मैंने 1993 के त्रिनगर चातुर्मास में गुरुदेव के समस्त प्रवचनों को श्रवण किया। गुरुदेव के उपदेशों में भेद-विज्ञान की गहरी समझ थी। उनकी वाणी सुनकर ऐसा प्रतीत होता था। जैसे कोई आत्म-ज्ञानी अपने अनुभवों को सुना रहा हो। गुरुदेव के घुटनों में दीर्घकालीन दर्द था, परन्तु मैंने उनके मुख पर कभी शिकायत का भाव नहीं देखा। उनके मुख पर कभी ग्लानि का भाव नहीं आया। गुरुदेव शरीर में रहकर भी आत्मजगत् में रमण करते थे।

गुरुदेव ने शरीर के प्रति आसक्ति का भाव नहीं रखा। गुरुदेव अक्सर फरमाते थे कि आगम की आज्ञानुसार यदि शरीर का उपचार करवाना पड़े तो मुझे कोई एतराज नहीं, परन्तु मर्यादा के विपरीत मुझे शरीर का उपचार कतई स्वीकार नहीं है। यदि कोई श्रावक सुझाव देता कि गुरुदेव! आप अपने शरीर का पूर्ण उपचार करवाएं। तब गुरुदेव

बहुत ही मर्यादित उत्तर देते–मैंने शरीर के ईलाज के लिए नहीं, आत्मा के ईलाज के लिए संयम धारण किया है।

रात्रि ध्यान के समय गुरुदेव भेद–विज्ञान का गहन चिंतन करते। जीवन के संध्याकाल में गुरुदेव आत्मा के प्रति पूर्णत: जाग्रत थे। संभवत: उन्हें यह ज्ञान हो गया था कि आत्मा अब इस शरीर से विदा लेने की तैयारी में हैं। गुरुदेव ने एक दिन मुझे फरमाया था–अरुण मुनि! अब इस शरीर से मुक्त होने का समय समीप है। मैं अपना अधिकांशत: समय आत्म–चिंतन में व्यतीत करना चाहता हूं। मुझे '**पुनरपि जननं पुनरपि मरणं।**' की शृंखला से मुक्त होना है।

गुरुदेव ने अपने जीवन का अंतिम समय मौन, ध्यान व स्वाध्याय में ही व्यतीत किया। गुरुदेव ने अपने जीवन में भेद–विज्ञान की उत्कृष्ट साधना की।

**ऐसे तत्त्वज्ञानी महापुरुष को शतश: नमन्!**

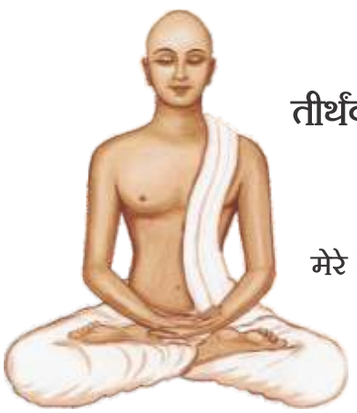

**तीर्थंकर** प्रभु अनन्त गुणों के स्वामी हैं।
उनके गुणों का **चिंतन** करते-करते
मेरे **भीतर** भी इन्हीं गुणों के होने का
**आभास** होता है।

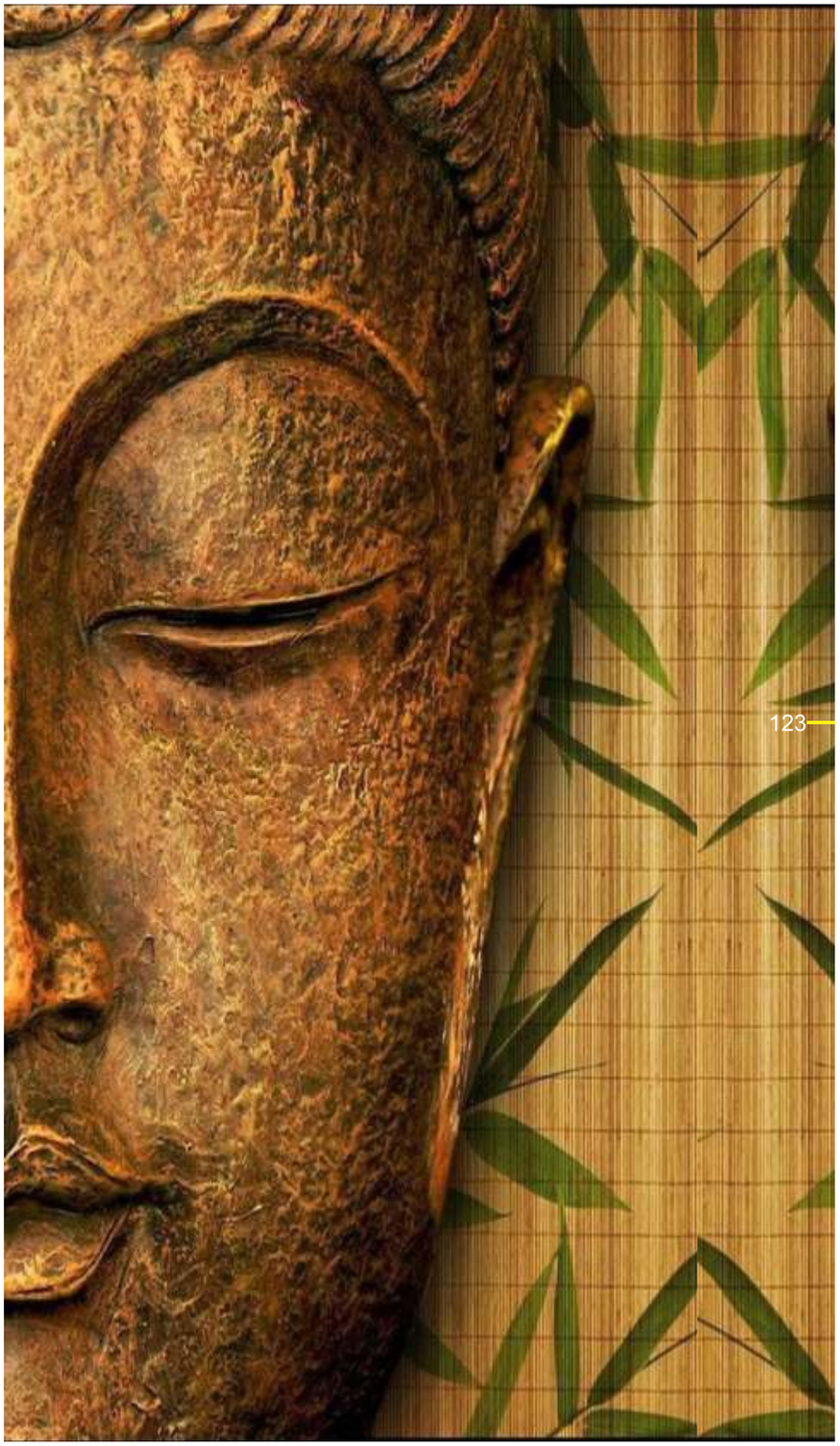

सहस्त्रों कठिनाइयों को झेलने
वाला दृढ़ वक्ष था गुरुदेव का।
जो किसी भी आँधी से
विचलित नहीं हुआ।

# 93 | मनमोहक शरीराकृति और गुरुदेव

**श्री** उत्तराध्ययन जी सूत्र के बीसवें अध्ययन में अनाथी मुनि का ऐतिहासिक वर्णन है। जिमसें सम्राट श्रेणिक अनाथी मुनि के शरीर-सौष्ठव को देखकर रोमांचित हो जाते हैं और उनकी आत्मा अनन्तकाल के मिथ्यात्व को समाप्त कर सम्यक्तत्व का स्पर्श करती है। अनाथी मुनि के रूप लावण्य को देखकर श्रेणिक सहसा बोल उठते हैं।

**अहो! वण्णो अहो! रूवं, अहो! अज्जस्स सोमया।**
**अहो! खंती, अहो! मुत्ती, अहो! भोगे असंगया।।**

राजा श्रेणिक के हृदय में आश्चर्यकारी भाव उमड़े-अहो! इस संयमी का क्या वर्ण है? क्या रूप है? कैसी सौम्यता है? कितनी क्षमा है? कैसी निर्लोभता है? और भोगों के प्रति कितनी असंगतता है? उपरोक्त वाक्य से स्पष्ट है कि महापुरुषों की देहयष्टि भी वैराग्योत्पति का कारण बनती है। गुरुदेव की शारीरिक संरचना एवं दिव्य मुखमंडल दर्शक को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। उनके प्रभावशाली आभामंडल से वीतराग छवि के सन्दर्शन होते थे। किसी युगपुरुष की कल्पना को ब्रह्मा ने साकार रूप देकर पृथ्वी पर अवतरित किया हो। ऐसा दृष्टिगोचर होता था। जैसे नंदलाल श्रीकृष्ण के दर्शन करने गोपियां खींची चली आती थी। उसी प्रकार गुरुदेव की बाह्य मुख मुद्रा चतुर्विध संघ को अपनी ओर आकर्षित करती थी।

गुरुदेव की शारीरिक संरचना अद्‌भुत थी। प्रत्येक अंग दर्शनीय एवं अवर्णनीय था। त्रिनगर चातुर्मास में मैं गुरुदेव की मनोभिराम छवि को घंटों तक निहारता रहता था।

**तेरी तस्वीर में तुझसे, एक चीज निराली है।**
**कितना कोई कुछ कहे, न गुस्सा न गाली है।।**

गुरुदेव का शारीरिक गठन संतुलित एवं प्रत्येक अंग, उपांग प्रमाणोपेत था। हजारों वर्षों में एक बार कोई ऐसी दिव्य छवि धरा को सनाथ करने आती है। युवावस्था में गठीला शरीर, उन्नत भाल, विस्तृत वक्षस्थल, करूणामृत से भरे नेत्र, मस्तक पर तपोतेज की काँति गौर वर्ण, काले कजराले बाल, प्रलम्ब बाहु, अनुभवी निगाहें, नुकीली नाक व मांसलयुक्त शरीर था ऐसे वे एक भव्यतम वीतराग मूर्त थे।

गुरुदेव का तप:तेज इतना प्रभावोत्पादक था कि बड़े से बड़े विद्वान भी उनकी तेजस्वी आभा के समक्ष निरुत्तर हो जाते थे। गुरुदेव के समुन्नत हस्त जब आशीर्वाद लिए ऊपर उठते तो उस कृपा वर्षण की प्राप्ति के लिए हजारों शीश नतमस्तक हो जाते थे। मेरी गणना भी उन भक्तों में सम्मिलित है। जो गुरुदेव का वरद हस्त अपने शीश पर टिकाए रखने के लिए लालायित रहता था।

गुरुदेव के विशाल वक्ष स्थल के मध्य एक स्वास्तिक का शुभ चिन्ह दृष्टि गोचर होता था जो शुभ चिन्ह अतिशय धारक महापुरुषों का प्रतीक होता है। सहस्त्रों कठिनाइयों को झेलने वाला दृढ़ वक्ष था गुरुदेव का। जो किसी भी आँधी से विचलित नहीं हुआ।

जब भी मैं गुरुदेव को अपलक नेत्रों से निहारता तो मुझे ऐसा सुखद आभास होता जैसे वैराग्य का अमीरस झरने की भाँति प्रवाहित हो रहा हो। मैं उसमें डुबकी लगाकर अपने तन-मन को पवित्र कर रहा हूँ।

गुरुदेव के करकमल भी अत्यंत दर्शनीय थे। हाथ में दीर्घ सूर्य रेखा

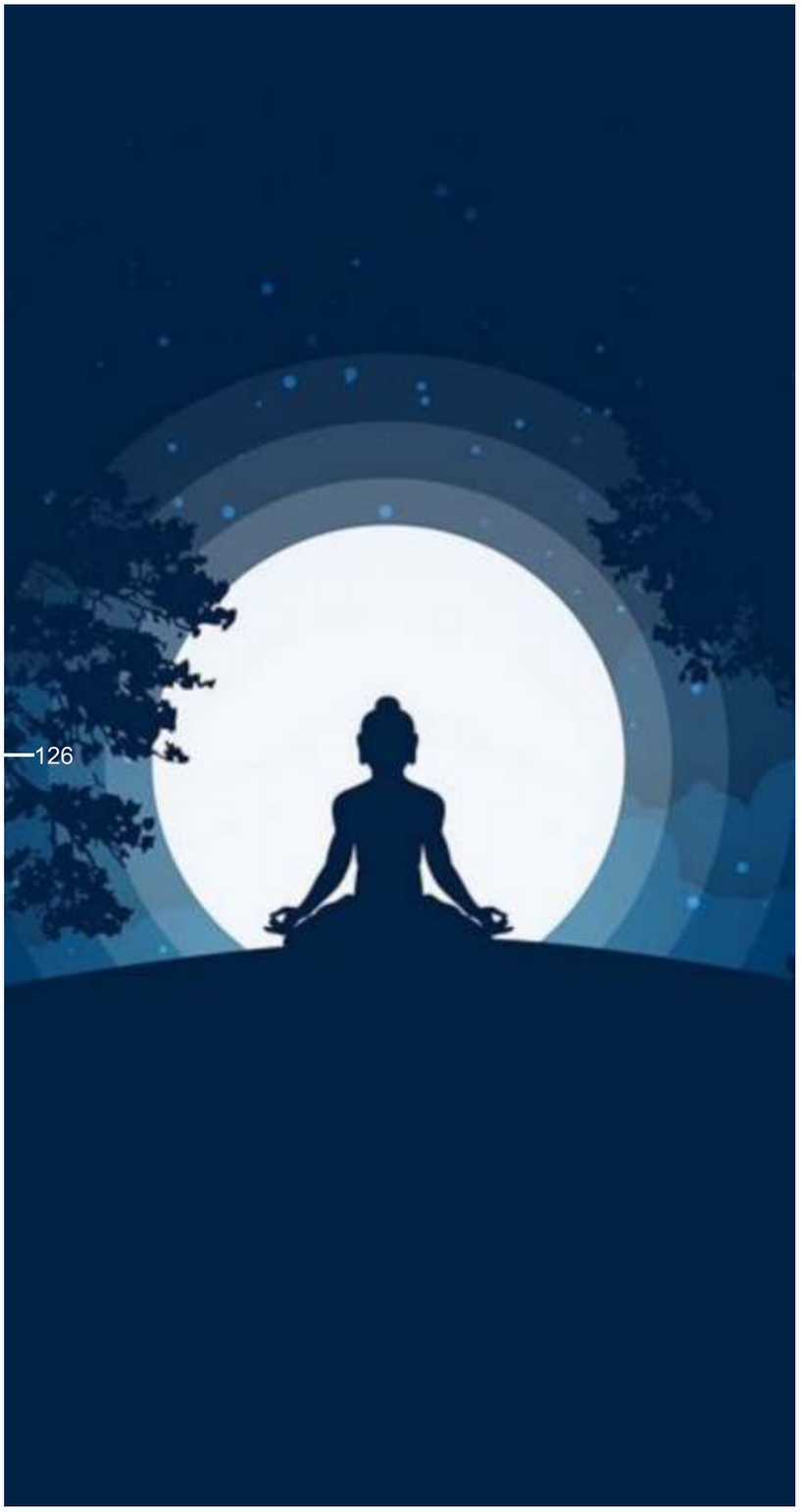



थी। जो किसी पुण्यशाली के प्रबल भाग्य व साधक की उज्ज्वल साधना की सूचक है। गुरुदेव एक बार मेरा हाथ देखकर फरमाने लगे। अरुण मुनि! तुम्हारी सूर्यरेखा भी मेरी भाँति प्रबल है। तुम्हारा यश संसार में चहुँ दिशाओं में प्रसारित होगा।

गुरुदेव की पिण्डलियां मांसल सहित थी। श्वेत वस्त्रों से आच्छादित कंचन काया जब वह मंद-मंद गति करते तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कोई जीवंत तीर्थ जर्रे-जर्रे को पवित्र करने हेतु भ्रमण कर रहा हो। महात्मा बुद्ध की भाँति लम्बित कर्ण एवं बाहुबली की भांति पावन चरण कमल लाखों भक्तों के लिए तीर्थ की तरह पूजनीय थे।

गुरुदेव के मुखकमल से जिन वाणी का अक्षय स्रोत निर्झरित होता था। जब नेत्रों पर चश्मा धारण कर विराजित होते तो मानो बृहस्पति स्वयं अवतरित हो गए हो। काया पर बालों का आच्छादन नाम मात्र था। उनकी संपूर्ण भव्य देहाकृति को देखकर ऐसा प्रतीत होता कि कोई हलुकर्मी आत्मा ने स्वर्ग से अवतार लिया हो तथा शीघ्र ही मोक्ष मार्ग को प्राप्त करने की अभिलाषी हो।

गुरुदेव का जीवन व उनकी बाह्याकृति व व्यक्तित्व अतिशय संपन्न था। आश्चर्यजनक बात यह है कि गुरुदेव के शरीर का भार आजीवन एक समान रहा। गुरुदेव का शरीर गठीला, संतुलित एवं स्फूर्तियुक्त था। यदि संक्षिप्त में वर्णन करूँ तो गुरुदेव मनमोहक शरीर के स्वामी थे। उनकी बाह्यकृति देखकर साधक का हृदय तृप्त हो जाता था। उनके दर्शनमात्र से ही मनोभिलाषित कामनाएं पूर्ण हो जाती थी। गुरुदेव की संतुलनीय छवि आज भी मन को रोमांचित्त कर देती है।

**ऐसे अतिशय संपन्न गुरुदेव को शतशः नमन!**

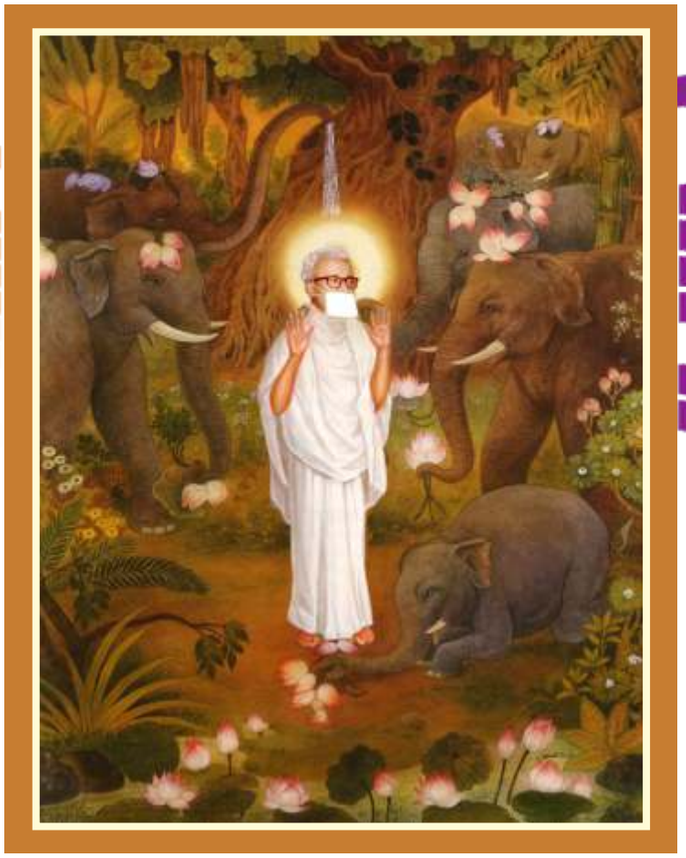

गुरुदेव का
साहस
हिमगिरी की
भाँति अविचल था।



# 94 | साहस और गुरुदेव

**साहस** वह मानसिक गुण या शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य शारीरिक बल के अभाव में भी महान से महान दुष्कर कार्य भी दृढ़तापूर्वक कर गुजरता है। साहस मानव के भीतर एक ऐसी शक्ति है जो संसार को बदलने का सामर्थ्य रखती है। यही गुण हमें संसार से एक अलग खास पहचान देता है। कहा भी है, **''उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः।''**

अर्थात् उद्यम से ही कार्य सिद्धि होती है। बैठे-बैठे संकल्प-विकल्प करने से नहीं।

गुरुदेव श्री का जीवन साहस, समझ व शौर्य का अनुपम उदाहरण था। बाल्यकाल से ही गुरुदेव अदम्य साहस के स्वामी थे। उन्होंने जिस कार्य को करने का एक बार निश्चय कर लिया तो उस कार्य की पूर्णता

होने पर ही विश्राम लेते थे। यही उनके जीवन की सफलता का रहस्य था। पूज्य गुरुदेव के संसारी दादा श्री जग्गूमल जी महाराज ने जब दीक्षा ग्रहण कर ली तो उसी समय गुरुदेव के मन में भी भाव जागृत हुआ कि मैं भी संयम के महामार्ग को अंगीकार करूँगा। मुझे भी अपने दादा जी के संस्कारों का अनुगमन करना है।

यद्यपि उस अवसर पर ही गुरुदेव के मन में यह तीव्र उत्कंठा थी कि मुझे शीघ्रातिशीघ्र गुरु चरणों में सर्वस्व समर्पण करना है परन्तु परिवार की ओर से उन्हें भारी विरोध का सामना करना पड़ा। सभी सदस्यों ने एक स्वर में कहा कि हम तुम्हें किसी भी कीमत पर इस मार्ग पर नहीं जाने देंगे। यदि पूज्य बाबा जी अपनी हठ से इस मार्ग पर चले गए तो क्या सारा परिवार ही साधु बन जाएगा? इस प्रकार लोभ, भय व तर्क-वितर्क से गुरुदेव को रोकने का प्रयास किया परन्तु गुरुदेव दृढ़ चट्टान की भाँति टस से मस नहीं हुए। उनका मन वैराग्य के रंग से रंजित था।



अब गुरुदेव की मनोवृत्ति पूर्णत: दीक्षा की अनुमति लेने में ही केन्द्रित थी। परन्तु परिवार मोह व सामाजिक अपयश के भय से आज्ञा देने में तनिक भी सहमत नहीं था। उन्हें यह भय भी था कि लोग कहेंगे कि मौसी ने ही सौतेला पुत्र समझकर घर से बाहर निकाल दिया।

परन्तु गुरुदेव की अंतरात्मा सांसारिक बंधनों से मुक्त होने के लिए छटपटा रही थी। इतनी अल्पवय में उन्होंने जो साहसिक कदम उठाए उसे सुनकर आप भी हैरान हो जाएंगे। परिवार के प्रतिबंध एवं पहरे के मध्य गुरुदेव चुपचाप अकेले घर छोड़कर चले गए। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे पच्चीस सौ वर्ष पूर्व के इतिहास ने स्वयं को फिर दोहराया। जैसे बुद्ध रात्रि में कपिलवस्तु से निकले थे वैसे ही गुरुदेव घर से चले गए।

वह युग मोबाइल का युग नहीं था। गुरुदेव को तो यह भी ज्ञात नहीं था कि वाचस्पति गुरुदेव कहाँ विराजमान हैं। उस समय गुरुदेव के साहस की सराहना करनी होगी कि वह अकेले बिना किसी भय के घर से निकल पड़े। बस! मन में एक विश्वास था कि गुरुदेव जहाँ भी होंगे, उन्हें अवश्य ढूँढ लूँगा। अंतत: अनेक स्थानों पर जाने के पश्चात उन्हें सफलता मिल ही गई। फिरोजपुर में पूज्य नाथूलाल जी महाराज एवं पूज्य वाचस्पति गुरुदेव विराजमान थे। गुरुदेव उन्हीं के चरणों में रहकर ज्ञान-ध्यान करने लगे।

कुछ दिनों पश्चात यह समाचार जैसे ही परिवार तक पहुँचा वे गुरुदेव को जबरन फिरोजपुर से घर वापस ले आए। परन्तु फिर भी गुरुदेव का आत्मबल क्षीण नहीं हुआ। घर पर स्त्रियां विलाप कर रही थीं। मोह व लोभ के लुभावने स्वप्न दिखाए गए। प्रत्येक व्यक्ति गुरुदेव के हौंसले को पस्त करना चाहता था। परन्तु गुरुदेव के इरादे फौलाद से भी अधिक मजबूत थे। अंतत: गुरुदेव के साहसी निर्णय के समक्ष सब को पराजय स्वीकार करनी पड़ी। गुरुदेव के दृढ़ निश्चय के आगे सबको झुकना पड़ा।

**जमाने ने मेरे आगे दुनिया पेश कर दी थी।**
**मगर मैंने तो अपना फायदा इंकार में समझा।।**

सगे-संबंधियों ने भी गुरुदेव को समझाना प्रारंभ कर दिया था परन्तु गुरुदेव साहसपूर्वक समस्त बाधाएं पार करते रहे।

गुरुदेव ने पन्द्रह पृष्ठ का वैराग्यमय पत्र परिवार वालों को लिखा। आखिर गुरुदेव की सुदृढ़ भावना के समक्ष परिवार वालों ने दीक्षा की आज्ञा दे ही दी। धन्य है गुरुदेव की साहसिक मनोवृत्ति जो युगों-युगों तक हम जैसे दुर्बल मानसिकता वाले साधकों को प्रेरणा व उत्साह से भरती रहेगी। गुरुदेव इसी साहस के बल पर संयम जीवन में भी निरंतर

आगे बढ़ते रहे।

सन् 1987 की एक घटना जो मेरे मानस पटल पर आज भी अंकित है। रोहतक में रात्रि दस बजे का समय था। श्री सुंदर मुनि जी महाराज को अचानक भोजन-विषाक्तता की समस्या उत्पन्न हो गई। जिससे स्वास्थ्य एकदम बिगड़ने लगा। उस हृदय विदारक दृश्य को देखकर सभी संत घबरा गए। पूज्य तपस्वी जी महाराज ने सोचा कि युवा संत हैं किसी प्रकार का जोखिम उठाना उचित नहीं। अत: अपवाद मार्ग का आलंबन लेना होगा। गृहस्थों को बुलाकर मुनि की सेवा का कार्य उन्हें सौंप देते हैं। जब गुरुदेव ने देखा कि तपस्वी जी महाराज की दृढ़ता डोलायमान हो रही है तो गुरुदेव ने आगे आकर परिस्थिति को अपने हाथ में ले लिया व बोले-इतनी शीघ्रतापूर्वक निर्णय नहीं लेना चाहिए। उन्होंने अपने अनुभव से कुछ निर्दोष विधियाँ बताई। संतों ने तद्नुसार उन विधियों को कार्यान्वित किया। कुछ समय पश्चात स्थिति सुधरने लगी। गुरुदेव बोले-अब मुनिराज के जीवन को कोई खतरा नहीं है। दो घंटे का कष्ट है, शीघ्र स्वास्थ्य लाभ होगा। धीरे-धीरे श्री सुंदर मुनि जी महाराज का स्वास्थ्य पूर्णत: अनुकूल हो गया।

इन घटना से ज्ञात होता है कि वृद्धावस्था में भी गुरुदेव का साहस हिमगिरी की भाँति अविचल था। इस घटना का मैं प्रत्यक्ष साक्षी हूँ। उसे देखकर हम सबके मन विचलित हो गए थे परन्तु गुरुदेव के साहस ने परिस्थितियों को क्षण भर में परिवर्तित कर दिया।

गुरुदेव श्री के बाल्यकाल की एक ओर घटना मैं आपको बतलाना चाहता हूँ। नवदीक्षित सुदर्शन मुनि जी का प्रथम चातुर्मास सढौरा गांव में था। पर्युषण पर्व के दिनों में गुरुदेव ज्वर से पीड़ित हो गए। गुरुदेव के ज्वर को देखकर संतों ने कहा-अभी बालक छोटा है। ज्वर में लुंचन क्रिया के कष्ट को सहन नहीं कर पाएगा। अत: क्षुरमुंडन करवा देते हैं। तत्पश्चात प्रायश्चित देकर शुद्धि करवा देंगे। परन्तु उस अवसर पर भी गुरुदेव का अदम्य साहस देखने योग्य था। भले ही कितना भयंकर रोग ही क्यों न हो। मैं मुनि मर्यादा के अनुसार ही लोच करवाऊँगा और गुरुदेव ने सहर्ष लोच करवाया। गुरुदेव के जीवन की यह साहसपूर्ण गौरवमयी गाथाएं युगों-युगों तक जीवित रहेंगी। गुरुदेव के इस दृढ़ निश्चय को देखकर वाचस्पति गुरुदेव के हर्ष की कोई सीमा नहीं थी। सत्य ही ऐसा शिष्य प्राप्त कर किसी भी गुरु का सिर गर्व से ऊँचा हो सकता है।

गुरुदेव के जीवन में ऐसे अनेक प्रसंग आए जब रोग के कारण उन्हें संयम से समझौता करने के सुझाव दिए गए। परन्तु गुरुदेव ने अपने साहस से सभी बाधाओं को पार कर लिया।

गुरुदेव को जीवन में कई बार विरोध का सामना भी करना पड़ा परन्तु उस पराक्रमी महापुरुष के समक्ष समस्त संघर्ष उनके विकास को और समुन्नत बनाते चले गए।

गुरुदेव के जीवन में कई ऐसे कठिन प्रसंग भी आए जब उन्हें अपने ही संघ के प्रति कठोर निर्णय लेने पड़े। एक माली बगिया को सजाने के लिए पौधे आरोपित करता है यदि किसी पौधे में कीड़ा लग जाए तो उसे जड़ से उखाड़ने में ही बगिया की भलाई है। गुरुदेव ने कई शिष्य रूपी पौधों का आरोपण किया और जब उन्हें ज्ञात हुआ कि शिष्य मर्यादा की लक्ष्मण रेखा लांघ रहा है तो उन्होंने उसे दृढ़तापूर्वक संघ से निष्कासित कर दिया। गम की आंधियों के समक्ष गुरुदेव की छाती वज्र की भाँति कठोर थी।

**ऐसे साहसी दृढ़ निश्चयी गुरुदेव को प्रणाम।**

संघ व समाज का उत्तरदायित्व वहन करना अपने आप में एक ज्येष्ठ कर्त्तव्य है।
विशिष्ट गुणों से युक्त साधक ही इस कर्त्तव्य का निर्वाह कर सकता है।

**गुरुदेव की जीवन शैली में इन समस्त गुणों का समावेश था।**

# 95 | उत्तराधिकार और गुरुदेव

**संघ व समाज** का उत्तरदायित्व वहन करना अपने आप में एक ज्येष्ठ कर्त्तव्य है। विशिष्ट गुणों से युक्त साधक ही इस का कर्त्तव्य का निर्वाह कर सकता है। शास्त्रीय ज्ञान के साथ-साथ समता, सेवा, समर्पण व समन्वय के गुणों से युक्त व्यवहार कुशल साधक ही संघ को नेतृत्व प्रदान कर सकता है। एक योग्य साधक ही समाज के लिए आध्यात्मिक उत्थान की दिशा का मार्ग प्रशस्त करने में सक्षम होता है।

गुरुदेव की जीवन शैली में इन समस्त गुणों का समावेश था। वाचस्पति गुरुदेव के संघस्थ सभी संत विचारशील व प्रतिभा संपन्न साधक थे। योग्यता के आधार पर सभी संत सर्वोतम गुणों के स्वामी थे। सभी साधकों को साधना के किसी न किसी क्षेत्र में प्रभुत्व प्राप्त था। जैसे कोई प्रवचन के क्षेत्र में, कोई अध्ययन, सेवा, समाज-जागृति इत्यादि क्षेत्रों में स्व-पर कल्याण की भावना से साधनारत थे। जब किसी संघ में योग्य साधकों का बाहुल्य हो तो किसी एक संत को संघशास्ता के रूप में प्रतिष्ठित करना सरल कार्य नहीं था।

संभवत: गुरुदेव का अनुशासन व चयन प्रक्रिया इतनी समीचीन होगी कि कोई साधक इसके विरोध में आवाज नहीं उठा सकता था। उस युग में साधक अधिकार प्राप्ति व महत्त्वकांक्षाओं के पोषण में नहीं, अपितु संयम साधना द्वारा आध्यात्मिक विकास के प्रति आस्थावान थे। गुरुदेव की प्रत्येक साधक के प्रति विनय भक्ति युक्त विशेष सेवा भावना ही उनके व्यक्तित्व को उभारने व संवारने में मुख्य कारण थी।

वाचस्पति गुरुदेव ने गुरुदेव सुदर्शन मुनि का अपने उत्तराधिकारी के रूप में क्यों चयन किया? यद्यपि इस संबंध में इतिहास के पन्नों पर स्पष्ट उल्लेख नहीं है। यह मेरे अन्त:करण की सात्त्विक स्फुरणा है कि इतना महान् उत्तरदायित्व सौंपने से पूर्व वाचस्पति गरुदेव ने गुरुदेव के भीतर अलौकिक गुणों के दर्शन अवश्य किए होंगे। मेरा व्यक्तिगत मन्तव्य है कि वाचस्पति गुरुदेव भी गुरुदेव की विनय भक्ति पूर्ण सेवा व संयम के प्रति विवेक रूपी गुणों से प्रभावित होंगे। किसी भी आकस्मिक समस्या का सामना करने का गुरुदेव में अद्‌भुत सामर्थ्य था।

गुरुदेव शास्त्रोक विधि के अनुसार भी कुल संपन्न, जाति संपन्न व श्रुतसंपन्न साधक थे। गुरुदेव का अध्ययन गंभीर था तो अध्यापन कला भी बेमिसाल थी।



अल्प दीक्षा पर्याय में सफल स्वतंत्र चातुर्मास संपन्न कर गुरुदेव ने संघ में अपनी योग्यता का परिचय भी दिया था। गुरुदेव के दर्शनार्थ भी सदैव गुरुभक्तों का तांता लगा रहता था। श्रद्धालुओं के जयकारों के मध्य भी गुरुदेव ने अपनी गुरु-परंपरा की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाए रखा। गुरु आज्ञा को सन्मुख रखकर ही वे किसी कार्य को प्रारंभ करते थे। गुरुदेव में आग्रह बुद्धि नहीं थी। यदि गुरु किसी कार्य का निषेध करते तो उसे विनय पूर्वक स्वीकार कर लेते।

प्रवचन दक्षता, व्यवहार-कुशलता, दृढ़-आचरण व आगमों में निष्णातता उनके वैराग्यमय जीवन को और अधिक काँतिमान बना रही थी। गुरुदेव शिष्यों के उद्धारक व नवीनता और प्राचीनता के मध्य एक सुदृढ़ सेतु थे। पाप भीरू व संघ प्रभावना में प्रवीण थे। श्रावक वर्ग की

आस्था के केन्द्र थे।

गुरुदेव की भाषा संयमित थी एवं प्रकृति गंभीर थी। प्रत्येक कार्य में विवेक था। गुरुदेव की मुख्य विशेषता थी कि उनका व्यवहार सभी के प्रति आत्मीय पूर्ण था। प्रत्येक व्यक्ति को प्रोत्साहित करने एवं कार्य विशेष में आगे बढ़ाने का अद्‌भुत गुण था। चारित्र-निष्ठ, उदार-हृदय व मिलन सारिता का गुण रोम-रोम में समाया हुआ था।

सौम्य मुखमंडल, समुन्नत भाल, स्नेहिल व्यक्तित्व व साधना के प्रति दृढ़ता गुरुदेव की अस्मिता को और भी आकर्षक बना देते थे।

स्थानकवासी परंपरा के पक्षधर गुरुदेव ने सिद्धांतों के प्रति कभी समझौता नहीं किया। विचारों में परिपक्वता, बड़ों के प्रति विनम्रता, सहभागियों के प्रति सम्मान व शिष्यों के प्रति प्रशस्त प्रेमभाव उनके जीवन के अनुपम गुण थे। संगठन प्रिय थे। संघर्षों से कोसों दूर तक कोई वास्ता नहीं था।



जब वाचस्पति गुरुदेव ने गुरुदेव के इन समस्त गुणों का अनुचितंन किया तो तभी उन्होंने गुरुदेव को मदनकुल का अधिनायक मनोनीत किया होगा।

गुरुदेव के जीवन की महती उपलब्धि यह भी थी कि इतने महान पद को ग्रहण करने के पश्चात् भी उनमें अहंकार का लेशमात्र भी चिन्ह नहीं था। संघशास्ता के पद पर आसीन होकर भी उन्होंने कभी अपने गुणों को धूमिल व साधना को विस्मृत नहीं किया।

**ऐसे महागुरु को कोटिशः नमन।**

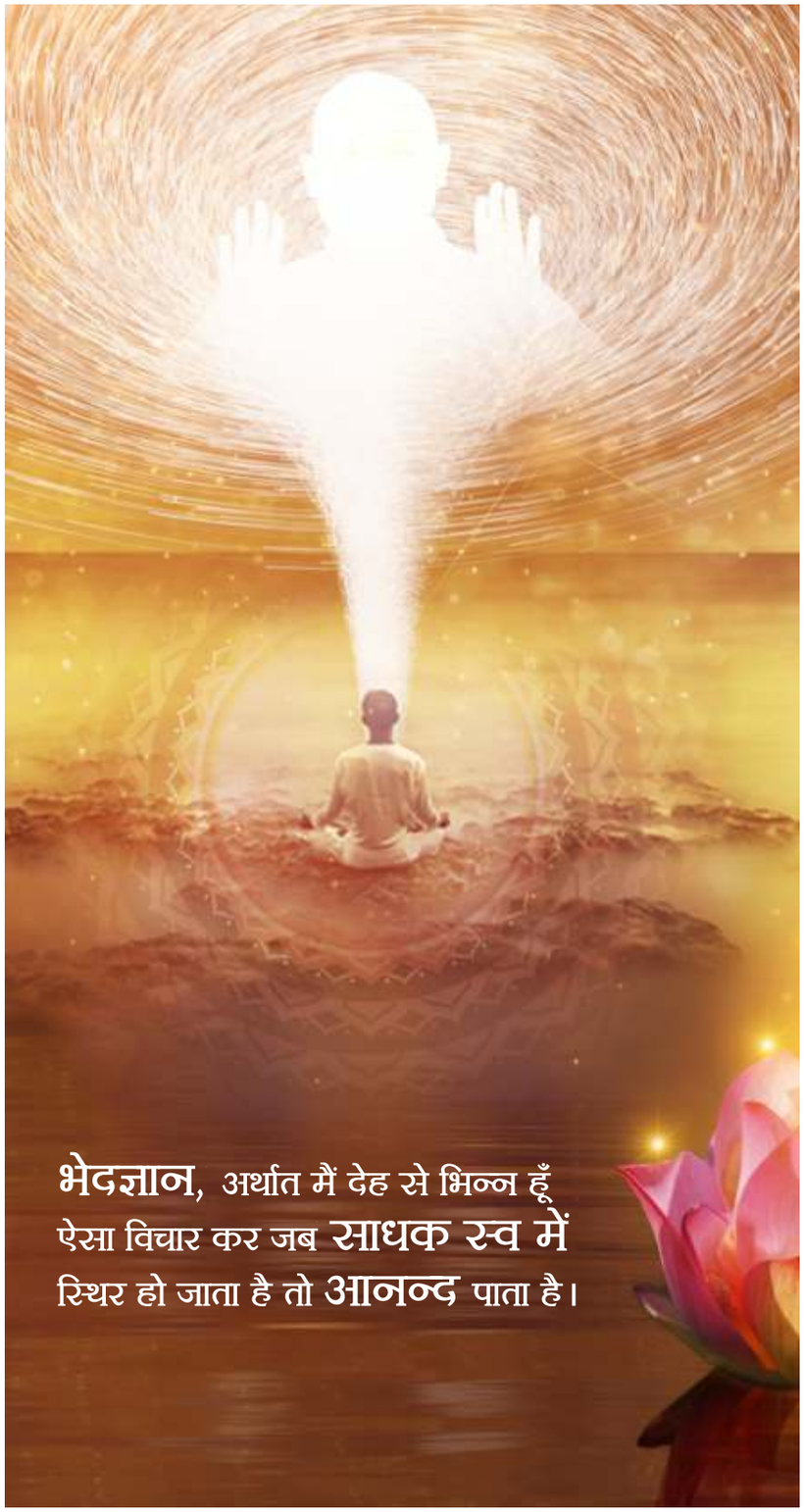

**हे गुरुदेव!** आप इस संघ के
अधिष्ठाता थे।
**गुरु मदन** की इस खिलखिलाती
वाटिका के बागवान थे।
आपके सुव्यवस्थित **मार्ग दर्शन**
को प्राप्त कर
**इस संघ** के विकास को
एक नई दिशा प्राप्त हुई।

# 96 | धर्म की बगिया और गुरुदेव

**हे गुरुदेव!** आप इस संघ के अधिष्ठाता थे। गुरु मदन की इस खिलखिलाती वाटिका के बागवान थे। आपके सुव्यवस्थित मार्ग दर्शन को प्राप्त कर इस संघ के विकास को एक नई दिशा प्राप्त हुई। बगिया का प्रत्येक पौधा संयम की सुवास से महक रहा था। श्रावक वर्ग में नित्यप्रति उमंग का संचार था। परन्तु प्रकृति के इस अटल सत्य से कोई भी विमुख नहीं हो सकता कि संसार में जिस जीव का आगमन हुआ है, उसकी गमन भी अश्वयंभावी है। प्रत्येक संयोग के पीछे वियोग की सघन काली छाया है।

अक्सर संसार में हम देखते हैं कि जब कोई विशालकाय वट वृक्ष उखड़ता है तो उसके साथ उसकी सघन छाया की भी विदाई हो जाती है। परन्तु महापुरुषों का यह अतिशय होता है कि उनके जाने के उपरांत भी उनकी शीतल छाया संघ व समाज का आश्रय स्थल बनी रही है।



हे पालनहार गुरुदेव! आपश्री द्वारा संचित यह बगिया आज भी आपकी छत्रछाया में लहलहा रही है। पल्लवित-पुष्पित हो रही है। आपश्री द्वारा आरोपित कुछ बीज वृक्ष बने तो कुछ बीज वट वृक्ष बन गए हैं। आपने जिस व्यवस्थित ढंग से इस संघ का संजोयन किया आपके मुनि भी उसी मार्ग पर अग्रसर है।

गुरुदेव! आपके श्रावकवर्ग में भी आज भी वही भक्ति व आस्था की लहर है। वे आपके चरणों में वैसे ही समर्पित हैं जैसे आपकी विद्यमानता में थे। आपका स्मरण होते ही उनके हृदय में विद्युत की भाँति भक्ति का संचार होने लगता है। परन्तु कुछ कृतघ्न श्रावक, अपनी गुरु-परंपरा व मुनि संघ से किनारा करने लगे है। उन्हें गुरुओं का उपकार नहीं स्वार्थ सर्वोपरि लगता है।

आपने स्नेह व समन्वय की मधुर ध्वनि से समाज को झंकृत किया था। वह सुमधुर स्वर मंद होता जा रहा है। कुछ शिथिल आस्थावान श्रावक कट्टरता के कारागृह में कैद हो गए हैं। साहस पूर्वक कट्टरता का विरोध करने वाले दृढ़धर्मी श्रावकों का संख्या न्यून होती जा रही है।

मोबाईल व म्यूजिक के कोलाहल के कारण युवा वर्ग में धर्म-श्रवण की रुचि मंद होती जा रही है। जन सैलाब भले ही यथावत् चल रहा है परन्तु श्रद्धाओं का सैलाब कमतर होता जा रहा है।

हे गुरुदेव! आपकी सुदर्शन वाटिका ने निरंतर सकारात्मकता का रुख अपनाया है। आपने संघ व समाज की प्रगति का जो सुनहरा स्वप्न देखा था उसे निरंतर आगे बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है। कुछ अपूर्ण कार्यों को पूर्णता की ओर ले जाने का क्रम उत्कर्ष पर है। आज उत्तर भारत के गाँव-गाँव में आपके परिवार का वर्चस्व है।

आपके मुनिसंघ में भी अभिवृद्धि हुई है। कई पुण्यात्मा संयम मार्ग पर आरूढ़ हुई हैं। बगिया में कुछ नवीन कोपलों का भी आविर्भाव हुआ है।

जैसा कि मिलन व विछोह सृष्टि का नियम है। आपकी अनुपस्थिति में संघ में भी कुछ विघटन हुआ। परिवार में विचार भेद के कारण कुछ बिखराव अवश्य हुआ। परंतु आपकी कृपा से कभी टकराव की स्थिति नहीं बनी। मन में आज भी पूर्णत: समाधि का भाव है।

हे गुरुदेव! आप दैहिक दृष्टि से संसार को अलविदा कह गए हो परन्तु आपकी स्मृतियों के दीपक आज भी हमारे हृदय में जगमगा रहे हैं। अहर्निश आपका स्मरण मानस को भक्ति से ओत-प्रोत कर रहा है।

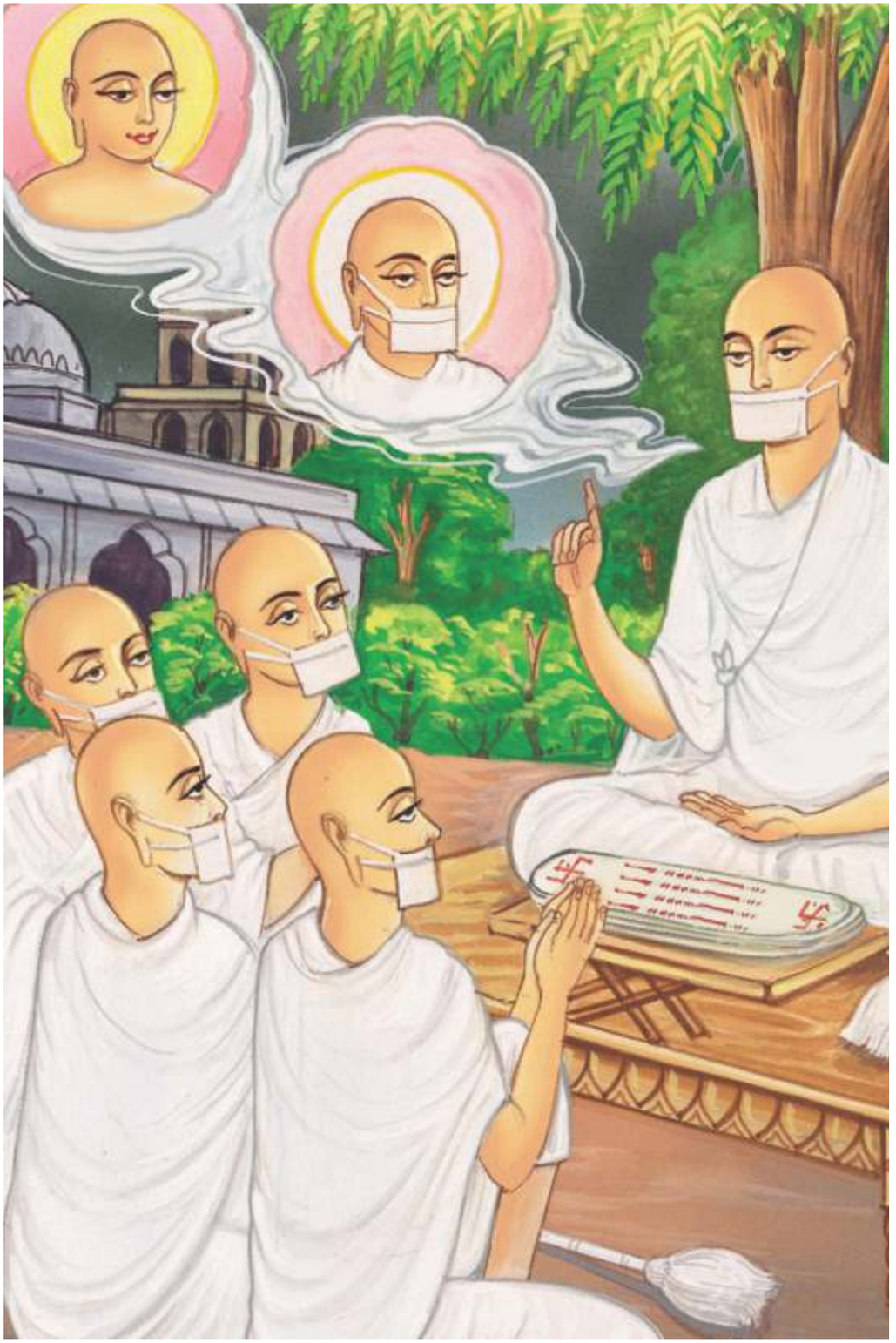

गुरुदेव! आपके जन्म शताब्दी महोत्सव को मनाने का हमें अहोभाग्य प्राप्त हुआ है। इस अवसर पर संपूर्ण उत्तर भारत में दीपावली जैसा उत्साहमय वातावरण है। आपके उपकारों का स्मरण कर सभी का हृदय भक्ति से तरंगित है।

गुरुदेव! आपने हमारे भीतर जो ज्ञान का दीपक प्रज्ज्वलित किया है। वह मशाल बनकर आज समाज को प्रकाशित कर रहा है। आपके अनुयायियों ने ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड का गठन कर इस कार्य को द्रुत गति से आगे बढ़ा रहे हैं। स्वाध्याय, मौन, ध्यान व साधना के रूप में आपका प्रतिबिम्ब हमारे समक्ष तैर रहा है।

गुरुदेव आप जैसा विलक्षण व्यक्तित्व युगों-युगों पश्चात ही इस धरा पर अवतरित होता है। मैं अक्सर सभा में भी श्रावकों के समक्ष स्वीकार करता हूँ कि हजारों अरुण मुनि मिलकर भी एक सुदर्शन नहीं बन सकते। क्योंकि यह अरुण मुनि सदैव आपके चरणों से जुड़कर रहना चाहता है। आपकी भक्ति में ही सराबोर रहने का इच्छुक है।



**आपके नाम की ज्योति दिल में जलाए हुए हैं।**
**हम हमेशा आपको महबूब बनाए हुए हैं।।**

**ऐसे परम उपकारी गुरुवर को शतशः नमन।**

मेरे श्रद्धेय गुरुदेव! आपका मुनिसंघ सदैव जयवंत था। वर्तमान में जयवंत है व भविष्य में भी जयवंत रहेगा।

# 97 | मुनिसंघ और गुरुदेव

**गुरुदेव** भले ही देहरूप से पंचत्व से विलीन हो गए हो। परन्तु गुरुदेव हमारी स्मृतियों में आज भी जीवित है। सत्य तो यह है कि एक शिष्य के जीवन में गुरु की कभी मृत्यु नहीं हो सकती। गुरु आदर्श रूप में उसके हृदय में सदैव जीवित रहते हैं। गुरुदेव के पावन आदर्श और संयमी जीवन ही एक शिष्य के जीवन का आधार होता है।

हे गुरुदेव! आपका मुनिसंघ आपके द्वारा प्रदर्शित आदर्शों पर चलने के लिए प्रतिबद्ध है। मेरे श्रद्धेय गुरुदेव! आपका मुनिसंघ सदैव जयवंत था। वर्तमान में जयवंत है व भविष्य में भी जयवंत रहेगा। आपके संघ की समाचारी व आपश्री द्वारा निर्देशित प्राचीन संयमी पद्धति आज भी पूर्ववत गतिमान है। संघ का प्रत्येक मुनि आपके प्रति निष्ठावान है। आज भी संघ में आचार्य, उपाध्याय व प्रवर्तक की कोई चयन प्रक्रिया नहीं है। संघस्थ प्रत्येक मुनि के जीवन का एकमात्र लक्ष्य है–सेवा, स्वाध्याय व साधना।

हे मेरे प्राणाधार गुरुदेव! आपके देवलोक गमन के पश्चात् संघ में नवीन विस्तार हुआ है। आठ संयमनिष्ठ मुनियों के इस संघ का नाम है 'मुनि मया–मदन–सुदर्शन संघ।' संघस्थ मुनि आपके पद्चिन्हों का अनुकरण करते हुए समाधि पूर्वक विचरण कर रहे हैं। आपश्री द्वारा निर्मित समाचारी का अनुपालन ही हमारे जीवन का गौरव है। आपके द्वारा उल्लिखित नियमों पर चलने के लिए प्रत्येक मुनि संकल्पशील है। आपश्री द्वारा निर्दिष्ट पथ पर अग्रसर होते हुए जिनशासन की सेवा करना ही प्रत्येक मुनि के जीवन का उद्देश्य है।

हे करूणाशील गुरुदेव! हमने मन की शाँति व संयम के पालन के लिए गृहस्थ जीवन का त्याग किया है। आज आपकी कृपा से सभी मुनि शांति पूर्वक संयम का पालन कर रहे हैं। सभी मुनि तर्क–वितर्क, राग–द्वेष से उपरत होकर समत्व की साधना में प्रयासरत हैं। बिना किसी वैर–विरोध के सभी को योग्य सम्मान देना ही संघस्थ मुनियों की शिक्षा है। संघ के मुनियों की यही उज्ज्वल भावना है समाज से नकारात्मकता दूर कर सकारात्मकता का प्रचार करे। गुरु मयाराम, गुरुमदन, गुरु सुदर्शन व गुरु तपोधनी जी महाराज के आदर्श ही इस संघ की आधारशिला है।

सामायिक हमारी आराधना है। मुखवस्त्रिका का हमारा परिचय है, स्थानकवासी समाज ही जिनशासन का मूलपथ है। निराकार की साधना ही यथार्थ है। संघस्थ मुनियों के जीवन का एकमात्र लक्ष्य संयम पूर्वक समाधि प्राप्त करना है। इस आदर्श की प्राप्ति के लिए उन्हें प्रत्येक बलिदान स्वीकार्य है।

संघ के मुनियों के लिए गुरु आज्ञा सर्वोपरि है तो गुरु भाईयों का भी यहाँ गुरुवत् सम्मान है। सभी का मन स्नेह व प्रेम की भावना से आप्लावित है। आपकी धारणा को पोषित करने वाला यह संघ समन्वय का समर्थक है, परन्तु संयम के सिद्धांतों से समझौता कदापि संभव नहीं।

हे मेरे आराध्य गुरुदेव! ये समस्त मुनिवृंद एवं श्रावक वर्ग आपके चरणों में समर्पित है। आज जो कुछ भी मुझे सम्प्राप्त है वह सब आपकी

कृपा का फल है। आपका यह तुच्छ दास आपके प्रति आज भी रोम-रोम से समर्पित है। आप ही इस सुंदर बगिया के माली है। चर्म-चक्षुओं से ओझल हुए तो क्या हुआ हृदय में तो आपकी सुवास है। मेरी हर श्वास-श्वास में आपका निवास है। संघस्थ मुनियों के लिए आप ही मार्ग है आप ही माईलस्टोन है। आपकी जीवन शैली ही हमारी मंजिल है। इस संघ पर अपनी कृपा का वरद हस्त सदैव बनाए रखना। हम इसी प्रकार संयम के मार्ग पर दृढ़ता पूर्वक पग बढ़ाते रहे। असंयम की झूठी चमक हमें कभी भूल से भी भ्रमित न कर पाएं।

हे मेरे सर्वस्व गुरुदेव! यह संयम की पवित्र चादर आपकी देन है। आपने ही हमें दीक्षा मंत्र दिया। इस समाचारी का पालन हमारा कर्त्तव्य है। आपके दृष्टिकोण का अनुसरण हमारा लक्ष्य है। रोम-रोम से आपके पद-पंकज में समर्पित मुनिसंघ भी आपका है।

**ऐसे मेरे महान् गुरुदेव को बारंबार वंदन!**

# चातुर्मास शृंखला

| | | |
|---|---|---|
| 1 | 1942 | सढ़ौरा |
| 2 | 1943 | चांदनी चौक, दिल्ली |
| 3 | 1944 | बड़ौत |
| 4 | 1945 | हांसी |
| 5 | 1946 | अहमदगढ़ |
| 6 | 1947 | मूनक |
| 7 | 1948 | सुनाम |
| 8 | 1949 | जीन्द |
| 9 | 1950 | चांदनी चौंक, दिल्ली |
| 10 | 1951 | पुरानी सब्जी मंडी,दिल्ली |
| 11-17 | 1952-58 | चांदनी चौंक, दिल्ली |
| 18 | 1959 | बड़ौत |
| 19 | 1960 | रोहतक |
| 20 | 1961 | अमृतसर |
| 21 | 1962 | होशियारपुर |
| 22 | 1963 | अमृतसर |
| 23 | 1964 | सोनीपत |
| 24 | 1965 | रोहतक |
| 25 | 1966 | मूनक-जाखल |
| 26 | 1967 | भटिण्डा |
| 27 | 1968 | जयपुर |
| 28 | 1969 | अलवर |
| 29 | 1970 | चांदनी चौंक, दिल्ली |
| 30 | 1971 | बड़ौत |
| 31 | 1972 | जीन्द |
| 32 | 1973 | गन्नौर |
| 33 | 1974 | रोहतक |
| 34 | 1975 | होशियारपुर |
| 35 | 1976 | जालन्धर |
| 36 | 1977 | फरीदकोट |
| 37 | 1978 | समालखा |
| 38 | 1979 | रोहतक |
| 39 | 1980 | सफीदों |
| 40 | 1981 | गोहाना |
| 41 | 1982 | जीन्द |
| 42 | 1983 | बरनाला |
| 43 | 1984 | सोनीपत |
| 44 | 1985 | रोहतक |
| 45 | 1986 | सिरसा |
| 46 | 1987 | गोहाना |
| 47 | 1988 | गन्नौर |
| 48 | 1989 | कान्धला |
| 49 | 1990 | नरवाणा |
| 50 | 1991 | सोनीपत |
| 51 | 1992 | शालीमार बाग, दिल्ली |
| 52 | 1993 | त्रिनगर, दिल्ली |
| 53 | 1994 | बड़ौत |
| 54 | 1995 | सुन्दर नगर, लुधियाना |
| 55 | 1996 | सुनाम |
| 56 | 1997 | जीन्द |
| 57 | 1998 | अंबाला |

# 98 | चातुर्मास शृंखला और गुरुदेव

**एक** सुप्रसिद्ध कहावत है-

**''बहता पानी निर्मला, पड़ा गंदला होय।'**
**साधु तो रमता भला, दाग न लागे कोय।।''**

जैन संतों के विषय में यह कहावत सटीक बैठती है क्योंकि जैन श्रमण आजीवन निरंतर पग-विहार करते हैं। जैसे बहती हुई नदी अपने शीतल जल से राहगीर की प्यास शांत करती है। उसी प्रकार विचरण करते हुए संत, जन-जन की भव-भव की प्यास शांत करते हैं। अपनी अमृतमयी वाणी द्वारा लोगों में अध्यात्म का संचार करते हैं। पाद-विहार करना वर्तमान में जैन साधु की पहचान बनी हुई है। वाहन का उपयोग साधु के लिए सर्वथा वर्जित है।



आगमों में विधान है कि साधु आठ मास तक जन-जन को प्रतिलाभित करते हुए विचरण करें। मुनिराज इन आठ महीनों में एक स्थान पर एक माह तक रुक सकते हैं। साध्वी जी दो माह तक रुक सकती है। परन्तु आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा से लेकर कार्तिक सुदी पूर्णिमा तक अर्थात चार महीने साधु-साध्वी धर्म की रक्षा एवं संयम की सुरक्षा हेतु एक स्थान पर विराजते हैं। जिसे हम वर्षावास या चातुर्मास भी कहते हैं क्योंकि उन दिनों बरसात के कारण जीवों की उत्पत्ति बढ़ जाती है। वनस्पति से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा की आशंका बढ़ जाती है। अत: साधु इस हिंसा का पात्र न बनें। एक स्थान पर रुककर निर्दोष संयम एवं धर्म की प्रभावना करें। इसी हेतु भगवान ने चातुर्मास का प्रावधान किया है।

गुरुदेव ने अपने संयम काल में 57 चातुर्मास किए। महत्त्व इस बात का नहीं कि किस साधक ने कितने चातुर्मास किए। महत्त्व इस बात का है कि चातुर्मास में संयम साधना के साथ-साथ सर्वजन उपयोगी क्या-क्या कार्य हुए? धर्म की प्रभावना कितनी व किस प्रकार हुई। क्योंकि चातुर्मास का मुख्य उद्देश्य संयम के साथ-साथ जन जागरण का भी होता है।

गुरुदेव के समस्त चातुर्मास स्वयं में एक कीर्तिमान रहे हैं। गुरुदेव ने तप, त्याग, संयम व धर्म प्रभावना के द्वारा लोगों के दिलों पर अमिट छाप अंकित की है। यहाँ मैं आपको गुरुदेव के चातुर्मासों से संबंधित कुछ विशिष्ट जानकारी उपलब्ध करवा रहा हूँ :-

गुरुदेव का प्रथम चातुर्मास पूज्य वाचस्पति गुरुदेव एवं पूज्य श्री राम जी लाल जी महाराज की नेश्राय में संढोरा गांव में हुआ। यह गुरुदेव की साधना काल का प्रथम चातुर्मास था। जो आज संढोरा गाँव का स्वर्णिम इतिहास बन गया। उसके पश्चात गुरुदेव के 1943 और 1945 का चातुर्मास भी वाचस्पति गुरुदेव के सान्निध्य में हुआ। 1944 का चातुर्मास बड़ौत में पूज्य मूलचंद जी महाराज के श्री चरणों में हुआ। एक चातुर्मास सन् 1947 में पूज्य श्री बनवारी लाल जी महाराज की निश्राय में मूनक में हुआ। 1949 का जींद चातुर्मास पूज्यश्री अमीलाल जी महाराज के चरणों में हुआ। सन् 1952 का चातुर्मास पूज्यश्री रामजीलाल जी की निश्राय में हुआ। सन् 1953, 54, 63, 85 का चातुर्मास पूज्य भंडारी जी महाराज के सान्निध्य में हुआ। तत्पश्चात सन् 1964 से 66, 68-70 के छ: चातुर्मास पूज्य श्री फूलचंद जी महाराज के

श्री चरणों में क्रमश: सोनीपत, रोहतक, मूनक, जाखल, जयपुर व चांदनी चौक में हुए।

पूज्य श्री जग्गूमल जी महाराज के निश्राय में सन् 1946, 50, 51, 52, 53-58 तक चातुर्मास किए।

ऊपर लिखित वर्णन से आप यह अनुमान सरलतापूर्वक लगा सकते हैं कि गुरुदेव के जीवन के प्रारंभिक चातुर्मास बड़े-बड़े महापुरुषों की छत्रछाया में हुए। गुरुदेव को सभी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ क्योंकि गुरुदेव की प्रकृति सरल, मिलनसार, मधुरभाषी व बड़ों की सेवा व सम्मान करने वाली थी। वे प्रत्येक संत के साथ स्वयं को एडजस्ट कर लेते थे। उन्होंने प्रत्येक महापुरुष की विनय भक्ति की, गुरु-तुल्य सम्मान दिया व उनकी कृपाएं प्राप्त कीं।

गुरुदेव अपने शिष्य को अन्य संतों के पास तभी भेजते है जब उन्हें पूर्ण विश्वास हो कि मेरा शिष्य सर्वगुण सम्पन्न है। विनयशील, आज्ञाकारी व इंगियागार सम्पन्न है। परिस्थिति के अनुसार स्वयं को ढाल सकता है। गुरुदेव सेवा भक्ति द्वारा सभी का मन जीत लेते थे। सभी संत चाहते थे कि मुनि सुदर्शन मेरे साथ चातुर्मास करें तभी दादा गुरुदेव श्री नाथूलाल जी महाराज ने अपने अंतिम समय में यह भावना प्रकट की कि मुनि सुदर्शन ही मेरी सेवा में रहेंगे।

गुरुदेव की चातुर्मास तालिका से यह विदित होता है कि गुरुदेव ने 25 चातुर्मास बड़ों की निश्राय में किए और 32 स्वतंत्र चातुर्मास किए।

गुरुदेव ने उत्तर भारत को ही अपना कर्म क्षेत्र बनाया। 57 चातुर्मासों में हरियाणा में 21, पंजाब में 14, दिल्ली में 15, यू.पी. में 5 व राजस्थान में दो चातुर्मास किए। जीवनकाल का अधिकतर समय गुरुदेव उत्तर भारत में ही विचरे व अपनी कृपा वर्षण करते रहे। दो चातुर्मास राजस्थान में कर उन्होंने उन क्षेत्रों को भी प्रतिलाभित किया।

गुरुदेव ने सर्वाधिक दस चातुर्मास दिल्ली चाँदनी चौक में किए। द्वितीय स्थान पर रोहतक में पाँच चातुर्मास हुए। तृतीय स्थान जींद व बड़ौत को संयुक्त रूप से मिला। यहाँ गुरुदेव ने चार-चार चातुर्मास व्यतीत किए। चतुर्थ स्थान पर सोनीपत का नंबर आता है। वहाँ गुरुदेव के तीन चातुर्मास हुए। इसके पश्चात गन्नौर, होशियारपुर, अमृतसर, मूनक व सुनाम को भी दो-दो चातुर्मासों का लाभ प्राप्त हुआ।

सन् 1968 में जब गुरुदेव को संघ प्रमुख बनाया गया तो उस समय गुरुदेव के संघ में 15 संत थे और तीन स्थानों को चातुर्मास का लाभ मिला। सन् 1970 में गुरुदेव के चौदह संत रहे व दो क्षेत्रों में चातुर्मास हुए अर्थात गुरुदेव के जीवन में एक समय ऐसा भी था जब उनकी निश्राय में दो ही चातुर्मास थे। परन्तु समय के साथ गुरुदेव की पुण्यवाणी भी वर्द्धमान होने लगी। 1994 से 1996 तक गुरुदेव के संघ के सात क्षेत्रों में चातुर्मास हुए।

यह गुरुदेव के सद्गुणों का ही प्रभाव था कि जिस क्षेत्र में गुरुदेव का पदार्पण होता था वह क्षेत्र गुरुदेव की यश गाथाओं का गुणगान करता नहीं अघाता था। स्थानीय समाज की सदैव यही भावना रहती कि गुरुदेव का पुन:-पुन: पदार्पण हमारे क्षेत्र में हो।

**धन्य है ऐसे महाप्रतापी गुरुदेव की।**

गुरु सेवक परिवार के लगभग पांच हजार प्रमाणिक सदस्य हैं।
इस संगठन के सदस्य व्यवस्थित रूप से कार्य करने में सक्षम है।
संघशास्ता गुरुदेव के समृद्ध जैन समाज के स्वप्न को साकार करना
इस संगठन का मुख्य उद्देश्य है।

# 99 | गुरुसेवक परिवार और गुरुदेव

**गुरुओं** के प्रति बहुमान व सेवा-भक्ति की प्रबल भावना प्रत्येक श्रावक का कर्त्तव्य है। क्योंकि श्रावक वर्ग पवित्र संबंध से बंधकर धर्मरूपी रथ को आगे बढ़ाने का सत्कार्य करते हैं। संत व श्रावक का जीवन अन्योन्य आश्रित है। संत समाज में धर्म की संजीवनी का संचार करता है तो श्रावक संत के संयम निर्वाह में सहायक है। अत: संत समाज के साथ-साथ श्रावक वर्ग का सुदृढ़ होना भी अनिवार्य है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए गुरुदेव ने अपने जीवन में कई नवीन क्रांतियाँ की।

सन् 1998 के अंबाला चातुर्मास में गुरुदेव ने मुझे युवा वर्ग को तत्त्व ज्ञान से समृद्ध करने का दायित्व दिया। मैंने वहाँ निरंतर दो महीने बच्चों को अध्ययन करवाया। उनमें से ग्यारह बच्चों ने विशेष रूप से तत्त्व ज्ञान को जीवन व्यवहार का अंग बनाया। उस अवसर पर मेरे भीतर से उनके लिए गुरु सेवक का संबोधन ध्वनित हुआ। मैंने उनका गुरुदेव के चरणों में गुरु सेवक के नाम से परिचय करवाया। गुरुदेव ने प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया।

इस प्रकार गुरुसेवक परिवार का श्री गणेश गुरुदेव की उपस्थिति में अंबाला चातुर्मास में हो गया था। यहाँ तक की अंबाला के भाई-बहनों में भी उन बच्चों की गुरु सेवक के रूप में पहचान थी। वर्तमान में भी उन युवकों को स्मरण है कि उनके ग्रुप का नाम गुरुसेवक रखा गया था। कालांतर में गुरुदेव की जन्मस्थली रोहतक एवं कांधला में भी गुरुदेव के आशीर्वाद से वहाँ गुरुसेवक परिवार का विधिवत संगठन बना। इस संगठन को गुरुदेव का पूर्णत: समर्थन प्राप्त था।

गुरुदेव के स्वर्गवास के पश्चात् गुरुसेवक परिवार के विस्तार में कुछ व्यवधान रहा। परन्तु 2015 में गुरु नगरी अमृतसर में गुरुसेवक परिवार का विधिवत पुनर्गठन हुआ। उस अवसर पर ग्यारह मैंम्बरों का संजोयन भी बहुत कठिनाई में हुआ। तत्पश्चात गुरुदेव के अप्रत्यक्ष आशीर्वाद से सदस्यों की संख्या व लोकप्रियता में निरतंर अभिवृद्धि होने लगी। सन् 2015 में ही लुधियाना हैबोवाल में गुरुसेवक परिवार की राष्ट्रीय कार्यकारिणी का प्रथम सम्मेलन हुआ। जिसमें तीन सौ गुरुसेवक उपस्थित थे। तदुपरांत 2016 में जलंधर व 2017 में बड़ौत में भी गुरुसेवक परिवार का विशाल सम्मेलन हुआ। परन्तु 2018, 2019 व 2020 के वार्षिक सम्मेलन की धूमधाम विशेष रूप से दर्शनीय थी। दिल्ली में जी.एस.पी. ट्रेडफेयर का आयोजन भी हुआ। हजारों की संख्या में गुरु सेवकों ने अपनी उपस्थिति दर्ज करवाकर आयोजन की शान को चार चाँद लगाए।

वर्तमान समय में उत्तर भारत में इस संगठन की प्रत्येक शहर में शाखा का गठन हो चुका है। संभवत: इस संगठन के लगभग पांच हजार प्रमाणिक सदस्य भी बन चुके हैं। इस संगठन के सदस्य व्यवस्थित रूप से कार्य करने में सक्षम है। संघशास्ता गुरुदेव के समृद्ध जैन समाज के स्वप्न को साकार करना इस संगठन का मुख्य उद्देश्य है। युवाओं को धर्म के एक मंच पर संगठित करने के लिए यह संगठन प्रयासरत है। साम्प्रदायिक भावनाओं से ऊपर उठकर सभी संयमी संतों की सेवा

करना इस संगठन का लक्ष्य है। इस संगठन का मुख्य उद्घोष है कट्टर नहीं, पवित्र बनो। वर्तमान समय में जैन समाज के सन्मुख आने वाली समस्याएं व समाधान गुरुसेवक गहन विचार विमर्श पूर्वक उन्हें दूर करने का प्रयास करते हैं।

गुरुसेवक परिवार किसी एक संत, संगठन, संघ या संप्रदाय से संलग्न नहीं है। गुरुसेवक विशिष्ट रूप से किसी भी स्थान पर जाने के लिए स्वतंत्र है। क्योंकि गुरुसेवक परिवार का लक्ष्य कट्टरता नहीं, मिलन सारिता है। विनम्रता, मधुरता, उदारता व पवित्रता को सार्वभौमिक रूप देना ही गुरुसेवक परिवार का ध्येय है।

गुरुसेवक परिवार का आठ राज्यो में संचार हो चुका है। इस संगठन की राज्य स्तरीय कमेटी निर्मित है। इसके उपरांत संगठन की विचार धारा में एकरूपता स्थापित करने के उद्देश्य को एक राष्ट्रीय कार्यकारिणी का भी गठन किया गया है। जिसके प्रथम प्रधान श्रीमान राजकुमार जी गन्नौर वाले दिल्ली सै.-3 रोहिणी के निवासी है।

यह संगठन जैन स्थानक के बाहर रहकर अपनी गतिविधियों को क्रियान्वित करता है। यह संगठन समाज में कई व्यवहारिक कार्यों को भी प्रोत्साहन देता है। जैसे योग्य वर वधु, व्यापार संबंधी जानकारी, परस्पर सहयोग, ब्लड कैंप, पौधे आरोपित करना, साधर्मी बंधुओं के सहातार्थ कार्य करना।

यह संगठन 'स्वास्थ्य और संस्कार' नामक पत्रिका का सहायतार्थ निशुल्क वितरण भी करता है जो धार्मिक संदेशों के माध्यम से समाज को जागृत करने का कार्य करती है। इसी प्रकार गुरुसेवक परिवार रत्नत्रय प्रकाशन के माध्यम से धार्मिक पुस्तकों का प्रकाशन भी करता है। अभी तक यह परिवार लगभग तीस पुस्तकों का प्रकाशन भी कर चुका है।

जैन समाज में समय-समय पर आयोजित कार्यक्रमों में गुरुसेवक परिवार अपना योगदान प्रदान करता है। आज संपूर्ण उत्तर भारत में गुरु सेवक परिवार (जी.एस.पी.) एक कर्मठ, ऊर्जावान व जयवंत संगठन के रूप में उभर चुका है। आज जैन समाज का कोई भी श्रावक-श्राविका इस नाम से अपिरिचित नहीं है। गुरु सुदर्शन की कृपा की छत्रछाया में पल्लवित होने वाला यह संगठन जैन समाज में नित्य नए कीर्तिमान स्थापित कर रहा है।

# मैं और गुरुदेव

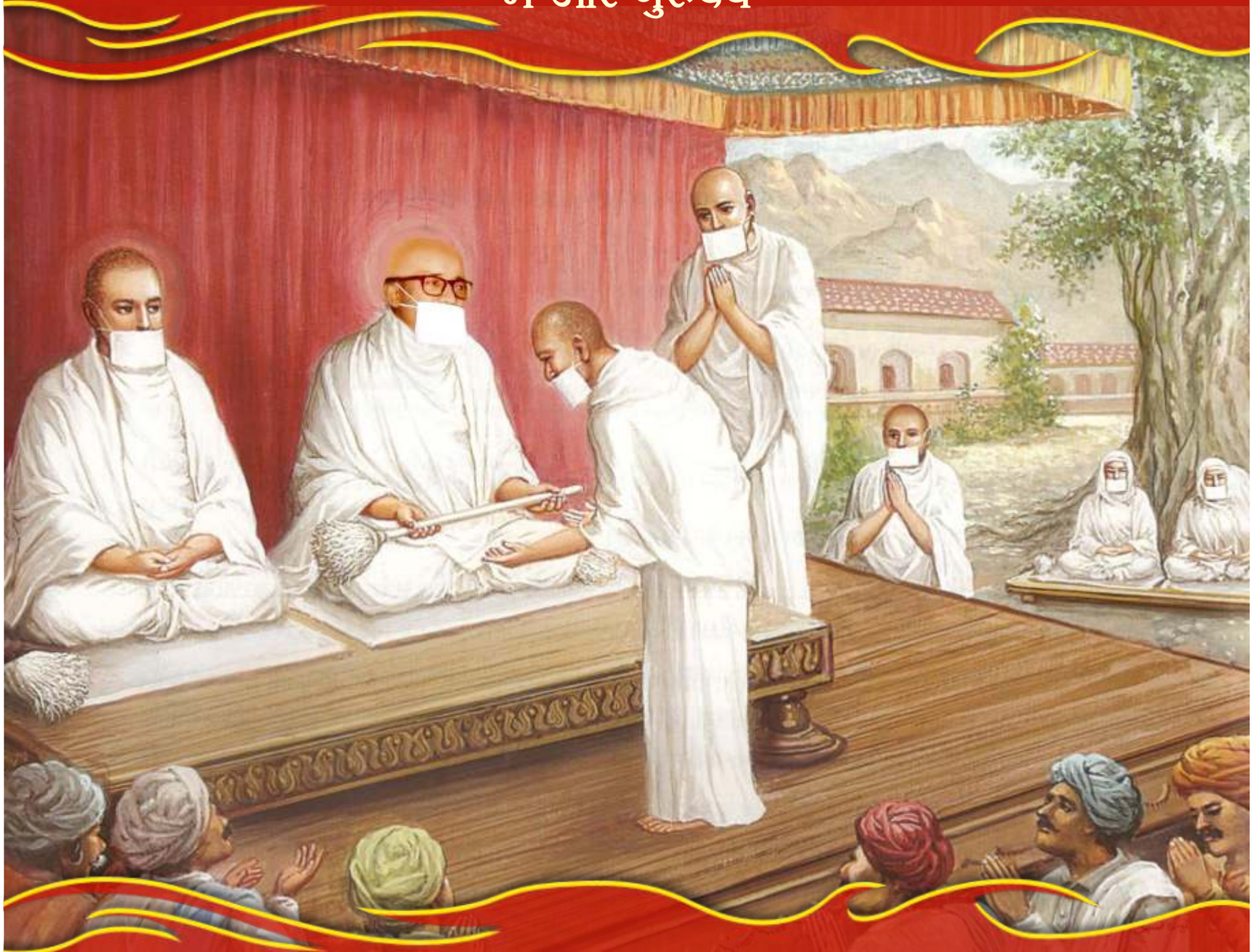

गुरुदेव मेरे लिए भगवान थे मैं उनका भक्त था। वे मोक्षमार्ग के पथिक थे मैं उनका अनुयायी था।
वे मेरे मन मंदिर के देवता थे तो मैं उनका पुजारी था। वे आदर्श थे तो मैं आराधक था। वे शास्ता थे तो मैं समर्पित था।

# 100 | मैं और गुरुदेव

**अध्यात्म** के क्षेत्र में गुरु व शिष्य का संबंध अनिर्वचनीय है। गुरु शिष्य में समस्त अवगुणों को हटाकर धर्म-संस्कारों का बीजारोपण करता है। गुरु अपने शिष्य को निरहंकार बनाकर उसे उत्थान के पथ पर संलग्न करता है। संपूर्ण समर्पण की स्थिति में सद्गुरु शिष्य की अंतरात्मा में अपना स्थान बना लेता है। तथा शिष्य के जीवन में उसका प्रतिबिम्ब झलकने लगता है। फिर अध्यात्म के पथ पर गुरु का अवलंबन अत्यावश्यक है। गुरु ऐसा पारस पत्थर है जो शिष्य को अपने से भी श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करता है।



मेरा यह महान सौभाग्य रहा कि मुझे सर्वगुण संपन्न संयमशील महान् गुरु का सान्निध्य प्राप्त हुआ। ऐसे महान ज्ञानी गुरुदेव मेरे हृदय के सम्राट बन गए। मुझे भी इस बात की संतुष्टि है कि मैंने पूर्णत: मनोयोग पूर्वक निरपेक्ष भाव से गुरुदेव की सेवाभक्ति की।

गुरुदेव मेरे लिए भगवान थे मैं उनका भक्त था। वे मोक्षमार्ग के पथिक थे। मैं उनका अनुयायी था। वे मेरे मन मंदिर के देवता थे तो मैं उनका पुजारी था। वे आदर्श थे तो मैं आराधक था। वे नौका थे तो मैं यात्री था। वे शास्ता थे तो मैं समर्पित था।

सन् 1967 में दो वर्ष की अबोधावस्था में मुझे सर्वप्रथम गुरुदेव के पावन चरणों का स्पर्श प्राप्त हुआ। जब मेरे संयमी माता-पिता गुरु दर्शनों के लिए गए। मैंने बाल्यकाल में पूर्णत: बोधावस्था में 1975 में गुरुदेव की दिव्य छवि के दर्शन किए थे। होशियारपुर में बठिंडा समाज बस लेकर गया था। गुरुदेव संपूर्ण उत्तर भारत में श्रद्धा के केन्द्र थे। जन-जन की आस्था के तीर्थ स्थल थे। उनके व्यक्तित्व में चुंबकीय आकर्षण था। वे स्थानकवासी समाज के तिजारा तथा महावीर रूपी तीर्थ स्थल थे। उस अवसर पर गुरुदेव से वार्तालाप तो नहीं हुआ, परन्तु इतना स्मरण है कि गुरुदेव ने मेरे शीश पर स्नेहपूर्वक हाथ रखा था। मानों मेरी आत्मा में वैराग्य का बीजारोपण कर दिया हो। तत्पश्चात् 1977 में गुरुदेव की ओजस्वी वाणी श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। परन्तु हृदय भूमि पर वैराग्य के वे डाले गए बीज अभी अंकुरित नहीं हुए थे।

परन्तु उन्हीं वर्षों में अन्त:करण में एक आवाज गुंजने लगी थी मुझे भोग का नही योग का पथिक बनना है। परन्तु संयम के पथ पर अग्रसर होना सरल नहीं होता। परिजन अवरोध उत्पन्न करने लगे। संघर्ष गतिमान था। अंतत: मेरी दृढ़ भावना को देखकर मुझे पूछा गया-क्या करना चाहते हो? मैंने कहा-मुझे आत्म कल्याण के लिए दीक्षा अंगीकार करनी है। मेरे पिता जी ने पूछा-किसकी निश्राय में जाओगे? मैंने कहा-जहां संयम का उत्कृष्ट पालन हो। मुझे 17 नंवबर 1981 में परिजन बुटाणा में गुरुचरणों में समर्पित कर गए। वैराग्यावस्था में प्रथम दर्शन कर मैं तो जन्म-जन्म के लिए गुरुदेव का दास बन गया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे धूप में भटक रहे यात्री को वट वृक्ष की सघन छाया प्राप्त हो गई हो। जन्मोजन्म के प्यासे को सरिता का शीतल जल मिल गया हो। उस समय संघ में पंजाब ओसवाल कुल का मैं प्रथम वैरागी था।

गुरु चरणों का ऐसा आशीर्वाद प्राप्त हुआ कि एक सप्ताह में मुझे सामायिक सूत्र, 25 बोल, 33 बोल, साधु-प्रतिक्रमण कंठस्थ हो गया। गुरुदेव ने आगमिक शिक्षा भी प्रारंभ कर दी थी। एक दिन गुरुदेव ने मुझे विशेष रूप से बुलाकर समझाया। अपने शरीर का ध्यान रखना मैं गुरुदेव का ईशारा समझ नहीं पाया। उन्हीं दिनों गन्ना छिलते समय मेरी अँगुली कट गई। मुझे तभी स्मरण हुआ कि गुरुदेव ने इस आशंका को लेकर मुझे सावधान किया था। उसी दिन से मैंने हरित (कच्ची) सब्जी का त्याग कर दिया।

पारिवारिक जनों का मोह पुन: जागृत हुआ। वे मुझे बलात् घर ले आए। परन्तु गुरुकृपा से मेरी भावना में तनिक भी न्यूनता नहीं आई। मेरे घर जाते ही गुरुदेव ने फरमाया था, वैरागी अरुण फरवरी तक पुन: लौट आएगा। गुरुदेव के वचन फलित हुए। 12 फरवरी 1982 को पुन: गुरु रूपी तीर्थस्थल पर लौट आया। मेरी अंतरात्मा पुकार रही थी कि यही तेरे तारणहार हैं। गुरुदेव प्रसन्न थे कि भवसागर को पार करने की एक ओर आत्मा में प्यास जाग्रत हुई है।

24 अप्रैल 1983 को मेरी दीक्षा की तिथि निश्चित हुई। दीक्षा से पूर्व भयंकर वर्षा का प्रकोप प्रारंभ हो गया। परन्तु गुरुदेव निश्चिंत थे। मेरे चेहरे पर उभर रही चिंता की रेखाओं को देखकर गुरुदेव ने फरमाया-अरुण! आश्वस्त रहो। दीक्षा सानंद संपन्न होगी। गुरुदेव की वाणी अक्षरश: सत्य सिद्ध हुई। उस दिन आसमान दिव्य प्रकाश से जगमगा रहा था। उसी दिवस गुरुदेव ने मुझे ओघा व पात्र देकर मुनि जीवन से सम्मानित किया। वह गुरुदेव द्वारा प्रदत्त एक नया जन्म प्राप्त हुआ। जहां गुरुदेव से मुझे गहन ज्ञानाभ्यास करना था। अध्ययन के प्रति मेरी रूचि देखकर मुझे आगम व संस्कृत का विशेष रूप से शिक्षण दिया। मैंने व्यवहारिक रूप में संस्कृत में शास्त्री (एम.ए.) डिग्री भी की।

यद्यपि दीक्षा के उपरांत मेरा अधिकतर समय अध्ययन में ही व्यतीत होता था। परन्तु गुरुदेव मेरा सर्वांगीण विकास करना चाहते थे। गुरुदेव ने मुझे प्रवचन के क्षेत्र में भी प्रोत्साहन दिया। मुझे सुनाम व जलंधर में प्रवचनकार के रूप में चातुर्मास करने की आज्ञा दी। तत्पश्चात गुरुदेव ने मुझे राजस्थान दिशा में प्रवचन करने का निर्देश दिया। गुरुदेव मेरे अनुभव एवं आगमज्ञान को विकसित करने के लिए नई चुनौतियों का सामना करने की प्रेरणा देते। मैं आगमों का गहन मंथन करते स मय पत्राचार के माध्यम से अपनी जिज्ञासाएं गुरुदेव को प्रेषित करता। गुरुदेव सदैव उनका समाधान अपने कर-कमलों से लिखकर भेजते। गुरुदेव के आशीर्वाद से मेरे आगमिक ज्ञान को एक नई दिशा प्राप्त हुई। 1993 में मेरा चातुर्मास पुन: गुरुचरणों में हुआ। मेरा प्रवचन सुनकर एक दिन गुरुदेव ने मुझे गद्‌गद् होकर कहा-अरुण! तुम्हारे प्रवचन सुनकर प्रतीत होता है जैसे यह शब्द तुम्हारी आत्मा से निसृत हो रहे हो। उस चातुर्मास में मैंने अनुभव किया कि गुरुदेव कमलवत निर्लिप्त जीवन व्यतीत कर रहे है। संभवत: संपूर्ण चातुर्मास में गुरुदेव ने चार-पाँच पत्र ही लिखकर श्रावकों को दिए थे।

गुरुदेव का वह संबोधन आज भी मुझे भावुक बना देता है। जब गुरुदेव ने कहा था-अरुण! तुम्हारे लिए मेरे हृदय में विशेष स्थान है। संयमी जीवन में तुम्हारा भविष्य बहुत उज्ज्वल होगा। तू साधना के क्षेत्र में ऊंचाईयों का स्पर्श करेगा। त्रिनगर चातुर्मास में गुरुदेव से मैंने एक दिन सहज भाव से प्रार्थना की। गुरुदेव! आप मेरी सेवा से प्रसन्न है? मेरी भोली बात सुनकर गुरुदेव आधा घंटा मुझे दुलारते रहे। बोले-मैं तुमसे पूर्णतया प्रसन्न हूँ। मेरी तुम्हारे ऊपर पूर्ण कृपा है। गुरुदेव के वचन सुनकर मेरा रोम-रोम हर्षातिरेक से रोमांचित हो गया। ऐसी प्रतीति हुई

कि जैसे मुझे अमरत्व का वरदान मिल गया हो।

गुरुदेव मेघ के समान अपने समस्त शिष्यों पर कृपा वृष्टि करते थे। यह तो कृपा ग्रहण करने वाले की पात्रता पर निर्भर है वह कितना ग्रहण कर पाता है। गुरुदेव का आकर्षण इतना प्रबल था सभी के हृदय से यही स्वर गूंजित होते थे कि गुरुदेव! मेरे लिए विशेष है। उन्हीं शिष्यों में मेरा नाम भी सम्मिलित है। जो यह कहता है कि गुरुदेव! मेरे लिए विशेष है। मेरे ऊपर उनका सबसे अधिक अनुग्रह है। यह आस्था मेरी उस क्षण और दृढ़तम हो गई जब गुरुदेव ने विशेष उपकार करते हुए मुझे आगमों की विशिष्ठ मंगलमय पाँच गाथाएँ प्रदान करते हुए कहा–यह गाथाएँ आजीवन तुम्हारी सहायता करेगी। आज भी यदि कभी मन विचलित हो जाए तो गुरुदेव द्वारा उपकृत गाथाओं का स्मरण करने से समाधान प्राप्त हो जाता है।



गुरुदेव के मेरे जीवन पर अनेकों महान उपकार है। जिनसे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। तेरह वर्ष की अल्प दीक्षा पर्याय में उन्होंने मुझे स्वतंत्र चातुर्मास करने की आज्ञा दी। क्योंकि गुरुदेव अपने जीवन काल में ही मेरा स्वतंत्र व सफल चातुर्मास देखना चाहते थे। बठिंडा संघ को मेरा चातुर्मास सौंपते हुए उन्होंने कथन किया था– मैं अरुण मुनि के रूप में तुम्हें अपना प्रतिरूप सौंप रहा हूँ। इसे मेरी आत्मा के चातुर्मास के रूप में स्वीकार करना। यद्यपि बठिंडा में स्वतंत्र चातुर्मास के लिए जाते समय मेरे मन में उहापोह चल रहा था कि मैं स्वतंत्र चातुर्मास कैसे करूंगा? गुरुदेव ने फरमाया–अरुण मुनि! तुम्हारे पास आगम है, विवेक है, कथा है, और सबसे बढ़कर गुरु–कृपा है। तुम्हें कभी कोई अभाव नहीं होगा।

**'गुरु आज्ञा अविचारणीयः'** इस सूत्र का आधार लेकर मैंने स्वतंत्र चातुर्मास किया। तत पश्चात् गुरुदेव ने 1997 व 1998 में भी मुझे स्वतंत्र चातुर्मास करने की आज्ञा दी।

अंबाला में 1998 का प्रवास मेरे जीवन काल का स्वर्णिम समय था। उस अवसर पर गुरुदेव ने कृपा की थी–अरुण मुनि! अब मैं अपना कंठ तुम्हें दे रहा हूँ। अब प्रवचन की बागड़ोर तुम्हें संभालनी है। अरुण मुनि! आगामीकाल में यह संसार तुम्हारे स्वरूप में ही मेरे दर्शन करेगा। (यह पत्र आज भी मेरे पास सुरक्षित है।) गुरुदेव एक सिद्ध पुरुष थे।

गुरुदेव मुझे अपना विश्वस्त शिष्य समझकर अंतरंग वार्तालाप कर लेते थे। मुझे इस बात का सात्त्विक गौरव है कि मैंने कभी भी गुरुदेव के विश्वास को खंडित नहीं किया। गुरुदेव के प्रशिक्षण ने मुझे सागरवत गम्भीर बना दिया। 4 जून 1998 सांयकाल पाँच बजे गुरुदेव ने मेरे समक्ष अपने जीवन की आलोचना कर योग्य प्राश्चित ग्रहण किया। यह एक शिष्य के जीवन का महान सौभाग्य होता है कि गुरु अपने शिष्य के प्रति उतना आश्वस्त हो कि वह उसके समक्ष अपनी आलोचना कर सके।

एक दिन संध्या कालिन आहार ग्रहण कर गुरुदेव मेरे कंधे पर वामहस्त रखते हुए कक्ष में पधार रहे थे। बोले–अरुण मुनि! तू निकट भवी है। परित्तसंसारी है। न जाने मुझे ऐसा क्यों आभास होता है। तू शीघ्र ही परमपद (मोक्ष) प्राप्त करने वाला हलुकर्मी जीव है।

गुरुदेव अक्सर मुझसे पूछते–क्या मैं तुम्हे संघ का दायित्व सौंप दूँ। मैं मुस्करा कर कहता–गुरुदेव! मुझमें न ही इतनी योग्यता है, न ही मैं मानसिक रूप से इस दायित्व को संभालने का इच्छुक हूँ। संघ में एक से बढ़कर एक योग्य पूजनीय संत है। आप जिसकी ओर ईशारा करेंगे। वही हमारे पूज्य होंगे।

जब मैं पटियाला चातुर्मास के लिए प्रस्थान करते समय मैंने गुरु चरणों में वंदन करते हुए निवेदन किया कि गुरुदेव कुछ हित शिक्षा फरमाये। विशेष दिशा-निर्देश देने की कृपा करें। गुरुदेव बोले-अरुण मुनि! तुम्हारा जीवन स्वयं एक आदर्श है। मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ रहेगा। उस चातुर्मास में गुरुदेव ने मुझे 122 पत्र लिखे। वे पत्र आज भी मैंने संपत्ति की भाँति संभाल कर रखे हुए हैं। एक पत्र में गुरुदेव ने लिखा-अरुण मुनि! मैं तुम्हारे पाँच स्वतंत्र चातुर्मास देखना चाहता हूँ। आप अनुमान लगा सकते हैं कि मेरे जैसे लघु शिष्य पर गुरुदेव की कितनी कृपा थी। चातुर्मास के उपरांत जब गुरुदेव पटियाला पधारे। तब उनके दर्शन कर मन भावुक हो गया। वहाँ के श्रावकों ने गुरुदेव को कहा-अरुण मुनि जी में ही आपकी ही झलक देखने को मिलती है। गुरुदेव बोल-एक दिन संसार मेरे इस शिष्य में ही मेरे दर्शन करेगा।

पटियाला में गुरुदेव ने सभी संतों को श्री दशवैलिक सूत्र कंठस्थ करने की आज्ञा दी। उस अवसर पर मैंने भी श्री दशवैकालिक सूत्र कंठस्थ किया।

कैथल सम्मेलन में मुझे गुरु चरणों में बैठकर गुरुदेव से घंटों आंतरिक चर्चा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। एक रात्रि गुरुदेव चर्चा करते हुए फरमाने लगे कि-अरुण मुनि! अब दीए में तेल कम है। मैंने भाव विभोर होकर गोद में सिर रख दिया। मेरा मन भर गया। गुरुदेव मुझे स्नेह पूर्वक दुलार करने लगे। मैंने कहा-गुरुदेव! शिष्य कभी ऐसे समय की कल्पना भी नहीं कर सकता।

मैंने अनुग्रह किया। गुरुदेव 1999 का चातुर्मास मैं आपके चरणों में करना चाहता हूँ। परन्तु गुरुदेव ने आदेश दिया कि तुम यू.पी. की ओर प्रस्थान करो। मैंने स्वप्न में भी कभी गुरुदेव की आज्ञा के विपरीत जाने की कल्पना नहीं की। जब मैं यू.पी. में था उस समय मुझे गुरुदेव के महाप्रयाण का दु:खद समाचार प्राप्त हुआ। मैं अधीर हो गया। आखिर क्यों गुरुदेव ने अंतिम क्षणों में मुझे अपने समीप नहीं रखा? संभवत: जैसे भगवान महावीर ने अपने प्रिय शिष्य गौतम स्वामी को अपने से दूर भेज दिया था। शायद वही इतिहास फिर दोहराया गया। मैं स्वयं को अनाथ अनुभव करने लगा।

मेरे अंत:करण में गुरुदेव के प्रति श्रद्धा व गुरुदेव की मेरे ऊपर अपार कृपा को शब्दों में संजोयित करना असंभव है। मैं सदैव गुरुदेव के दर्शन अपने हृदय मंदिर में करता हूँ। आज तक मैं गुरुदेव को अपना अभिन्न अंग माना है। उन्हीं द्वारा प्रदर्शित पथ पर अग्रसर होना ही मेरे जीवन का लक्ष्य है।

**ऐसे महामहिम गुरुदेव को कोटिश: वंदन!**

# प्रकाशन सहयोगी

श्री सुदर्शन गुरवे नमः
श्री अरुणचंद्र गुरवे नमः

**श्री दिनेश जैन**
(खेड़ी गुज्जर, गन्नौर, ओरिएंटल अपार्टमैंट,
डी-माल, रोहिणी, दिल्ली मो 9953597013

**श्री राजकुमार जैन**
(अहीरमाजरा, रोहिणी सै-3, दिल्ली)
79822-29309

**श्री अशोक जैन**
(जाजवान , रोहिणी सै-23, दिल्ली)
98105-20815

**श्री मनीष जैन**
(कान्ही गांव,रानी बाग, दिल्ली)
98992-96788

**श्री मुकेश जैन**
(सफीदों, पीतमपुरा दिल्ली)
97118-62829

**श्री दीपक जैन**
(झडोदा कलां, रोहिणी सै-3, दिल्ली)
98102-00481

**श्री विकास जैन**
(गाँव नगर गोहना, रोहिणी सै-3, दिल्ली)
92131-25553

**श्री विजय कुमार जैन रेनबो**
(कान्ही गांव, पीतमपुरा दिल्ली)
98962-65890

**श्री सचिन जैन ( अंशु )**
(सैनपुर सूर्यनगर, दिल्ली)
93547-76177

**श्री विमल जैन**
(नगर गोहना, नांगलोई, दिल्ली)
92132-10892

**श्री विनोद जैन**
(हाट गांव, दीपाली, पीतमपुरा, दिल्ली)
99102-69353

**श्री तुषार जैन**
(वीर अपार्टमैंट, रोहिणी, दिल्ली)
98717-16071

**श्री संजय जैन**
(बड़ी गन्नौर, पीतमपुरा, दिल्ली)
93118-94363

**श्री सतीश जैन**
(हथवाला, रोहिणी सै-7,दिल्ली)
83778-19409

**श्री आशीष जैन**
(दोघट, बडौत यू.पी)
98372-10341

**श्री सुरेश जैन**
(हाट गांव, पीतमपुरा,दिल्ली)
93116-84496

**श्री राजेश जैन**
(रिण्ढ़ाना रोहिणी,दिल्ली)
98730-43722

**श्री सुशील जैन**
(जलेसर गांव, गाजियाबाद)
9810078214

**श्री विनोद जैन**
(लुधियाना)
98140-33180

**श्री विनोद जैन**
(जुआं गांव, पीतमपुरा, दिल्ली)
98111-82903

**श्री चंचल जैन**
(खेड़ी गुज्जर, गन्नौर, रोहिणी सै. 13, दिल्ली)
9654363385

**श्री मदन जैन**
(सींखपाथरी गांव, पीतमपुरा, दिल्ली)
97185-42000

**श्री नीरज जैन**
(ग्रीन पार्क, दिल्ली)
9868592895

सुप्रिय अजय जैन, धर्म संदेश। कर्म-गति विचित्र है। संयोग-वियोग से मिश्रित है संसार की यात्रा। जाना सबको है, शाश्वत नियम है कुदरत का, परंतु कुछ प्रिय चेहरे जो समय से पहले अलविदा ले लेते हैं, वे जन-जन को रूला देते हैं। जाने वाले जाते हैं कहां दुनिया से जाने वाले! कैसे उनसे पूछें उनके निशां! धर्मपत्नी का जाना ऐसा है, जैसे घर श्मशान बन गया। बच्चे मां बिन अनाथ हो गये, भाई-बंधु बेसहारा, समाज उदास निराश, रिश्तेदार हताश और गुरूजन भी उहापोह में हैं। स्वर्गीय बहन को कैसे भूला जा सकता है! सुप्रिय थी, मिलनसार थी, धार्मिक थी, गुरू- भक्ति में अग्रणी थी, नारी जाति का गौरव थी।

इस दुःख की घड़ी में मैं आप के पास ही खड़ा हूं। मुनीष व भाइयों की क्या स्थिति होगी, मैं जानता हूं। परम पिता परमात्मा से अर्ज है कि आप सभी को दुःख की इस घड़ी में साहस और धैर्य मिले। मैं सदा साथ हूं। बच्चों को पूरा प्यार दें। बहन की धरोहर को बखूबी संभाला जाये। - मुनि अरुण

## गुरु भक्त-अर्थ सहयोगी

### गुरुओं की मीराबाई

### श्राविका पूनम कर गई आंखें नम...

गुरु हनुमंत आशीष जैन की माता एवं संघ की आदरणीय श्राविका असमय में ही अलविदा हो गई। उनकी स्मृतियों को अमर करने हेतु गुरु सेवक परिवार द्वारा सामूहिक निर्णय लिया गया कि इस पुस्तक का सौजन्य समर्पित परिवार की ओर से हो। परिवार ने हमारी भावना को साकार किया अतः हार्दिक आभार और शुभकामनाएं...

## गुरु भक्त-अर्थ सहयोगी

गुरुभक्त विनोद जैन एवं श्रीमती आशी जैन के सहयोग का क्या ही कहना.. दोनों दिन-रात, तन-मन-धन से सदा ही गुरुभक्ति में समर्पित रहते हैं, पुस्तक में अर्थ सहयोग के लिए विशेष आभार....

## गुरु भक्त-अर्थ सहयोगी

**Ramdhari Jain**
(Jodhan Wale)
94160-84292

**Rajiv Jain**
93541-00001
98122-00002

**Rahil Jain**
93060-43661
90344-00001


## M/s Haryana Petro Chem
## M/s S.S. Yarn & Fibre

M : 90344-00001, 93505-02032, 85292-00001

All Kinds of Polyester Yarn

ALOK · Wellknown · Bhilosa · Sanathan Textiles · INDORAMA · SHUBHALAKSHMI

* * * * * * *

## Cloudly India Home Furnishing

Manufacturing : Mink Blank, Flannel & Cloudly Blanket

M : 93541-00001, 98122-00002

## M/s Shri Sudershan Petro

Dealers : Indian Oil Corporation Limited
Deals in : Petrol, Diesel, Servo Lubricants
Ph : 0180-7969828, 98122-02292, 95292-00001

* * * * * * *

## A.M.Coal (India)

Dealers :
Essar Oil Ltd,
For Petcoke/ Bitumen/FO/LDO
Ph : 089502-00002, 098122-02292

Head Off. : #1008, Sec-25, Part-II, HUDA, Panipat-132103 (HR)

# हार्दिक वंदन

सदी के महानायक, प्रातः स्मरणीय संघशास्ता पूज्य
गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी महाराज के शताब्दीवर्ष
के पावन अवसर पर प्रकाशित जीवन चरित्र के यज्ञ में
हमें आहुति का अवसर मिला, हम स्वयं को सौभाग्यशाली मानते हैं
व अपने पिताजी एवं माताजी को भी याद करते हुए
श्रद्धापुष्प अर्पित करते हैं।
गुरुदेव के चरणों में पुनः-पुनः नमन

## पुण्य स्मृति

पिता स्वर्गीय श्री
निरंजन लाल जैन

माता स्वर्गीय
श्रीमती भागवती देवी

सुपुत्र बृज मोहन जैन ( बाबा लदाना वाले ) -पुत्रवधु वनिता जैन
पौत्र पवन जैन-पौत्र वधु गरिमा जैन
पड़पौत्र आदि जैन, श्रेय जैन एवं समस्त जैन परिवार पंचकुला

रत्नत्रय प्रकाशन
दिल्ली

## गुरु अरुणोद्घोष.....

### कट्टर नहीं पवित्र बनो

केवल एक ही संत, एक ही गच्छ, एक ही संघ से ही मत जुड़ें। जिस संत में सच्चाई हो, सादगी हो, संयम हो, वहीं मस्तक झुका दें। जैन समाज पहले ही बहुत छोटा है। श्रावक वर्ग में विघटन पैदा करके अपने पक्ष में करके श्रावकों को एक पक्षीय (संकीर्ण व कट्टर) मत बनाएं। पंजाब परंपरा शुरु से ही उदारवादी रही है।

gurusewakparivaar.rog
info@gurusewakparivaar.org
88000779013
http://www.facebook.com/gsparivaar

Google Play

Available on the App Store